

ATISHAY KALIT

A Referred International Bilingual Research Journal of
Humanities, Social Science & Fine-Arts

ROSE (January-June) Vol. 3, Pt. A Sr. 5 Year 2014

ISSN 2277-419X

RNI-RAJBIL01578/2011-TC

Chief Editor :

Dr. Rita Pratap (M.A. Ph.D.)

Co-Editor :

Dr. Shashi Goel (M.A. Ph.D.)

Mailing Address :

DR. Rita Pratap

ATISHAY KALIT

C-24, Hari Marg, Malviya Nagar, Jaipur-302017

Phone - 0141-2521549 Mobile : 9314631852

INDIA

Editor Writes

Dear Friends,

This issue Rose (Jan-June 2014) is now moving into its 3rd successful year of its publication with an overwhelming response from scholars all over the country. An art review of the newly published Book "भारतीय कला समीक्षा (विचार व रूप)" by Dr. Ritu Johri (Asstt. Prof. Deptt. Of Drawing & Painting, Jai Narain Vyas University, Jodhpur) is an addition to this issue.

Suggestions are also welcome by our readers.

- Dr. Rita Pratap

Folk Art of India published by the Author which contains research articles with Colour and Black & White Illustrations.
Cost Rs. 1500+100 (Postage)

CONTENTS

1.	Editor Writes	Dr. Rita Pratap	2
1.	कला, साहित्य, दलित, ललित	प्रो. वीरबाला भावसार	5
2.	प्राचीन वांगमय में भ्रूण की अवधारणा	सीमा सैनी	8
3.	प्रागैतिहासिक कला में सामाजिक-जीवन का चित्रांकन	डॉ. बीना जैन	14
4.	भारतीय संस्कृति में यज्ञ और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता	अंकिता सैनी	24
5.	मुगल लघुचित्र शैली का क्रमिक विकास	डॉ. सुषमा जैन	27
6.	अध्यात्म एवं धर्म की दृष्टि से भारतीय कला : सांस्कृतिक संदेश वाहक	सुनीता भौर्याल	35
7.	राजस्थान के प्रमुख संग्रहालयों में प्रदर्शित मूर्तिशिल्प महेन्द्र सिंह सुरेला		39
8.	बुद्ध को समर्पित – मथुरा व गान्धार शैली	डॉ. रीतिका गर्ग	45
9.	“अवतार रूप में मत्स्य का पौराणिक उद्गम एवं राजस्थान के लघुचित्रों में कलागत अनुशीलन”	डॉ. मोनिका चौधरी	51
10.	भारत में आधुनिक कला	डॉ. कुसुम बिंडवार	58
11.	कला क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित करती ‘कम्प्युटर कला’ एक अध्ययन	डॉ. अमित वर्मा	63
12.	कला में प्रेरणा एवं तकनीक	लोकेश कुमावत	68
13.	आध्यात्म और धर्म का संगीत से पारस्परिक समन्वय	डॉ. सत्यवती शर्मा	72
14.	राजस्थान के प्रसिद्ध गौरवमयी दुर्ग	डॉ. नीरू कल्ला	78
15.	‘वागड़ की ‘मीरा’ – गवरी बाई’	डॉ. वंदना कल्ला	84
16.	स्वामी दयानन्द व भारतीय राष्ट्रवाद	कीर्ति मुद्गल	86
17.	सुस्थिर विकास एवं पर्यावरण	डॉ. सांवर सिंह यादव	92
18.	प्राचीन भारतीय नाट्य साहित्य में नायिका	डॉ. राजेश मीना	99
19.	उपभोक्ता संरक्षण व पर्यावरण संतुलन गांधी चिंतन में	डॉ. राकेश कुमार	106

20. ऐतिहासिक लोहार्गल पर्यटकों का सिरमौर (झुन्झुनू) चन्द्रकला स्वामी	114
21. लोक सृजित चित्रपट्ट : कावड़ डॉ. वन्दना जोशी	118
22. रोहतक स्थित रूड़की के शिव मंदिर के भित्ति चित्र 124	डॉ. राजेश कुमारी
23. राजस्थान की प्रसिद्ध महिला चित्रकार अमनदीप कौर डॉ. वीरबाला भवसार का व्यक्तित्व व कृतित्व	128
24. "मारवाड़ महाराजा मानसिंह कालीन नाथ संप्रदाय डॉ. नम्रता स्वर्णकार की कला का विशिष्ट स्वरूप – तंत्र चित्र"	133
25. संस्कृतियों का समन्वय – रामदेवरा (रूणीचा) तमेघ पंवार	140
26. राजस्थान में शैव परम्परा का विकास: मूर्तिकला एवं हर्षवर्धन शर्मा अभिलेखों से प्राप्त साक्ष्यों का तुलनात्मक अध्ययन	147
27. कोटा की कला में शाक्त मूर्तियाँ का वैभव डॉ. मुक्ति पाराशर	152
28. "राजस्थान पर्यटन उद्योग का शहरी अर्थव्यवस्था श्रीमती ऋचा चौहान पर प्रभाव"	160
29. जैन साहित्य में लेखन कला डॉ. रीना जैन	165
30. कोटा के भित्ति चित्रों की वर्तमान स्थिति डॉ. कृष्णा महावर	169
31. विपणन में बिक्री अभिवृद्धि की भूमिका किशोर कुमार मीणा	174
32. "शास्त्रीय नृत्यों की विवेचना" डॉ. वीणा जैन	184
33. महादेवी वर्मा का चित्र संसार डॉ. भारत भूषण	192
34. मेघदूतम् में कालिदास के भौगोलिक ज्ञान डॉ एन. के. सेठी की अभिव्यक्ति	201
35. इंटरनेट युग एवं विज्ञापन कला कुमारी पूनम	207
36. 16 वीं लोकसभा चुनावों में भारतीय निर्वाचन भारत सिंह आयोग कि भूमिका	213
37. Jaipur :- Town planning and its Architecture Ritika Kumari Meena	223
38. Splendour Of Nature In Kishangarh Paintings Dr. Rita Pratap	228
39. The Indian Party System and Political Parties Dr. Shashi Goel	235
40. Interrelation ship Between Idea and Image in Dr. Ritu Johri Indian Art (From Ancient to Contemporary)	244

कला, साहित्य, दलित, ललित

भाषाकीय अर्थ में तो 'दलित' वह मनुष्य है, जो कुचला जाता रहा हो, दमित और शोषित हो, अर्थात् जीवन जीने की आवश्यक सुविधाओं से वंचित हो। विश्वभर में ऐसे लोगों के अनेक समूह हैं, जिन्हें आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती हैं, इसका कारण कई प्रकार की अन्ध मान्यताएँ और निजी स्वार्थ हैं। ऐसे लोग अधिकांश, परम्परा और रूढ़ीवदिता के अंतर्गत, अपने जीवन की आवश्यक सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। भारत में इन्हें सामाजिक मान्यताओं के अनुसार—चमार, भंगी, मोची, भील, आदिवासी जैसे सम्बोधनों से जाना जाता है, परन्तु इसका भाषाकीय अर्थ 'दलित' नहीं है। ये लोग श्रेणी अथवा वर्ग, वर्ण अथवा रंगभेद के रूप में भी, अलग समझे जाते रहे हैं। आज की विकसित मानव जीवन शैली में यह विभाजन अर्थहीन सिद्ध होते जा रहे हैं। यथार्थ में दलित सभी धर्म, जाति, वर्ग और वर्ण में दिखाई देते हैं।

यद्यपि इन लोगों के लिए प्रयुक्त किए जाने वाला शब्द 'दलित' मात्र प्रशासकीय व्यवस्था का शालीन शब्द है तथापि जाति, धर्म, वर्ग या वर्ण के रूप में ये लोग 'दलित' कदापि नहीं कहे जा सकते। इनको पिछड़ेपन और अभावों के कारण ही दलित समझा जाना चाहिए, जो जीवन की आवश्यक सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं अभाव और पिछड़ापन तो सभी जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण के लोगों में देखा जा सकता है। यह दूसरी प्रकार का दलित मानव है, जो स्वभाव से सीधा सादा है। उपद्रवी एवं अशांत वातावरण से दूरी रखने तथा अपना सद्व्यवहार, बनाए रखने के कारण, कई अधिकारों से वंचित रह जाते हैं। ऐसे लोग अतिबौद्धिक, आर्थिक सम्पन्न (पूँजीवादी) एवं पहुँच रखने वाले लोगों से प्रायः छले जाते हैं और अन्याय के शिकार होते हैं। ऐसे 'दलित' लोग जीवन को भाग्य का खेल समझ कर, सबकुछ सह जाते हैं और तथाकथित कुलीन होते हुए भी प्रताड़ित रहते हैं। पौराणिक कथा का पात्र कर्ण, इसका सशक्त उदाहरण है। आज जाति, वर्ण आदि से तथाकथित दलित माने जाने वाले भी, सम्पन्न जीवन जी रहे हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी योग्यता सिद्ध करने में कोई कसर नहीं रखी। भला इन्हें 'दलित' कैसे कहा जा सकता है।

इन दो समूहों के अतिरिक्त, एक तीसरी प्रकार का 'दलित' समूह भी है, जो सभी प्रकार से सम्पन्न हैं तथा जीवन की सभी भौतिक सुख सुविधाओं के होते हुए भी दलितों की सी मानसिक अवस्था में रहते हैं। भीतर के आनन्द के अभाव में, सदैव तनाव का अनुभव करते हैं और सुखों को दुख बनाए रखते हैं। लालसाओं और महत्वाकांक्षाओं की स्पर्धा में दौड़ते भागते, जीवन की शांति खो बैठते हैं। अनेक प्रकार की आवश्यकताओं के कारण, इनकी स्थिति वंचितों जैसी ही होती है। ये लोग 'दलित' का उद्धार करने के बदले उन्हें खरीद लेते हैं। कला और साहित्य में निहित गुण समझे बिना, उसे भी दिखावे के लिए, खरीद लिया करते हैं। ऐसे लोग भी किसी भी जाती धर्म, वर्ग या वर्ण के हो सकते हैं। तथाकथित दलित या अदलित भी हो सकते हैं।

इसके अनेक पौराणिक एवं एतिहासिक उदाहरण हमारे साहित्य में मिलते हैं। राम को वनवासी बनकर, दलितों का सा जीवन जीना पड़ा, और 'शबरी' के धनभाग कि भगवान 'राम' ने, उसके झूठे बैर खा लिए। ऐसे ही गुरु द्रौणाचार्य के बिना, उनका शिल्प बनाकर, धनुर्विद्या सिखने वाला 'एकलव्य', न केवल धनुर्विद्या की प्रतिभा का धनी हुआ, शिल्प कला का भी ज्ञाता सिद्ध हुआ। जब कि अर्जुन को गुरुजी से शिक्षा प्राप्त करनी पड़ी। अन्य उदाहरणों में—द्रौपदी और सीता को भी दला ही गया। स्मरण रहे यहाँ शबरी और एकलव्य को तथाकथित 'दलित' शब्द की सीमा में नहीं बाँधा जा रहा है, वरन् मनुष्य में निहित गुणों को, पहचाना जा रहा है, क्योंकि जो तथाकथित 'दलित' थे, वे दले नहीं गए और जो दलित नहीं थे, वे दले गए।

मनुष्य मनुष्य है, वैज्ञानिक दृष्टि से तो वह एक प्राणी मात्र है और प्रत्येक मनुष्य की अपनी एक प्रकृति भी होती है। वह किसी जाति, धर्म, वर्ग या वर्ण विशेष के घर जन्म लेने से, पृथक नहीं माना जा सकता। सामान्यतया सभी लोग, अनेक प्रकार की अनुभूतियों से आच्छादित रहते हैं, उनके भीतर किसी न किसी प्रकार की हलचल बनी रहती है, कोई इसे व्यक्त कर पाता है तो कोई नहीं कर पाता। यह अभिव्यक्ति कर्म करके या किसी प्रकार के सृजन द्वारा, जीवन को उदात्त बनाने के काम आती है।

एकलव्य के पश्चात् उदाहरण के रूप में, 'कबीर', 'रैदास' 'तुकाराम' जैसे अनेक महान व्यक्तित्व, वंचित एवं अभावों में जीवन जीते हुए भी, अपनी प्रतिभाओं को सिद्ध कर सके थे। इसी प्रकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी, अपनी योग्यता तथाकथित दलित होने पर भी सिद्ध की थी। यह समय तथाकथित दलितों की गिनती करते रहने और उन्हीं के जीवन को लेकर लिखते रहने या सृजन करते रहने का नहीं रहा। इससे तो वे लोग अपना आत्म विश्वास खो देंगे, अपनी क्षमता का उपयोग नहीं कर पाएँगे और सदैव याचक ही बने रहने को बाध्य होंगे। यह अलग बात है कि

ये लोग किसी रचनाकार की प्रेरणा का स्रोत बने। मात्र दुखों का वर्णन करते रहने से, उनके दुख कम नहीं हो जाते। इसके लिए तो ठोस कार्य करने की आवश्यकता है, जिससे उन्हें ऊपर उठाया जा सके। यह कार्य महात्मा गाँधी ने, सर्व साधारण और 'दलितों' के प्रति, एक सी मानवीय आस्था रखते हुए, 'हरिजन-आश्रम' स्थापित करके किया था। स्वयं त्याग और सेवा का, ठोस उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, उन्हें याचक न बना कर, ससम्मान स्वावलम्बन से जोड़ा था, जिससे उन्हें स्वाभिमान से जीने का अवसर मिल सके।

इस आलेख के अनुसार, दूसरी प्रकार के वंचित लोगों का भी ध्यान रखने और उनके मनोबल को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है, जिससे वे दलित की श्रेणी में नहीं आ बैठें। बांटा जाने वाला धन खर्च हो जाता है, भीतर से जगाया गया मनोबल और आत्मविश्वास स्थायी सम्पत्ति है, जो तथाकथित 'दलित' और वंचित होने से बचा सकती है। मनुष्य मात्र को याचक होने से बचाने की आवश्यकता है।

इस आलेख को लिखने का प्रमुख कारण यह है कि कला, साहित्य और ललितकलाओं में भी, इस प्रकार का भेदाभेद किया जाने लगा है, जो कला और साहित्य की अपार सृजन क्षमताओं को सीमित कर देने वाला है, तथा जीवन को नीरस बनाने जैसा है, क्योंकि मनुष्य की भीतरी प्रतिभा को, किसी प्रकार भी दला नहीं जा सकता। वह चाहे तथाकथित 'दलित' में हो या 'अदलित' में। जो दलित के नाम से जाना जाता है, वह भी मनुष्य है और दूसरा या तीसरा भी, पहले तो अनुभूतियों से पूर्ण, एक मनुष्य ही है। ये सभी प्रतिभा के धनी हो सकते हैं, सभी में ललित व सूक्ष्म भावनाओं के प्रति आकर्षण हो सकता है, वे भी रचनाकार हो सकते हैं, उनके लिए अलग से कला और साहित्य के सृजन की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि उनकी प्रतिभा को पहचानने की।

किसी भी परिस्थिति में, कबीर 'कबीर' हुए, रैदास 'रैदास' और एकलव्य 'एकलव्य' हुए। किसी भी परिस्थिति में मनुष्य, कभी हँसता, गाता और नाचता भी है। संक्षिप्त में 'दलित' होना मानव की एक विशेष प्रकार की बाहरी परिस्थिति है, जो दूसरी प्रकार के लोगों द्वारा बनाई जाती है, फिर भी इन दूसरी प्रकार के लोगों और तथाकथित 'दलित' लोगों में, सभी भीतरी, भावनात्मक, मानवीय और सूक्ष्म अनुभूतियाँ विद्यमान रहती हैं, इनमें यदि कोई प्रतिभावान है तो परिस्थितियाँ उसे रोक नहीं सकती।

कला, ललितकला या साहित्य में, धरती और अम्बर के मध्य आने वाले, सभी पदार्थ और विषय रचनाकार की प्रेरणा के स्रोत हो सकते हैं। कोई यह प्रेरणा दलित से भी ले सकता है तो दलित भी दूसरे लोगों से प्रेरणा ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त ये सभी, प्रकृति, प्रेम, आध्यात्म और जीवन के अन्य मानवीय रिश्तों नातों एवं उससे उत्पन्न सम्बन्धनाओं से प्रेरणा ले सकते हैं। तथाकथित 'दलित' ही प्रेरण

प्राचीन वांगमय में भ्रूण की अवधारणा

प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों और परम्पराओं में विश्वास रखने वाले पता नहीं इस दृष्टान्त को कैसे भूल गए कि जब महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने पाण्डवों का वंश नाश करने के लिए एक गर्भवती स्त्री उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र चलाया था तो स्वयं कृष्ण ने उसे बचाने के लिए इस ब्रह्मास्त्र को अपने ऊपर झेल लिया और इस कुकर्म के लिए अश्वत्थामा को जो शाप मिला था उसे आज भी लिए घूम रहा है और उसके सिर से आज भी लहु तथा मवाद निकल रहा है। उसे शाप दिया गया था कि वह मरेगा नहीं बल्कि उसका मस्तिष्क खून और मवाद से भरा रहेगा और वह मुक्ति के लिए छटपटाता रहेगा और उसे मुक्ति नहीं मिलेगी। आश्चर्य है कि भ्रूण हत्या की कोशिश जब इतनी बड़ी सजा दिए जाने का प्रावधान है तो हत्या कर देने पर उसे कितनी बड़ी सजा मिलती, यह सोचने की बात है। लेकिन आज हमारे समाज में जितनी आसानी से भ्रूण हत्याएँ की जा रही हैं उसे देखते हुए लगता है कि हम अपने बुजुर्गों की नसीहतों के साथ कितना खिलवाड़ कर रहे हैं लेकिन भूल जाते हैं कि प्रकृति इसका दण्ड देर या सबेर जरूर देती है और प्रकृति के विरुद्ध किए गए कार्यों की सजा जरूर मिलती है चाहे वह कितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो?

आश्चर्य की बात है कि भ्रूण हत्या केवल एक प्रदेश की ही नहीं बल्कि देश के अधिकतर प्रदेशों की समस्या है। हमारे संस्कृत वांगमय में बहुत विस्तृत गर्भाधान (भ्रूण संरक्षण) से लेकर आज तक का विस्तृत वर्णन है जो किसी भी इतिहास के पन्नों में नहीं लिखा गया। गर्भ में भ्रूण के नष्ट होने के तीन कारण हैं— 1. भ्रूण क्षरण, 2. भ्रूण हनन, 3. भ्रूण हत्या। भ्रूण क्षरण स्वतः गर्भपात द्वारा, भ्रूण हनन कानून के प्रावधानों के अन्तर्गत गर्भ को नष्ट करने पर और भ्रूण हत्या कानून के प्रावधानों की अवहेलना में किए गए गर्भपात को कहते हैं।

एक कविता में भी बताया गया है कि:—

कुछ दिन आँखें बन्द करके जिए माँ की कोख में

पर वे आँखे खुल न पाई बंद ही बंद रह गई कोख में।²

भ्रूण संरक्षण के लिए संस्कृत साहित्य में सबसे पहले 16 संस्कारों का वर्णन किया गया जो कि प्रथम जन्म से पूर्ण के प्रथम तीन संस्कारों का भ्रूण के लिए विशेष महत्व बताया गया है।

गर्भाधान संस्कार – इसे 'निषेक' भी कहते हैं। वैदिककाल से प्रचलित इस संस्कार का सम्बन्ध सन्तान की कामना द्वारा स्त्री के गर्भ में पुरुष द्वारा सन्तान के बीजारोपण से है। गर्भाधान के लिए कन्या की अवस्था 13 वर्ष और पुरुष की कम से कम 25 वर्ष बताई है।³ पूर्वमांसा में उद्धृत किया गया है कि "जिस कर्म के द्वारा पुरुष स्त्री में बीज स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहते हैं।" आचार्य शौनक के अनुसार:—

निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भं सन्धार्यते स्त्रिया।

तद् गर्भालम्बनं नाम कर्म प्रोक्तं मनीषिभिः।।⁴

अर्थात् जिस कर्म के प्रयोग से अथवा पूर्ति से स्त्री पति के द्वारा धारण कराए हुए शुक्र को धारण करती है, उसे विद्वान् गर्भालम्ब या गर्भाधान नाम का संस्कार कहते हैं। पत्नी के ऋतुस्नान की चौथी रात्रि से सोलहवीं रात्रि तक गर्भधारण के लिए उपयुक्त समझा जाता था। वीर मित्रोदय संस्कार प्रकाश में व्यास के वचनों को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि "चौथी रात्रि में धारण किया हुआ पत्र अल्यापु और धनहीन है, पाँचवीं रात्रि में गर्भ धारण की हुई स्त्री कन्या सन्तति को ही जन्म देती है, छठी रात्रि का बच्चा मध्यम श्रेणी का अर्थात् उदासीन होता है, सप्तम रात्रि की कन्या बन्ध्या होती है। आठवीं रात्रि का लड़का सम्पत्ति का स्वामी होती है। नवीं रात्रि के गर्भ से शुभ पुत्री उत्पन्न होती है। दसवीं रात का पुत्र बुद्धिमान होता है। ग्यारहवीं रात्रि की लडकी अधार्मिक होती है। बारहवीं रात्रि का पुत्र सर्वश्रेष्ठ, तेरहवीं रात्रि की कन्या दुराचारिणी, चौदवीं रात्रि का पुत्र धार्मिक, कृतज्ञ, संयमी और दृढ़प्रतिज्ञ होता है। पन्द्रहवीं रात्रि की कन्या बहुत पुत्रों की मां एवं पतिव्रता स्त्री होती है तथा सोलहवीं रात्रि का पुत्र विद्वान् श्रेष्ठ, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और समस्त प्राणियों के लिए शरण देने वाला होता है।"

विशेष परिस्थितियों में –

गर्भाधानादि संस्कृता पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः।

अभावे स्वकुलीन स्याद् बान्धवो वाक्यगोत्रजः।।⁵

अल्बेरुनी – ने इस संस्कार के उल्लेख में लिखा है कि "क्योंकि इस संस्कार के सम्पादन में समय तथा उद्देश्य की अनिश्चितता के साथ-साथ लज्जा का भी

समावेश रहता था। अतः कभी-कभी इसका सम्पादन नहीं किया जाता था।”

पुंसवन – “पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम्”

अर्थात् जिस कर्म के अनुष्ठान से पुरुष सन्तति का जन्म हो, उसे पुंसवन कहते हैं। यह निश्चय हो जाने पर कि किसी स्त्री ने गर्भ धारण कर लिया है, गर्भस्थ बच्चे को पुंसवन संस्कार द्वारा अभिषिक्त किया जाता था। इसके अनुष्ठान से समझा जाता था कि इस स्त्री के पुत्र होगा और यदि पुत्री भी होती है तो भी यह सोचा जाता था कि यह आगे चलकर पुरुष सन्तति उत्पन्न करेगी—

व्यक्ते गर्भे द्वितीये तु मासे पुंसवनं भवेत्।

गर्भेऽव्यक्ते तृतीये चतुर्थे मासि वा भवेत्।।

अर्थात् पुंसवन संस्कार गर्भ स्थापित होने के पश्चात् दूसरे महीने में किया जाना चाहिए। यदि गर्भ का लक्षण अव्यक्त हो तो तीसरे या चौथे मास में सम्पन्न करे। कुछ विद्वान् इस संस्कार के अनुष्ठान का समय गर्भ के दूसरे मास से आठवें मास तक का मानते हैं। क्योंकि विभिन्न स्त्रियों में गर्भाधान के चिन्ह विभिन्न कालों में प्रकट होते हैं।

यह संस्कार प्रत्येक गर्भधारण में किया जाये अथवा केवल गर्भधारण के समय ही, इस विषय में भी मतभेद है।

शौनक – महोदय के अनुसार यह संस्कार प्रत्येक गर्भधारण के बाद करना चाहिए किन्तु याज्ञवल्क्य – अनुसार ‘प्रथम गर्भधारण के समय ही होना चाहिए? यह संस्कार प्रायः उसी समय किया जाता था, जब चन्द्रमा किसी पुरुष नक्षत्र में होता था। यह संस्कार न्यूनाधिक रूप में आयुर्वेद के अनुभव पर आधारित प्रतीत होता है क्योंकि इसमें गर्भिणी स्त्री की ध्राणेन्द्रिय (नासिका) के दाहिने छेद में बट वृक्ष का रस छोड़ा जाय, ताकि उसे गर्भपात न हो।

उनाश्वलायन ग्रह्यसूत्र – के अनुसार “गर्भावस्था के तृतीय मास में पति दिन भर उपवास की हुई पत्नी को गाय के दही में एक यवका बाल और दो माष (उडद) के दाने मिलाकर तीन बार पीने को दे और प्रत्येक बार उससे पूछे तुम क्या पी रही हो?” पत्नी को प्रत्येक बार “पुंसवने, पुंसवने” कहना चाहिए।” इस संस्कार में “सुपर्णोडारी” आदि मन्त्रों के द्वारा सुन्दर तथा स्वस्थ शिशु को जन्म की कामना व्यक्त की जाती थी। ऐसा विश्वास व्याप्त था कि इस संस्कार के सम्पादन से पुत्र उत्पन्न होने में बाधा उपस्थित करने वाली स्थितियों का देवपूजन के माध्यम से निवारण होता था।

सीमन्तोन्नयन – ग्रहसूत्रों में यह सम्भावना व्यक्त की गई है कि “स्त्री द्वारा गर्भ धारण करने पर अनेक राक्षसियां गर्भ को समाप्त करने या भावी सन्तान को पीडा एवं हानि पहुंचाने के लिए उद्यत रहती हैं। इसके लिए पति को “श्री” का आह्वान करके इन व्याधियों को भगा देना चाहिए।”

“सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत् सीमन्तोन्नयनम् इति कर्मणि नामधेयम्” अर्थात् जिस कृत्य में गर्भवती स्त्री के सीमन्त को उन्नयन किया जाता था। उसे सीमन्तोन्नयन⁶ कहते थे। स्त्री के केशों को संवारकर प्रतीकात्मक रूप से गर्भ को सभी प्रकार से आघातों के विरुद्ध अधिकतर सावधानी से रक्षा करने के तथ्य पर ही बल दिया जाता था।

ग्रहसूत्रों के अनुसार, इस संस्कार का समय गर्भ का चतुर्थ अथवा पंचम मास था। स्मृतियों ने यह काल छठे से आठवें महीने तक का माना है, जबकि ज्योतिष ग्रन्थों की मान्यता है कि यह समय शिशु के जन्म तक कभी भी हो सकता है। वस्तुतः इस संस्कार की आवश्यकता गर्भ के चतुर्थ मास की समाप्ति के पश्चात् ही होती है क्योंकि गर्भ के पांचवें मास से ही भावी शिशु का मानसिक निर्माण प्रारम्भ होता है और उसी समय विशेष रूप से गर्भ के सम्बन्ध में अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता होती है। आश्वलायन, बौधायन, आपस्तम्ब तथा पारस्कर के अनुसार यह संस्कार प्रथम गर्भधारण के समय ही होना चाहिए।

किन्तु कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि यह प्रत्येक गर्भ के अवसर पर सम्पन्न किया जाना चाहिए।

इसमें पति अपने हाथ से पत्नी के केशों में सुगन्धित तेल डालकर, कंधे से काढकर, उदुम्बर अथवा “अर्जुन वृक्ष की शलाका को मृदु सीपी या सेही कांटे से पत्नी के केशों को स्वच्छ कर पट्टी निकाले और सुन्दर जुड़ा बांधकर यज्ञशाला में प्रवेश कराए।”

उस समय वीणा आदि वाद्ययन्त्र बजाए जायें तथा सामवेद के मन्त्रों का उच्चारण हो।

इस संस्कार का उद्देश्य – गर्भवती के उल्लास को बढ़ाना है। इसमें उत्तम स्त्रियां गर्भिणी को श्रेष्ठ एवं वीर सन्तान का प्रसवन करने का आशीर्वाद देती हैं। इसका एक अन्य उद्देश्य गर्भवती के लिए अत्यधिक श्रम वर्जित करके उसे मानसिक और शारीरिक आराम देना था। पुराणों में प्रस्ताव किया गया “इस संस्कार में नान्दीमुख नामक पितरों की पूजा करनी चाहिए।”⁷

इस प्रकार भ्रूण में पुत्री के होने या पुत्र के होने पर कभी भी विवाद नहीं हुआ।

ये भ्रूण में आज के दौर में पुत्री की समस्याओं का आंकलन गलत होता जा रहा है। इस पुत्री के भ्रूण से बनने पर तीन रूपों का अलग-अलग दर्शाया गया है।

1. कन्या, 2. माता, 3. पत्नी

देवी भागवत में हमें नारी का एक चौथा रूप मिलता है— देवी के रूप में। यहाँ में — कन्या के रूप की बात करते हैं।

वर्तमान दौर में भ्रूण का मायना क्या है?

क्या भ्रूणहत्या और परिवार में लड़कियों की उपेक्षा की चिन्ताजनम तस्वीर के बीच यह अच्छी खबर है कि लड़कियों को ध्यान में रखकर बनाई गई नगद सहायता देने की सरकारी योजनाएँ कारगर हो रही हैं। योजना आयोग द्वारा कराए गए अध्ययन में पाया गया कि धन मिलने से परिवारों में सुरक्षा की भावना आती है। परिणामस्वरूप बालिकाओं के प्रति माता-पिता के व्यवहार में परिवर्तन आता है। चूंकि ऐसी सहायता सशर्त होती है, इसलिए बच्चियों की बेहतर देख-रेख संभव हो जाती है, उन्हें समय पर टीके लगवाते हैं, स्कूल भेजते हैं और वैद्य उम्र यानी अठारह साल के होने पर ही उनके विवाह के बारे में सोचते हैं। अगर यह रुझान लगातार मजबूत हो तो निश्चित रूप से उससे सामाजिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में बेहतर प्रगति होगी।

योजना आयोग द्वारा बनाए गए जनसंख्या विशेषज्ञों के दल ने पन्द्रह केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा ऐसी योजनाओं के अमल का अध्ययन किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि लाडली, धनलक्ष्मी, राजलक्ष्मी, बेटी बचाओ, कन्या बचाओ अभियान, गरीबों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता के सही इस्तेमाल की सम्भावना है, जिससे मानव विकास के विभिन्न सूचकांकों पर कमजोर तबकों— खासकर महिलाओं और बालिकाओं की स्थिति सुधारी जा सकती है। जिस वक्त क्या भ्रूण हत्या रोकने के लिए बने कानून की प्रभावशीलता पर कई सवाल उठ रहे हैं और आमतौर पर लैंगिक भेदभाव के मामले में सामाजिक मानसिकता के रूढ़िग्रस्त रहने के संकेत हैं, उस समय लक्ष्य केन्द्रित सशर्त नकद सहायता की अपेक्षा बेहतर सफलता नई आशा पैदा करती है। कुछ अध्ययनों ने यह खुलासा भी किया गया है कि शिक्षा एवं समृद्धि का प्रसार सामाजिक सोच में बदलाव लाने में विफल रहा है। ऐसे में सरकारों के सुनियोजित सकारात्मक हस्तक्षेप से अगर सूरत बदल रही है, तो यह बड़ी राहत की बात है।

नोट — भ्रूण में बनने के बाद बिना देख-रेख का “एक 4 नवम्बर 1988 जन्म ओवसाना 1991 में यूक्रेन में कुत्तों के साथ रही पाई गई। ओक्साना ने कुत्तों की

ज्यादातर आदतें सीख ली। ओक्साना गुर्राती थी, भौंकती थी और झुककर रिरियाती थीं। कुत्तों की तरह भोजन को खाने से पहले वह सूंघती थी” इससे यह सिद्ध हुआ कि भ्रूण बनने व तैयार व उससे उत्पन्न वह लड़का या लड़की के देखबाल भी अनिवार्य है।

संदर्भ

1. चाणक्य का मानना था कि किसी राज्य में स्त्रियां सुरक्षित और सुखी हैं तो वह राज्य फलता फूलता है। अन्यथा उसके शासक को उसकी चिन्ता करनी चाहिए। पृ. 156
2. मारी जीवन की कथा, पृ. 3
3. सुश्रुत ने चरकसंहिता में बताया, पृ. 25

डॉ. बीना जैन
सह-आचार्य, चित्रकला विभाग,
रा.वि.वि., जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

प्रागैतिहासिक कला में सामाजिक-जीवन का चित्रांकन

मानव जाति के इतिहास का आरम्भ संघर्षों तथा युद्धों से हुआ है। आदिम मनुष्य की क्रूरताओं तथा युद्ध-लिप्साओं को कम करने और उनमें सभ्यता और सद्भावना की उत्कण्ठा का स्फुरण करने में कला का ही एकमात्र योगदान रहा है। कला की जिज्ञासा ने मनुष्य को मनुष्य के निकट लाने और उनमें पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करने का कार्य किया। यही कारण है कि आधुनिक इतिहासविदों एवं पुरातत्त्वज्ञों ने मानव-सभ्यता की खोज के लिए कला को महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार किया है।

आदिम मानव-सभ्यता में कला की उत्प्रेरणा के विषय में विद्वानों की धारणा है कि मनुष्य ने इस पृथ्वी में जिस अतीत वेला में नयनोन्मीलन किया, तभी से कला के प्रति उसकी जिज्ञासा स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हुई। उसके इस कलानुराग के विभिन्न उपादान प्रागैतिहासिक सभ्यता के अवशेषों में उपलब्ध हुए हैं। ये कला-उपादान चट्टानों, नदी-तटों और गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। भारत में विभिन्न अंचलों से कला के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनका समय विद्वानों ने 3000 ई. पूर्व से भी पहले का सिद्ध किया है।¹

प्रागैतिहासिक काल के अस्थि-पंजरों, पाषाण-अस्त्रों तथा अन्यान्य प्रकार के विविध अवशेषों से मनुष्य के अस्तित्व की प्राचीनता का ही बोध होता है किन्तु उसकी अन्तश्चेतना के प्रवाह का परिचय एक मात्र कलाकृतियों से मिलता है; और मानव के सांस्कृतिक इतिहास में उसका यही मानसिक पक्ष विशेष महत्त्व रखता है। शिला-चित्रों से न केवल प्राचीनतम मनुष्य के स्वभाव, जीवन-संघर्ष और उसकी बाह्य परिस्थितियों के संघात का ज्ञान प्राप्त होता है वरन् उसकी चेतना में निहित सृजनशीलता, मौलिक उद्भावना-शक्ति तथा व्यवस्था की सजगता से युक्त सौन्दर्य-बोध का भी प्रमाण उपलब्ध होता है। मानव के मनोविकास में कला-चेतना की अनिवार्य स्थिति एवं योगदान अनुपेक्षणीय है। मनुष्य-मनुष्य के बीच का सम्बन्ध तथा उसको सम्भव बनाने वाला सामाजिक परिवेश कला में किन-किन रूपों में प्रतिफलित

होता है, इसका भी बहुत-कुछ ज्ञान प्रागैतिहासिक चित्रों के विधिवत् अनुशीलन से प्राप्त किया जा सकता है और अन्यत्र किया भी गया है। सामाजिक विकास की वर्तमान स्थिति तक आते-आते मानव-मन के जो बहुत से आदिम तत्त्व तिरोहित हो गये थे, प्रागैतिहासिक चित्रकला उसकी ओर ध्यान आष्ट करती है। ये मानव के सांस्कृतिक अभियान के प्रथम आलेख हैं। लेखन के पूर्व आलेखन ही संस्कृति का मुख्य संवाहक था।²

भारत के प्रागैतिहासिक आलेखनों एवं चित्रों का अनुशीलन करने वाले विद्वानों में एलन हाटन ब्रॉड्रिक (Alan Houghton Brodick), स्टुअर्ट पिगाट (Stuart Piggott), डी. एच. गॉर्डन (D. H. Gordon), प्रो. जुनेर (Zuner), लियोन्हार्ड अदम (Leonhard Adam), श्री एवं श्रीमती अलचिन (Allchin), सी. ए. सिल्वे लाड, पंचानन मित्र और मनोरंजन घोष का नाम प्रमुख है। ब्रॉड्रिक महोदय ने संसार के प्रागैतिहासिक चित्रों की प्राचीनता का विश्लेषण करते हुए, भारत में उपलब्ध चित्रों को अमेरिका और योरोप के बाद रखा है। ये शिलाचित्र मिर्जापुर बाँदा, होशंगाबाद, पंचमढ़ी आदि अनेक स्थानों से उपलब्ध हुए हैं। बाँदा के सरहट, करियाकुण्ड, कर्पटिया तथा मलवा आदि स्थानों पर उपलब्ध सामग्री विशेष महत्त्व की है।³ सरहट में शिला पर लाल मिट्टी के रंग से चित्रित तीन अश्व उल्लेखनीय हैं। मलवा में चित्रांकित ऐसी गाड़ी मिली है, जिसके पहिये नहीं हैं और जिसमें एक व्यक्ति रथ पर आरूढ़ है। रथ के पृष्ठ भाग में एक छत्रधारी एवं दोनों पार्श्वों में धनुष-बाण तथा दण्ड धारण किये हुए दो अंग-रक्षक भी अंकित हैं।⁴ (चित्र-1) करियाकुण्ड में एक ऐसा चित्र मिला है, जिसमें एक बारहसिंगा और अनेक धनुधारी व्यक्ति उसका पीछा करते हुए दर्शाये गये हैं। इन चित्रों में एक ऐसा भी दृश्य है जिसमें पिछले पैरों पर खड़ा होकर एक बन्दर बांसुरी बजा रहा है और उसके पास ही तालियाँ बजाता हुआ एक व्यक्ति ताल के साथ नाच रहा है।⁵ इस विषय की सबसे सुन्दर और उल्लेखनीय चित्र सामग्री पंचमढ़ी से प्राप्त हुई है। ये चित्र वहाँ के प्रसिद्ध महादेव पर्वत के चारों ओर अवस्थित डोरोकीदीप, महादेव बाजार, सोनभद्रा, जम्बूद्वीप, निम्बूभोज, मारोदेव, बनियाबेरी, तामिया, और झालाई आदि स्थानों की चित्रित गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार कुछ भित्ति चित्र होशंगाबाद के निकट आदमगढ़ नामक स्थान से भी मिले हैं।

इन चित्रों में तत्कालीन जनजीवन और संस्कृति की अनेकताओं के दर्शन होते हैं। ये चित्र नाना रूपों के हैं, जैसे हस्ति, चीता, बाघ, रीछ, वराह, हरिण आदि का आखेट करते हुए; धनुष-बाण को लेकर दो दल संघर्ष करते हुए; वन में पशुओं को चराते हुए चरवाहे; विचरण करते हुए बैल, घोड़े, कुत्ते, बकरी; और छत्ते से मधु निकालते हुए आदि दृश्यों से सम्बन्धित हैं।⁶

प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रों में सामाजिक जीवन की स्थिति सूचित करने वाले अनेक दृश्य आलिखित मिलते हैं एक निश्चित सामाजिक संस्था के रूप में परिवार की मान्यता मानव सभ्यता के विकास-क्रम में बहुत बाद में हुई, किन्तु विकास के विविध स्तरों में उसकी सत्ता अनेक रूपों में नितान्त प्रारम्भिक अवस्था से ही मिलने लगती है। मानवेतर जीव-जगत में भी नर-नारी-परक द्विधा विभाजन, पारस्परिक आकर्षण, सहचरण, सहवास तथा नवजात सन्तति के प्रति आत्मीयता का भाव स्पष्ट और व्यापक रूप से लक्षित होता है। मनुष्य में सन्तान-रक्षा की वृत्ति जो एक प्रकार से आत्म रक्षा का ही परिविस्तार कही जा सकती है, नैसर्गिक काम-वृत्ति से कम महत्त्व नहीं रखती। फिर भी जहाँ तक प्रागैतिहासिक शिला-चित्रों का सम्बन्ध है, काम-चेतना की अभिव्यक्ति जिजीविषा की तुलना में अत्यन्त नगण्य सिद्ध होती है। इसका प्रमुख कारण सम्भवतः यह है कि आदिम और प्रागैतिहासिक युगों की गहन संघर्षपूर्ण अवस्था में शक्तिशाली और हिंसक पशुओं के समक्ष मनुष्य के आगे जीवन-रक्षा और क्षुधा-शान्ति यह दो समस्याएँ इतनी प्रबल थीं कि इनके समाधान में उसकी समस्त चेतना केन्द्रित रही। काम, प्रकृति के स्वाभाविक धर्म के रूप में स्थित था, किसी जिजीविषापरक समस्या के रूप में नहीं। कदाचित् इसीलिए जब कलात्मक अभिव्यक्ति सम्भव हुई तो पशु और पशु-संघर्ष ही उसके मुख्य विषय बने। पारिवारिक-सामाजिक दृश्यों का चित्रण फलतः जीवन के अधिक सुस्थिर और साधन-सम्पन्न होने के बाद ही विशेष रूप से सामने आया। प्रागैतिहासिक काल के अधिक प्राचीन चित्रों में 'पुत्रदारगृहादि' वाली आसक्ति की कल्पना तक मन में नहीं उठती। मातृत्व और परिवार की विविध स्थितियों से सम्बद्ध जो भी चित्र मिलते हैं वे इसीलिए उत्तर पाषाण और नव पाषाण काल के ही अधिक प्रतीत होते हैं। शिला-चित्रों में शिशुओं का चित्रण अपवाद रूप में ही मिलता है।

सामाजिक जीवन से सम्बन्धित दृश्यों में कामचार, अपहरण, सहचरण, सहनर्तन, प्रसाधन, शिशुपालन, पशुपालन, भोजन-छाजन तथा जल-संचय आदि विषय अंकित मिलते हैं। ये चित्र अधिकतर पूरक शैली में हैं। रूप-रचना में अवश्य विभेद है। प्राप्त भारतीय शिला चित्रों में रति-कर्म कहीं भी प्रदर्शित नहीं है। स्त्रियाँ युद्ध-आखेट जैसे किसी कठोर कार्य में प्रवृत्त चित्रित नहीं की गई हैं। उनका कार्य सहचरण और संपोषण के क्षेत्र तक ही सीमित प्रतीत होता है।⁷

सहचरण से सम्बन्धित एक चित्र दक्षिण भारत में रायचूर प्रदेश के बेलारी क्षेत्र में स्थित कुप्पगुल्लु नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत चित्र में आरोही, नर्तक, अनेक स्त्री-पुरुष युग्म तथा पशु-पक्षी आदि प्रदर्शित हैं।⁸ पंक्तिबद्ध नग्न मानवाकृतियाँ अतीत युग के उस आदिम सहचरण की द्योतक हैं जिससे पारिवारिक जीवन विक.

सित हुआ। इनमें बायीं और नीचे कुछ कामातुर पुरुष स्त्रियों को पकड़े हुए हैं। ऐसा काम भाव शिला-चित्रों में नितान्त अपवाद के रूप में अंकित मिलता है अन्यथा समस्त चित्र इससे मुक्त हैं। (चित्र-2)

अपहरण का एक अत्यन्त मनोरंजक दृश्य जम्बूद्वीप (पंचमढ़ी) में लाल बाह्यरेखा युक्त श्वेतवर्णी शैली में चित्रित है। जिसमें धनुर्धर वीर पुरुष एक स्त्री को हाथ पकड़कर ले जा रहा है। तीन स्त्रियाँ इस स्थिति को देखकर चकित हैं। 'पाणि गृहित' स्त्री उनकी ओर अथवा पुरुष की ओर मुड़कर देख रही है। सभी स्त्रियों का देह-भाग आयताकर और एक-दूसरे को काटती हुई कर्ण-रेखाओं से युक्त है। उनके अधोवस्त्र भी रेखांकित हैं; पहली और अन्तिम आकृति में चारखाने वाले और तीसरी चौथी में खड़ी पट्टियों वाले रूप में। मुख का रचना-प्रकार विशिष्ट एवं सरल है। शिरोरेखा सीधी नाक की नोक तक चली जाती है और होठों का आभास दिये बिना उसे एक ही घुमाव देकर गले से जोड़ दिया गया है। स्त्री-पुरुष सभी के चेहरों के भीतर बिन्दु देकर आँख का चित्रण किया गया है जो अन्य प्रकार की पूरक शैलियों में नहीं मिलता। धनुर्धर की मुद्रा से अपहरण की सफलता का गर्व प्रकट हो रहा है। इस शैली में व्यंग्यमूलक विकृतीकरण (caricaturing) का समावेश इसे विशिष्ट और अद्वितीय बना देता है।⁹ (चित्र-3)

आदिम पारिवारिक जीवन का सूचक एक महत्त्वपूर्ण दृश्य मान्टोरोज़ा (पंचमढ़ी) में सफेद रंग से पूरक शैली में अंकित है जिसमें धनुष-बाण, तरकस और फरसे से सुसज्जित एक योद्धा अपनी स्त्री को साथ लिये जा रहे है। स्त्री सिर पर पात्र या टोकरी में कुछ फल रखे हुए है। उसके पीछे-पीछे पालतू कुत्ता चला आ रहा है। कुत्ते के मुँह और स्त्री के हाथ को मिलाने वाली रेखा सम्भवतः डोरी की द्योतक है। स्त्री के इस हाथ की कलाई में दो कंगन भी स्पष्ट हैं पैर ऊँचे अधोवस्त्र से निकले हुए उसी ओर गतिशील हैं जिधर उसका योद्धा-पति जा रहा है। स्त्री-पुरुष दोनों के केश-जूड़े के रूप में बँधे हैं जिनके आकार में कुछ अन्तर है। कुत्ते के उठे हुए कान और टेढ़ी पूँछ से भी आलेखन की स्वाभाविकता प्रदर्शित होती है।¹⁰ (चित्र-4) इसी चित्र के समीप उसी शैली में झोपड़ी का अद्वितीय दृश्य भी अंकित है जो पारिवारिक स्तर पर पशु-पालन का निश्चित प्रमाण प्रस्तुत करता है। ऊर्ध्व दृष्टि से आलिखित केन्द्रीय अलंकृत चौकोर घरे के बीच टिके हुए भीतरी खम्भे से बंधी हुई एक बकरी स्वाभाविक मुद्रा में बैठी है बाहर रासम-वृषभ बिना बन्धन के ही विराजमान हैं। दाहिने खम्भे का निचला भाग हल जैसे आकार का बना है और बैल के सींग उसके ऊपर आक्षिप्त हैं। झोपड़ी में एक ओर थैली जैसी कोई वस्तु लटक रही है, दूसरी ओर भीतर पात्रों में कुछ और रक्खा हुआ है। दायीं तरफ पीछे कमर पर हाथ रखे एक स्त्री खड़ी है जिसके पैर चित्र में प्रदर्शित नहीं हैं। नीचे

की ओर पक्षियों के उठे हुए शीश जैसी आकृतियाँ सम्भवतः घर के सामने बने बाड़े के खूंटों की द्योतक हैं।¹¹ शिला-चित्रों में ऐसे दृश्य बहुत ही कम उपलब्ध होते हैं जिनसे पशु-पालन, कृषि-कार्य, गृह-निर्माण आदि व्यवस्थित पारिवारिक जीवन की सूचक अनेक विकास-दशाएँ एक साथ चित्रित मिलती हों इस चित्र में वे समस्त अवस्थाएँ एक साथ प्रदर्शित हैं। अतः इसकी महत्ता स्वतः सिद्ध है। (चित्र-5)

पारिवारिक जीवन की विकसित अवस्था को व्यक्त करने वाला एक चित्र नि. म्बूभोज (पंचमढ़ी) में सफेद जमीन पर लाल रेखाओं से अंकित है। इस दृश्य में मंडप के नीचे बैठे एक दम्पति को प्रेमालाप करते हुए प्रदर्शित किया गया है। पुरुष का हाथ स्त्री के कन्धे पर और स्त्री का हाथ उसकी कटि पर रक्खा है। पुरुष के दूसरे हाथ में एक दण्डाकार वस्तु है तथा स्त्री भी अपना दूसरा हाथ किसी वृत्ताकार वस्तु पर टिकाये है। स्त्री के ऊपर वाला वृत्त चन्द्रमा के समान प्रतीत होता है। पुरुष के ऊपर वाली आकृति खुले पट वाले गोल गवाक्ष का आभास देती है। मण्डप का बायाँ भाग ही प्रदर्शित है जो दो खम्भों पर टिका है। तिरछी रेखाएँ उसके पट्टीदार रूप को व्यक्त करती हैं। दोनों के बैठने की मुद्रा स्वाभाविक है पर वह उनके आसनस्थ होने की कल्पना जगाती है।¹² (चित्र-6)

वात्सल्य-भाव से सम्बन्धित एक अन्य महत्त्वपूर्ण चित्र लिखनिया-2, (मिर्जापुर) की गुफा में गेरुए रंग से अंकित है इस चित्र में 'माता एवं शिशु' का नितान्त आदिम रूप लक्षित होता है।¹³ माता की पीछे को निकली हुई चोटी, चोटी के पीछे का गुच्छा उसके सज्जित और प्रसन्न रूप की व्यंजना करता है। फैले हाथों से शिशु को उठाये वह अपनी वत्सलता को सहज रूप में व्यक्त कर रही है। (चित्र-7)

इमलीखोह (पँचमढ़ी) में सफेद रंग से पूरक शैली में अंकित एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक दृश्य है। जिसमें माता अपनी दो सन्तानों के साथ सम्भवतः पूजन-सामग्री लिये किसी पवित्र कार्य के लिये जा रही है। यह वस्त्राभूषण पहने है। उसके एक हाथ में मंगल-कलश है जिस पर तीन फल या पुष्प रक्खे हुए हैं तथा दूसरे में थैली जैसी एक विचित्र प्रकार की वस्तु है। उसके जुड़े के नीचे केश-बन्ध और अधोवस्त्र सभी का रूप स्पष्टतया प्रदर्शित हैं पीछे की बालिका अपनी माता को एक हाथ से थामे हुए है। उसका भी दूसरा हाथ ऊपर उठा हुआ है।¹⁴

स्वस्तिक-पूजा से सम्बन्धित एक विशाल दृश्य बनियाबेरी (पंचमढ़ी) गुफा में सफेद मटमैले रंग से चित्रित है। इस दृश्य में न केवल पूजकों द्वारा छत्र चढ़ाने का दृश्य अंकित है वरन् उनकी भंगिमाओं में पूजा-भाव का भी समावेश हुआ है। स्वस्तिक को केन्द्र में रखकर उसके चतुर्दिक, मुख्यतया इधर-उधर दूर तक उपासकों की आकृतियाँ विविध मुद्राओं में गतिशीलता और भावशीलता के साथ

प्रदर्शित हैं। चार के हाथ में छत्र हैं, शेष तीन में से एक के हाथ के पास फल या पुष्प जैसी लघु गोलाकृत वस्तु बनी है तथा अन्य दो विनत होकर एक हाथ कटि पर रखे दूसरे हाथ से अभिवन्दन कर रहे हैं। सभी अनेक प्रकार के वस्त्र-विन्यास से युक्त पुरुष लगते हैं यद्यपि सबके केश जूड़े के रूप में बँधे हुए हैं तीन छत्र प्रायः एक जैसे बने हैं, केवल एक में वृक्ष की जड़ की तरफ दण्ड के निचले सिरे पर त्रिधा-विभाजन का अंकन है। स्वस्तिक गुणक-चिह्न के समान अंकित न होकर धन-चिह्नवत् बनाया गया है और उसे भी समानान्तर रेखाओं द्वारा आपूरित किया गया है।¹⁵ बाह्यरेखा भी दोहरी है। बायीं ओर के भागों में समानान्तर रेखाओं के स्थान पर दो उलटे, लहराते त्रिशूलों जैसे विचित्र चिह्न अंकित हैं जो देव-युग्म के समान प्रतीत होते हैं। (चित्र-8)

मधु-संचय से सम्बन्धित एक आकर्षक दृश्य जम्बूद्वीप (पंचमढ़ी) में अंकित है।¹⁶ प्रस्तुत दृश्य में दो व्यक्ति दो पृथक् सीढ़ियों के सहारे मधु-संचय कर रहे हैं। एक व्यक्ति लम्बी टहनी के द्वारा मक्खियों को उड़ा रहा है तथा दूसरा व्यक्ति मधु-पात्र लटकाये उसमें मधु भरने की चेष्टा कर रहा है दोनों की मुद्रा सजीव और स्वाभ. विक है। सम्भव है मधु-संचयकर्ताओं का युग्म दम्पति हो क्योंकि पात्र वाली आकृति जूड़े और उन्नत वक्ष के कारण स्त्री प्रतीत होती है। सफेद रंग से अंकित इस चित्र में एक जटिल स्थिति को सुथरे और कलात्मक संपुंजन के साथ आलिखित किया गया है। (चित्र-9)

वन-जीवन की उन्मुक्तता में आदिम मानव ने अपने मन के उल्लास को भी संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया है। ऐसे अनेक चित्र सर्वत्र उपलब्ध हैं जिसमें सह-नर्तन एवं समूह-नर्तन तथा वाद्य-वृन्द का अंकन हुआ है। एकाकी नर्तन के बहुत कम उदाहरण उपलब्ध हुए हैं। अनेक पशु-पक्षियों का छद्मरूप धारण करके नर्तन करते हुए भी चित्र प्राप्त हुए हैं। चित्रों में कहीं केवल पुरुष-समूह, कहीं स्त्री-पुरुष और कहीं दो पुरुष के मध्य एक नारी का अंकन हुआ है। सभी चित्रों में अपूर्व आन्तरिक लय, आवेग एवं गतिमत्ता है। उदाहरणार्थ - सहनर्तन का एक आकर्षक दृश्य जम्बूद्वीप (पंचमढ़ी) में सफेद रंग से पूरक-शैली में चित्रित है इसमें एक वादक और नर्तकी दोनों की गतिमय स्थिति पारस्परिक संगीत के साथ प्रदर्शित है।¹⁷ नर्तकी के दोनों हाथ आगे की ओर एक-सी तरंगायित मुद्रा में अंकित है। पीछे लहराती हुई वेणी, पैरों और ऊपरी देह-भाग का आगे का झुकाव तथा ग्रीवा की तदनुरूप उठान शरीर की लयान्वित सजीवता का परिचय देती है। पुरुष के रूप-विन्यास में पैरों का अतिशय लहरीलापन तथा देह को इधर-उधर आवर्तित करते और दोनों हाथों से वाद्य-यन्त्र बजाते हुए घूमकर देखना उसी प्रकार की अन्विति

का बोध कराता है जो नर्तन में ताल और लय की संगति के साथ घटित होती रहती है। (चित्र-10)





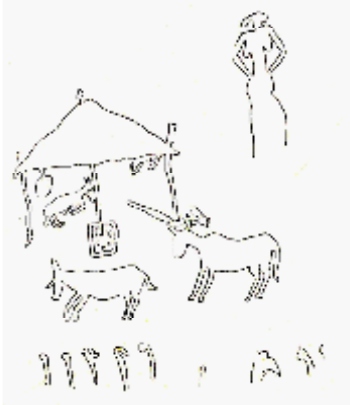

आखेटक के संगीतमय सामाजिक वातावरण को अभिव्यक्त करता हुआ यह चित्र निम्बूभोज (पंचमढी) में रेखांकित है।¹⁸ इसमें एक आखेटक अपना धनुष-बाण और फरसा पीछे रखकर निश्चित भाव से पाँच तन्तुओं वाले अर्ध-चन्द्रकार वाद्य को बजा रहा है। सम्भवतः यह कोई पशुमुखी आच्छादन धारण किये हुए चित्रित है। क्योंकि उसकी मुखाति गर्दभ के समान है। खुले हुए मुख से गायन की मुद्रा प्रदर्शित हो रही है उसके सामने पैरों के पास बैठी स्त्री का मुख भी कुछ-कुछ उसी प्रकार खुला हुआ है और वह समीपस्थ बालक की ओर वाला हाथ भी ऊपर उठाये हुए है। तदनन्तर एक निर्वस्त्र तरुणी दोनों हाथ उठाकर नर्तन करती हुई चित्रित है। (चित्र-11)

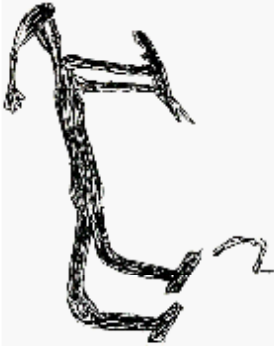

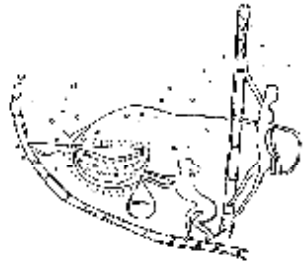


प्रागैतिहासिक कला में सामाजिक जीवन से सम्बन्धित जो दृश्य अंकित है उनमें आकृतियों को विभिन्न क्रियाओं तथा विविध भाव-भंगिमाओं में प्रस्तुत किया गया है। ये आकृतियाँ आरम्भिक कला-रूप होने पर भी अत्यन्त शक्तिशाली और सजीव हैं। इन आकृतियों में प्रायः सीमा-रेखा अंकित करने के पश्चात् समस्त आकृति को रंग से भर दिया गया है। कुछ आकृतियाँ चौड़ी रेखाओं में बनायी गयी हैं और कुछ आकृतियों में शरीर बहुत क्षीण चित्रित हुआ है। अनेक आकृतियाँ दो त्रिभुजों को मिलाकर डमरू के समान अंकित की गयी हैं। लोक-कला में आज भी इस विधि से मानवाकृतियाँ चित्रित की जाती हैं। कहीं-कहीं सीढ़ी के समान शरीर अंकित होने के कारण एक विशेष शैली भी प्रचलित हुई है जिसे सोपान मानव (Ladder man) कहते हैं।¹⁹ आयताकार एवं रेखाओं से अलंकृत शरीर वाली मानवाकृतियाँ सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध होती हैं। कहीं-कहीं ये आकृतियाँ छाया-चित्र के सदृश भी प्रतीत होती हैं। एक ही शैली एवं रचना-विधि की पुनरावृत्ति भी इसमें मिलती है जिसके अनेक कारण हो सकते हैं। पूजा प्रतीक, देवताओं एवं सामान्य मानवाकृतियों के अतिरिक्त अनेक अतिमानवीय आकृतियाँ भी कल्पना-वैचिष्य के साथ प्रस्तुत की गयी हैं। इनमें पशु तथा मानव रूपों का अद्भुत सम्मिश्रण है। प्रागैतिहासिक मनुष्य आखेट, पूजा एवं उत्सवों के अवसर पर अनेक पशु-पक्षियों के छद्म रूप भी धारण करते थे, अतः यह कहना कठिन है कि ये छद्म रूप हैं अथवा प्रागैतिहासिक चित्रकार द्वारा कल्पित विचित्र अतिमानवीय आकृतियाँ हैं। मुक्तकेश, आदिम कटिवस्त्र अथवा पत्राच्छादन एवं हाथों में किसी आयुद्ध आदि के साथ ये मानवीय आकृतियाँ सजीव और गतिशील मुद्राओं में अंकित की गयी हैं। कुछ आकृतियाँ इस प्रकार की भी हैं जिनमें शरीर, हाथ, पैर आदि तो चित्रित हैं किन्तु मुख चित्रित नहीं हैं। कहीं-कहीं केवल केश अवश्य अंकित हैं।

प्रागैतिहासिक चित्रों के विषय में अनेक विद्वानों की यह धारणा रही है कि उनमें उपयोगिता, अभिचारपरकता, अतिविश्वास आदि की भावनाएँ प्रमुख रही हैं; सौन्दर्यमूलक दृष्टि से उनकी रचना नहीं की गयी। किन्तु यह मत नितान्त भ्रामक है सभी देशों की आदिम एवं प्रागैतिहासिक कलाकृतियों को देखकर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस कला में भी सौन्दर्य-भावना है। केवल उपयोग ही मानव को कलात्मक सृजन की प्रेरणा देने वाला एकमात्र साधन नहीं है। वॉन कोनिंग्सवाल्ड का मत है कि “यातुमूलकता होते हुए भी शिला-चित्रों से सौन्दर्य-चेतना को बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। ये चित्र उपयोगिता से इतर तत्त्वों का अस्तित्व भी प्रमाणित करते हैं।”²⁰ सौन्दर्य की प्रवृत्ति भी मनुष्य के सांस्कृतिक विकास और उसके सौन्दर्यबोध का निश्चित परिचय देती है। अभिचार कृत्य के लिए केवल चित्रण अपेक्षित हो सकता है पर उसमें रूपात्मक सुव्यवस्था तथा उसकी उत्कृष्टता और शक्तिमत्ता की आवश्यकता नहीं होती। जबकि इन चित्रों में ये गुण मिलते हैं और ये ही प्रागैतिहासिक मनुष्य में सौन्दर्य-वृत्ति की उपस्थिति के साक्षी हैं। इन चित्रांकनों में भय, आवेग, उद्वेग, उल्लास, उन्माद, सहानुभूति, श्रद्धा, प्रेम, मैत्री तथा क्रीड़ा-परिहास आदि अनेकानेक भावों का प्रभावपूर्ण अंकन हुआ है। इस प्रकार वर्तमान कला-चेतना से सम्पन्न तथा नये-पुराने प्रायः सभी प्रतिमानों से परिचित होकर भी हम यह अनुभव करते हैं कि आदिम युग की अनेक कला-तियाँ निजी विशेषताएँ रखते हुए, अभिव्यंजना शक्ति और रूप-संयोजन में असाधारण उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण हैं एवं तत्कालीन जन-जीवन की मूर्त और सजीव संस्कृति के भी दर्शन इन अंकनों के माध्यम से होते हैं, इस दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. वाचस्पति गैरोला: भारतीय संस्कृति और कला, लखनऊ, 1973, पृष्ठ सं. 99
2. जगदीश गुप्त : प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली, 1967, पृष्ठ सं. 1
3. जगदीश गुप्त : प्रागैतिहासिक भारतीय कला के पदचिह्न, दिल्ली, 1961, पृष्ठ सं. 4-5
4. वाचस्पति गैरोला: भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1963, पृष्ठ सं. 72
5. वाचस्पति गैरोला: भारतीय संस्कृति और कला, लखनऊ, 1973, पृष्ठ सं. 100
6. गोपाल मधुकर चतुर्वेदी : भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ सं. 25
7. गिर्राज किशोर अग्रवाल, कला कलम, अलीगढ़, 2002, पृष्ठ सं. 21
8. जगदीश गुप्त : प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली, 1967, पृष्ठ सं. 365
9. जगदीश गुप्त : प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली, 1967, “पारिवारिक दृश्य” फलक-II पृष्ठ सं. 366
10. जगदीश गुप्त : प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली, 1967, पृष्ठ सं. 360
11. जगदीश गुप्त : प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली, 1967, पृष्ठ सं. 361

 <p>fp=&1 %cuki fg; sdhcfxkVW clnk</p>	 <p>fp=&2 %b gpj. l] c] k] h</p>
 <p>fp=&3 %ri gj. l] t Ec] h] %ape<H/2</p>	 <p>fp=&4 %b l] ol] d t hou] eK] f] t k %ape<H/2</p>
 <p>fp=&5 %b k] M] d k n';] eK] f] t k %ape<H/2</p>	 <p>fp=&6 %nE fr] fuEch] t %ape<H/2</p>

 <p data-bbox="309 598 618 637">fp=&7 9%ek k, oaf k kqfet kZp</p>	 <p data-bbox="779 598 1075 637">fp=&8 9%lofr d i tvkj i p<ch</p>
 <p data-bbox="282 917 651 956">fp=&9 9%eAqj p;] t Ecywh %ape<H/2</p>	 <p data-bbox="752 917 1108 956">fp=&10 9% gur Z] t Ecywh %ape<H/2</p>
 <p data-bbox="504 1226 866 1265">fp=&11 9%okn~&oknu] fuEctH% %ape<H/2</p>	

भारतीय संस्कृति में यज्ञ और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता

भारतीय संस्कृति का मूल आधार श्रुति या वेद है। वेद ऋषियों के द्वारा अनुभव किए गए आध्यात्मिक तथ्यों के भण्डार हैं। वेद की सत्यता में विश्वास ही आस्तिकता का सूचक है। "नास्तिको वेदनिन्दकरु" के अनुसार जो वेद का निन्दक है, वही नास्तिक है। धर्म का परम प्रमाण श्रुति है। यज्ञ वैदिक धर्म का मेरुदण्ड है। अग्नि में नाना देवताओं को उद्दिष्ट कर हविष्य अथवा सोम रस का हवन यज्ञ के नाम से अभिहित किया जाता है। "यज्ञ" प्रा.त और अनुष्ठेय भेद से दो प्रकार का होता है। प्राकृत यज्ञ तो प्रकृति में सतत होता रहता है और दूसरा अनुष्ठेय या कृत्रिम यज्ञ मनुष्यों के द्वारा किया जाता है। प्रा.त यज्ञ ही इस कृत्रिम यज्ञ का आधार है। प्राकृत यज्ञ में विज्ञान के सिद्धान्त तथा अनुष्ठेय यज्ञों में उनका प्रयोग बताया गया है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का महत्वपूर्ण स्थान है। सृष्टि और उसके संचालन का भारतीय प्रतीक "यज्ञ" है। यह मनुष्यों को उसके जीवन के नियमों का स्मरण दिलाता रहता है और इस तथ्य को भी विस्मृत नहीं होने देता कि यज्ञ या आत्मत्याग ही सृष्टि का ध्येय और सृष्टि चक्र का आधार है।

यज्ञों द्वारा ही मानव जीवन के विभिन्न कर्तव्यों का निर्माण होता है। इससे ही धर्म का पालन होता है, जिससे ईश्वर का साक्षात्कार होता है। जब तक मनुष्य धर्म का पान या आत्मसाक्षात्कार और सृष्टि तत्व का ज्ञान कराने वाला यज्ञ नहीं करता तब तक वह कमफल के बन्धनों से बंधा रहता है।

गृहस्थ के यज्ञ सम्बन्धी सामाजिक व सार्वजनिक कर्तव्य दो श्रेणियों में विभक्त हैं:— 1. प्रतिदिन के। 2. अवसर विशेष के। प्रथम समूह में पांच महायज्ञों (ब्रह्म, देव, पितृ, भूत, नृ) की गणना होती है और द्वितीय के अन्तर्गत पाक, हवि तथा सोम यज्ञ आते हैं।

मनुस्मृति में इस प्रकार कहा गया है —

“अध्यापनं ब्रह्मयज्ञारू पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो देवो बलिर्भूतो नृयरो तिथिपूजनम्।।”

यज्ञ की महिमा का वैदिक व लौकिक साहित्य के ग्रन्थों में बहुत अधिक वर्णन किया गया है। “अग्नि होत्रं जुहुयात् स्वर्गकामरू” अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाला अग्निहोत्र करे।

ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ को ईश्वर का स्वरूप मानते हुए इसे सर्वोपरि कर्म कहा गया है— “यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म।”

ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि यज्ञ करने से सम्पूर्ण प्रजा का कल्याण होता है तथा मनुष्य सब पापों से विमुक्त हो जाता है— “सर्वस्मात्पाप्मनों निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्र।”

यज्ञ का वैज्ञानिक महत्व भी है। दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग तथा रोग से प्राणियों को दुरुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार सुगन्धयुक्त वायु और जल से आरोग्य तथा रोग के नष्ट होने से सुख मिलता है। मानव संस्कृति के विकास में अग्नि का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। इसमें पवित्रीकरण की इतनी अधिक शक्ति है कि गन्दी से गन्दी वस्तु भी इसमें आहूति देने से शुद्ध हो जाती है। सम्भवतरू इसी तथ्य को भली प्रकार से समझकर प्राचीन ऋषियों ने यज्ञ के रूप में वायु शुद्धि को सम्मिलित किया है।

पर्यावरण शुद्धि के लिए आज सम्पूर्ण विश्व चिंतित है परंतु इस समस्या का निदान अभी तक नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में हमारे वेदों में वर्णित प्राण ऊर्जा विज्ञान पर आधारित यज्ञ प्रक्रिया ने एशिया, यूरोप व अफ्रीका के वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। वेद के अनुसार मानव के उत्थान का मार्ग यज्ञमय जीवन ही है।

यज्ञ से न केवल वायु ही शुद्ध होती है वरन् उसके सम्पर्क में आकर जल तथा फिर मृदा भी शुद्ध होती है। यज्ञ भस्म भी एक उत्तम उर्वरक होता है जिससे उत्पादित अन्न अधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट तथा स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। यज्ञ के धुएँ में ऐसिटिक अम्ल होता है जो फसल में रोग फैलाने वाले कीड़ों को नष्ट करता है। अनेक विदेशी विद्वानों ने यज्ञ में प्रयोग में आने वाली सामग्री यथा— तिल, घी, चीनी, एवं अन्य पदार्थों के जलने से उत्पन्न धुएँ का विश्लेषण कर पाया कि इससे समीपस्थ क्षेत्र में कीड़े समाप्त होते हैं, चर्मरोग, रक्तचाप एवं दमा आदि रोगों के कीटाणु समाप्त हो जाते हैं। यज्ञ के धुएँ से समीप वनस्पतियों पर भी अच्छा प्रभाव

पडता है तथा पौधों एवं फसल में वृद्धि होती है।

यज्ञ करने से ऐहिक विपत्तियाँ दूर होती हैं तथा मनुष्य को जन्म- मरण के असाध्य कष्ट से भी मुक्ति मिलती है। यज्ञ में दी गई हवि अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर वर्षा के रूप में धरती के अन्न-जल की वृद्धि करती है।

अतर्क यज्ञ करना हमारा दायित्व ही नहीं वरन् एक राष्ट्रीय कर्तव्य होना चाहिये। अतर्क यह निर्विवाद सत्य है कि विश्वव्यापी प्रदूषण की समस्या का समाधान हमारे वेदों में निहित है। आवश्यकता आज के युग में वेद के बताये गये विदेशों के मात्र अनुपालन की है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. ओसा श्रीकृष्ण, भारतीय संस्कृति के तत्व, अभिषेक प्रकाशन।
2. कुमार संजय(सं.), श्री मंजूषा, त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल-जून, 2013, प्र०- प्रीतिव्यास, जोधपुर।
3. शास्त्री कलानाथ, भारतीय संस्कृति सिद्धांत और स्वरूप, प्र०-जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर।
4. शर्मा लखन, वेदाश्रित विकसित विज्ञान, प्र० जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर।
5. प्रसाद राजेन्द्र, संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान, प्र०- जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर।

डॉ. सुषमा जैन
प्राचार्य, शुभांकन फाईन आर्ट्स
कॉलेज, इन्दौर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

मुगल लघुचित्र शैली का क्रमिक विकास

भारत में 15 वीं और 16 वीं शती का विशेष महत्व है। इस समय एक नयी संस्कृति ने जन्म ले लिया था। परिणाम स्वरूप एक ओर हिन्दु राजाओं के नेतृत्व में भारतीय संस्कृति चित्र, संगीत एवं वास्तु में अपना आलौकिक रूप प्रस्तुत करने में संलग्न थी तो दूसरी ओर मुस्लिम सुल्तानों द्वारा नयी सांस्कृति परम्पराओं की स्थापना हो रही थी। तत्कालीन चित्रशैली का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सुल्तानों और मुगलों के दरबारों में बनने वाले चित्रों में भारतीय परम्परा तथा ईरानी परम्पराओं का समन्वय दिखाई देता है।¹ भारत का मध्यदेशीय भाग भी इस परिवर्तन से अछूता न रहा। 1936 इस्वी में महमूद खिलजी ने मालवा पर अधिकार कर लिया उसके उदार शासन में हिन्दु मुस्लिम संस्कृतियों का समन्वय हुआ। उसने चित्रकला में भी समन्वयात्मक मार्ग निकाला।²

माण्डू के 1439 के कल्पसूत्र के चित्र भारत के ऐसे लघुचित्रों में गिने जाते हैं जिन पर उनका रचना काल अंकित है। आकृतियों में अपभ्रंश दिखाई देता है, फारसी कला के प्रभाव से चित्रों में हाशिये भी बनाये जाने लगे।³ स्त्रियों के खड़े होने के स्थान पर पुष्पलता की पट्टी तथा बैठने की विशेष मुद्राएँ आदि इस शैली को दूसरी शैलियों से भिन्न परिभाषित करते हैं। इसमें कुछ इरानी प्रभाव परिलक्षित होता है। जैसे पतली गर्दन एवं परिपेक्ष्य, जो इसे इरानी कला के नजदीक पहुंचाते हैं।

काले खंडालवाला एवं मोतीचन्द्र ने इसका विस्तृत अध्ययन किया और बताया कि “यह प्राचीन मालवा पश्चिम शैली से भिन्न है यह ईरानी शैली से मिलती जुलती है।” इन उदाहरणों से यह प्रकट होता है कि मुगलों के भारत प्रवेश से बहुत पहले ही दिल्ली सुल्तानों के आश्रय में चल रही कला की भांति माण्डू में भी चित्रकला ईरानी व अपभ्रंश शैलियों के मेल से एक नयी गति को प्राप्त हो गयी थी।⁴

तत्पश्चात् माण्डू से ही एक और कल्पसूत्र प्राप्त हुआ है जिसका रचनाकाल 1492 है। यह ईरानी शैली का है तथा ग्यासशाह खिलजी के काल में रचा गया था। 15 वीं और 16 वीं शती तक आते-आते चित्रों पर ईरानी प्रभाव दृष्टिगोचर होने

लगा था जैसे कि सुनहरे रंग का प्रयोग और एक पुष्प पट्टी जो चित्र को द्विभाजित कर इसे पश्चिमी शैली से भिन्न करती हैं। इस शैली का प्रभाव नियामतनामा में भी दिखाई पड़ता है।⁵ ग्यासशाह खिलजी के बाद नासिर शाह खिलजी (1502–1215 ई.) शासक हुआ। इसके समय फारसी शैली का पुनः प्रभुत्व हो गया। यद्यपि इस काल की कला का परवर्ती शैली पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तथापि इस समय के चित्रों पर एक अभिप्राय समस्त मालवा शैली में रूढ़ हो गया जिसमें चित्र के निचले भाग को फूलपत्तियों द्वारा अलंकृत कर दिया जाता था।⁶

माण्डू में नियामतनामा वाली प्रति का चित्रण ग्यासशाह के समय से प्रारंभ होकर उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी नासिरशाह (1501–10) के समय पूरा हुआ। इस समय यहां ईरानी प्रभाव आ रहा था जो सादी की 1503 ई. वाली चित्रित प्रति 'बुस्तान' से प्रकट होता है।⁷ 1505 ई. में नियामतनामा का चित्रण हुआ इसके चित्रों में शीराज की तुर्कमान शैली के साथ किंचित भारतीय लक्षण भी मिलते हैं। कहीं-कहीं स्त्रियों की भारतीय वेशभूषा, मुखाकृतियों, आम आदि के वृक्षों का समावेश, भारतीय मुद्रायें, पारदर्शी ओढ़नी, गोलाई लिये हुए शरीरांगों की रचना। बड़ी तथा अपभ्रंश शैली जैसी आंखें यह स्पष्ट घोषित करती हैं कि जौनपुर शैली के ढंग की चित्रकला इस स्थान पर यथेष्ट लोकप्रिय थी। नियामतनामा पाण्डुलिपि के चित्र बहुत सुन्दर हैं, पुरुषों की वेशभूषा फारसी जैसी लगती है, किन्तु नारी चित्रण का शारीरिक सौष्टव तथा वेशभूषा भारतीय है। यह मुख्यतः एक व्यंजन पुस्तिका है जिसमें कई व्यंजनों की विधि लिखी गयी है जिसके ईरानी व हिन्दी नाम हैं यह पुस्तक इंडिया ऑफिस पुस्तकालय लंदन में है। नियामतनामा से भारत की उत्तरकालीन इस्लामी कला शैली को अपना वैशिष्ट्य मिला।

मालवा के सुल्तान सांस्कृतिक कार्यों में बड़ी रुचि लेते थे और ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी राजधानी माण्डू पूर्व मुगल काल में एक उत्कृष्ट सांस्कृतिक कला केन्द्र थी। उनका विदेशी दरबारों से संपर्क था। 1467 में महमूद खिलजी के यहां बाबर के पितामह मिर्जा अबू सईद का राजदूत जमालुद्दीन अस्तराबादी आया। इन संपर्कों के माध्यम से ईरान और माण्डू के मध्य चित्रकला का आदान-प्रदान होता था। माण्डू में चित्रित ग्रंथों में ईरानी कला का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिये 'नियामतनामा' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया जा सकता है। यह फारसी की नस्ख लिपि में है और इसकी लिखावट माण्डू से ही प्राप्त सादी के बोस्तां नामक ग्रंथ के समान है। इसमें ईरानी चित्रों जैसे प्राकृतिक और उद्यानों के दृश्य बनाये गये हैं तथा नक्काशी का महीन काम किया गया है, ईंटों के आलेखन बनाये गये

हैं। नस्खी लिपि का प्रयोग भी अलंकरण के कारण की हुआ है।

राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में शेख सादी के बोस्ता की एक चित्रित प्रति सुरक्षित है। यह माण्डू के सुल्तान नासिर शाह खिलजी (1501-12 ई.) के समय की है इसमें 43 चित्र बने हैं जिनमें विभिन्न कलाकारों ने काम किया है इन सभी चित्रों पर ईरान के प्रसिद्ध कलाकार विहजाद की छाप दिखाई देती है, जो हिरात शैली का जन्मदाता माना जाता है। इन चित्रों में भारतीय प्रभाव बहुत ही कम है। चेहरों पर भावों का अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से चित्रकार ईरान से भागकर भारत आये और उन्हें माण्डू के दरबार में शरण मिली जहां उन्होंने चित्रित ग्रंथों की रचना की। यह संभव हो भी सकता है क्योंकि 1506 ई. में शैबानी खां उजबेक ने हिरात पर अधिकार कर लिया था और आसपास के क्षेत्र में मारकाट मचा दी थी यह शैबानी खां वही है जिसमें बाबर जैसे शेरदिल भी डरता था उसने बाबर जैसे साहसी व्यक्ति को भी मध्य एशिया से बाहर खदेड़ दिया था। इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकालीन भारतीय चित्रकला में ईरानी प्रभाव मुगलों से पहले ही आ चुका था।⁹

मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर मध्य एशिया का रहने वाला था। ईरान से बाबर का संपर्क सदा बना रहा। उसने अपनी आत्मकथा में विख्यात ईरानी कलाकार विहजाद के चित्रों का समीक्षात्मक विवरण दिया है जिससे बाबर के कला प्रेम के बारे में पता चलता है। बाबर द्वारा स्थापित चित्रशैली का विकास अकबर के काल में हो ही सका क्योंकि बाबर और हुमायूँ का जीवन कठिन संघर्षों में बीता। हुमायूँ सदा युद्धों में ही जूझता रहा किन्तु फिर भी वह कला के लिये समय निकाल ही लेता था। ईरानी प्रवास काल में हुमायूँ ने वहां की चित्रकला और उसकी विशिष्ट परम्पराओं का गहन अध्ययन किया था। वहां से भारत लौटते समय वह अपने साथ दो निपुण कलाकार ख्वाजा अब्दुस्समद और सैयद अली को भी लेता आया।⁹ हुमायूँ की मृत्यु के बाद अल्पायु में ही अकबर गद्दी पर बैठा इस प्रकार मुस्लिम काल में कला के विकास का श्रेय अकबर को प्राप्त हुआ

यू तो तेमूरिया वंश के साथ ही मुगल कला का आरंभ हो जाता है, पर अकबर के सिंहासनारोहण से पूर्व तक उसमें विदेशीपन बना रहता है। अकबर पूर्व की कला को हम मुगल शैली के अंतर्गत नहीं रख सकते। हुमायूँ के समय तक मुगल दरबार में जो चित्रकला शैली चलती रही उसे ईरानी कला के अंतर्गत हिरात कलम कहा जाता है।¹⁰

अकबर के शासनकाल में इस शैली से एक नवीन कला शैली का जन्म हुआ जिसे मुगल कला कहते हैं।¹¹ इसके शासनकाल तक उत्तरी भारत में एक विशाल

एवं समृद्धिशाली साम्राज्य स्थापित हो चुका था और साथ-साथ इसी सुखद एवं शांत वातावरण में समस्त कलाओं का दिनों-दिन विकास हुआ। उसने बड़े-बड़े कलाकारों को अपने दरबार में आश्रय दिया और उन्हें उचित अर्थ एवं सम्मान प्रदान किया।¹²

सुलह कुल की भावना के अनुसार अकबर ने गुजराती, मध्यदेशीय, ग्वालियर, माण्डू कश्मीरी, राजस्थानी, जौनपुर, ईरानी, सल्तनती चित्तरों को आमंत्रित किया व संरक्षण प्रदान किया। इसमें अधिकांश गुजराती कलाकार थे जिन्हें अन्य कलाकारों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त था। इस प्रकार अकबर के दरबार में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों चित्रकार थे। भारतीय चित्रकार पटचित्रों और भित्ति चित्रों में कुशल थे। रंग विधान उनका उतना आकर्षक नहीं था।¹³

लगभग 1550 ई. में मध्यभारत में बहुत से पोथी चित्र बने इनमें 'रागमाला' पर भी चित्र बने। ये चित्र अपभ्रंश शैली के बहुत निकट थे। उत्तरी मुगल शैली के प्रारंभिक चित्रों में अपभ्रंश शैली का प्रभाव भी मुखर रहा है। फलस्वरूप अर्द्धमुखी चित्रों में नाक से आगे निकली हुई आंख दिखाई गई है।¹⁴

1554 में जब माण्डू में बाजबहादुर शासक था वह स्वयं संगीत व कविता में पारंगत था। उस काल में लौर-चन्दा एवं लौर पंचाशिका नामक प्रेम कथाओं का चित्रण हुआ। लौर चन्दा हिन्दी अवधी प्रेम कथाओं में सबसे अधिक पुराना ग्रंथ है। इसकी रचना 1370 में मुल्ला दाउद ने 'चन्दायन' नाम से की थी। इसमें लौरिक (प्रेमी) ओर चांद (प्रेमिका) के प्रेम की कथा है जो बड़ी रसभीनी है और गाकर सुनाई जाती है। इसकी प्रतियां बाद में चित्रित की गयीं। अवधी को फारसी लिपि में लिखा गया है। इसकी एक प्रति के कुछ चित्रित पृष्ठ बनारस के भारत कला भवन में है।¹⁵ बाजबहादुर के काल में चित्रकाला की माण्डू शैली का विकास हुआ। माण्डू शैली का प्रथम चरण इसी काल से शुरू हुआ।¹⁶ बाजबहादुर और रूपमती के माण्डू शैली में चित्रित चित्र आज भी बड़ोदा म्यूजियम में सुरक्षित है। इस समय की आकृतियां अपभ्रंश शैली के अधिक निकट था, इस शैली में संयोजनों की सरलता आकृतियों की मुद्रायें रंगों की चटख तथा वास्तु एवं वृक्षों की स्पष्ट सीमायें प्राचीन शैली के ही अनुसार हैं। मुद्राओं की कठोरता में परिवर्तन तथा रेखांकन में बारीकी आ गई है। मुखाकृति की कोणात्मकता तथा वस्त्रों की पद्धति भी बदल गयी है। नीला रंग महत्वपूर्ण हो गया है।

माण्डू में ग्यासशाह महल वाले भित्ति चित्र अकबरी काल के बताये जाते हैं।¹⁷ 1550 ईस्वी लगभग अंकित रागमाला के चित्रों को भी आर्चर ने माण्डू का माना है।¹⁸ गदाशाह की हवेली के चित्र 15 वीं शती के ही बने हैं। माण्डू स्थित गदाशाह

के भवन भित्तियों पर बने इन चित्रों में रेखायें लगभग समाप्त हो गई हैं किन्तु रंग अभी विद्यमान हैं। ये चित्र संभवतः चूने की भित्ति पर टेम्परा शैली में बने हैं। इन चित्रों की वेशभूषा तथा आकृतियों में मेवाड़ी प्रभाव परिलक्षित होता है। किसी-किसी चित्र का बहुत अधिक भाग नष्ट हो गया है इसके अतिरिक्त भित्तियों पर कहीं-कहीं आलेखन भी बने हैं।

1561 ईस्वी में मालवा को मुगलों ने जीत लिया रूपमती ने आत्मघात कर लिया तथा बाजबहादुर माण्डू से पलायन कर गया ऐसी दशा में माण्डू फिर स्वतंत्र न हो सका तथा माण्डू शैली के चित्रकार भी तितर-बितर हो गये 1570 ई. में बाजबहादुर ने आत्मसमर्पण कर दिया। आर्थर का मत है कि यहीं से भागे हुए चित्रकार मेवाड़ पहुंचे उन्होंने 1580 ई. के लगभग गीत गोविन्द तथा 1650 में रागमाला का चित्रण किया। कुछ चित्रकार गांवों में छुप गये होंगे जिन्होंने 17 वीं शती में तीन विभिन्न शैलियों का विकास मालवा में किया। ये सभी शैलियां मध्य भारत में उत्पन्न होकर अन्य राज्यों में विकसित हो गईं।

लघुचित्रों तथा पोथी चित्रों की अत्यन्त समृद्ध संपूर्ण मध्यकाल में दृष्टिगोचर होती है। कला के विकास की दृष्टि से यह काल चित्रकला का स्वर्णयुग कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में संपूर्ण भारतवर्ष में अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग कला शैलियों का विकास हुआ। डॉ. कुमारिल स्वामी के अनुसार उत्तर भारत के लघु चित्रों को दो भागों में बांटा जा सकता है राजपूत तथा मुगल शैली के चित्र।

इस संपूर्ण काल में यदि इतिहास के पन्नों को पलटा जाये तो यह निर्विवाद सत्य है कि मध्यकाल में सबसे पहले अकबर ने ही चित्रकला में नये युग का सूत्रपात किया। अकबर ने रामायण, पंत्रतंत्र, महाभारत आदि भारतीय ग्रंथों का फारसी में अनुवाद करवाया तथा उनकी चित्रित प्रतियां बनवाईं। अकबर के पुस्तकालय में भगभग तीस हजार पुस्तकें थी जिनमें सैंकड़ों ग्रन्थ चित्रित थे। इससे उस महान सम्राट ने चित्रकला को कितना प्रोत्साहन दिया इसका अनुमान लगाया जा सकता है।¹⁹ अकबर ने फतहपुर सीकरी के महलों में भी बहुत से भित्ति-चित्र बनवाये ये चित्र मुगलकालीन विशेषताओं के अनुरूप बने हैं। अधिकतर चित्रों के विषय खेल, शिकार युद्ध और उत्सवों के दृश्य हैं। भारतीय देवी देवताओं के चित्र भी इसमें सम्मिलित किये गये हैं। किन्तु अब इन महलों में भित्ति-चित्रों के अवशेष मात्र रह गये हैं।

अकबर कालीन चित्र शैली की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य चित्र शैलियों से पृथक करती है। इन चित्रों की मूल प्रेरणा ईरानी होते हुए भी इनकी आत्मा भारतीय है। 'हम्जनामा' के पश्चात् यह कला ईरानी व भारतीय विशेषताओं

को आत्मसात कर अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रकट होती है।²⁰

आईने अकबरी में अबुल फजल ने लिखा है कि— चित्र बनाने की सामग्री में बहुत उन्नति हुई है और रंग बनाने की पद्धति भी सुधर गयी है। जिसमें चित्रों की तैयारी में सुविधा हो गयी है। पहले कागज ईरान से मगवाया जाता था किन्तु अकबर ने सियालकोट पंजाब में कागज का एक मुगल कारखाना स्थापित किया और इस स्थान के नाम पर बना 'स्यालकोटी कागज' प्रसिद्ध हो गया था। चित्रकार तुलिका को कलम कहते थे तुलिकायें गिलहरी, ऊंट, बकरें, भैंसे अथवा बिल्ली के बालों से बनाई जाती थी।²¹ 17 वीं शताब्दी के आरंभ में जहांगीर के गद्दी पर बैठने के समय तक मुगल चित्रकला ईरानी बंधनों से मुक्त हो गई थी। जहांगीर के कलात्मक युग में चित्रकारों में एक नवीन जागृति पैदा हुई। विषय और विविध दोनों दृष्टिकोणों से ही मुगल चित्रकला का चरमोत्कर्ष जहांगीर के काल में हुआ।

जहांगीर के समय पशु पक्षियों का इतना स्वाभाविक चित्रण हुआ है कि पक्षियों के पंख एक दम स्वाभाविक लगते हैं। परिपेक्ष्य सिद्धान्तानुसार बने हैं कहीं—कहीं सादृश्य दिखाने के प्रयास में पाश्चात्य प्रभाव भी दृष्टव्य है। इस काल में कला पूर्णतः दरबारी नहीं रही बल्कि उसमें जन साधारण से संबंधित विषय, पशु, पेड़ पौधे, शिकार, उत्सव आदि विषयों पर भी अनेकों चित्र बने।

जहांगीर के समय हिन्दुओं की धार्मिक पौराणिक गाथाओं का चित्रण बंद हो गया था तथा चित्रण संबंधी सभी विषय जहांगीर विषयक घटनाओं में सिमट गये थे। इसके अतिरिक्त जहांगीर के समय 'शबीह' चित्र अर्थात् व्यक्ति चित्र भी बहुतायत में बने साथ ही उसने एक बहुत छोटे आकार के व्यक्ति चित्र की परंपरा भी आरंभ की थी जिसे पगड़ी में पहना अथवा गले में लटकाया जाता था। यह अन्नक अथवा हाथी दांत पर अंकित किया जाता था।²² इस समय हाशिये और भी अलंकृत बनने लगे हाशिये की कला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बर्लिन के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित जहांगीर के युग की मुरक्का (एलबम) है। कभी—कभी ये हाशिये मूल चित्र से भी अधिक सुन्दर बन गये हैं।²³ शाहजहां के काल में मुगल चित्रकला का रूप बदल गया। उसकी व्यक्तिगत रुचि चित्रकला में नहीं अपितु वास्तुकला में थी। फिर भी अपने पूर्वजों की बनाई परम्पराओं के अनुसार ही चित्रकार मुगल दरबार में आश्रय पाते रहे। इस काल में चित्रकला का विकास मानो थम सा गया। कला पुनः मुगल साम्राज्य के वैभव के समरूप चमक—दमक का प्रदर्शन करने लगी।

जिस प्रकार शाहजहां कालीन वास्तु में उसकी रुचि भवनों में बने पत्थरों के कलात्मक जोड़ तथा मोजाइक में बने बेलबूटों में उभरकर आई उसी प्रकार चित्रकला

भी वर्णनात्मक हो गई तथा भावना का स्थान आलंकारिकता ने ले लिया। मुख्यतः शाही विषयों पर बने चित्र जिनमें भड़कीले रंगों तथा स्वर्ण रंगों का अत्यधिक प्रयोग हुआ तथा इस युग के चित्रों में भी नक्काशी तथा वास्तु विषयों का बाहुल्य देखा जा सकता है।

शाहजहां अपने पूर्वजों की भांति चित्रकला में कोई भी ऐसी देन नहीं छोड़कर गया जिसका कला जगत में पृथक रूप से उल्लेख हो इसके विपरीत उनके बड़े भाई शहजादा दारा का हिन्दु विद्वानों और चित्रकारों के प्रति दृष्टिकोण अपने पूर्वजों जैसा बना रहा। दारा का लगभग 40 चित्रों का मुक्का (एलबम) जो संप्रति इंडिया ऑफिस लायब्रेरी लंदन में सुरक्षित है उसके सच्चे कला प्रेम की गवाही देता है।²⁴

औरंगजेब के राज्यकाल में मुगलशैली का पतन आरंभ हो गया उसके समय के भी कुछ चित्र प्राप्त होते हैं। किन्तु उसने इस कला को कहीं प्रोत्साहन दिया हो ऐसा कोई भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता। मुगल सल्तनत की उज्ज्वल ऐतिहासिक परम्परा छिन्न-छिन्न होकर बिखर गयी। मुगल दरबार से निष्कासित हो चित्रकार, दिल्ली की गलियों, लखनऊ, अल्वर, जयपुर, जोधपुर, ग्वालियर, गुलेर, बसौहली आदि स्थानों में बिखर गये।²⁵ इस प्रकार अनेक स्थानों पर अनुकूल वातावरण पाकर कला में विभिन्न शाखायें फूटी और नवीन कला शैलियों का विकास हुआ। इनके विलय से जो शैलियां उपजी उसमें इसके समकालीन सशक्त शैली राजस्थानी का और विकास हुआ तथा इसके बाद पहाड़ी शैली का प्रभुत्व रहा। यह सत्य है कि मुस्लिम कालीन चित्रकला जिसने लगभग दो शताब्दियों तक एक समृद्ध परंपरा का निर्वाह किया इस काल के बने अनेक चित्र, पोथियों तथा शबीह चित्र देश विदेश के संग्रहालयों में सुरक्षित अपने काल की उत्कृष्ट चित्रकला के प्रमाण हैं। मुगल लघुचित्र शैली मुगल सल्तनत के उगते सूर्य के साथ उगी और ढलते सूर्य के साथ ढल गयी और ऐसी ढली कि फिर सवेरा नहीं हो सका।

संदर्भ

1. डॉ. गोपाल मधुकर चतुर्वेदी — भारतीय चित्रकला का इतिहास — पृ. सं. 119
2. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल — कला और कलम — पृ. सं. 142
3. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल — कला और कलम — पृ. सं. 141
4. आर. ए. अग्रवाल — कला विलास — पृ. सं. 82
5. कृ. निधि शुक्ला — लघुशोध — मध्यकालीन मालवा के लघुचित्र— पृ. सं. 23
6. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल — कला और कलम — पृ. सं. 142
7. आर. ए. अग्रवाल — कला विलास — पृ. सं. 82

8. डॉ. रमानाथ मिश्र – मध्य कालीन भारतीय कलाएँ और उनका विकास—पृ. सं. 6
9. डॉ. गोपाल मधुकर चतुर्वेदी – भारतीय चित्रकला ऐतिहासिक संदर्भ – पृ.सं.119
10. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल – कला और कलम – पृ. सं. 165–166
11. अविनाश बहादुर वर्मा – भारतीय चित्रकला का इतिहास – पृ. सं. 129
12. डॉ. रीता प्रताप – भारतीय चित्र एवं मूर्तिकला का इतिहास – पृ. सं. 131
13. डॉ. रीता प्रताप – भारतीय चित्र एवं मूर्तिकला का इतिहास – पृ. सं. 139
14. डॉ. गोपाल मधुकर चतुर्वेदी – भारतीय चित्रकला: ऐतिहासिक संदर्भ—पृ. सं. 120
15. डॉ. रमानाथ – मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास – पृ. सं. 5
16. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल – कला और कलम – पृ. सं. 82
17. आर. ए. अग्रवाल – कला विलास – पृ. सं. 82
18. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल – कला और कलम – पृ. सं. 141
19. डॉ. रमानाथ मिश्र – मध्यकालीन भारतीय कलाएँ और उनका विकास—पृ. सं.14
20. डॉ. रमानाथ मिश्र – मध्यकालीन भारतीय कलाएँ और उनका विकास—पृ. सं.15
21. अविनाश बहादुर वर्मा – भारतीय चित्रकला का इतिहास – पृ. सं. 140
22. डॉ. जी. के. अग्रवाल – कला और कलम – पृ. सं. 187

सुनीता भौर्याल
शोध छात्रा, चित्रकला विभाग,
एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

अध्यात्म एवं धर्म की दृष्टि से भारतीय कला : सांस्कृतिक संदेश वाहक

संस्कृति शब्द व्यापक है, जिसके पाँच प्रमुख तत्व माने गये हैं इतिहास, धर्म, साहित्य, कला तथा लोक परम्परा नैतिकता, दर्शन, भाषा आदि भी इसी में निहित हैं। भारतीय संस्कृति जहाँ एक ओर धार्मिक प्रतीकात्मकता एवं बौद्धिक है वही दूसरी ओर मानवीय सामाजिक व अनुभूति परक भी है। इसकी एक राष्ट्रीय परम्परा रही है, जो सद्विचारों एवं क्रियाओं से पोषित होती है इसी के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति विश्व उद्दान का सबसे सर्वोत्तम पुष्प है। जो विश्वास एवं आस्था का उल्लास बिखेरती, हताशा को आशा में बदलती व असन्तोष को भस्म करती है साथ ही भारतीय संस्कृति में एकीकरण एवं समन्वय की अपार शक्ति है जिससे भारत के प्रत्येक क्षेत्र में अन्य संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संस्कृति की समिश्रण सहिष्णुता एकीकरण और समन्वय की रचनात्मक प्रवृत्तियों के कारण ही भारतीय सभ्यता में विविध पुनीत धाराओं का आलौकिक समागम हुआ। भारत में सर्वतोमुखी विकास के महत्व को समझाया गया, इसके परिणाम स्वरूप आचार्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि में ही मानव कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। भारतीय दर्शन की चरमपरिणति मोक्ष प्राप्ति में है चारवाक दर्शन के अतिरिक्त सभी दर्शनों का ध्येय आध्यात्मपरक है, जिसका उद्देश्य जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करना है। भारत में दर्शन तथा धर्म का शाश्वत संबंध स्वीकार किया गया है, दोनों एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं व दोनों ही भारतीय जीवन से साक्षात् सम्बन्ध रखते हैं।

आध्यात्मिक, आदि भौतिक, आदि वैदिक, प्रत्येक दर्शन और धर्म की प्रवृत्ति ब्रह्म की ओर रहती है, उसी ब्रह्म भावना में ही अनेकत्व में एकत्व के दर्शन किये जाते हैं। भारत की आध्यात्मिकता भारत का धर्म और उसका जीवन दर्शन भारत में प्राचीन काल से ही उसकी कला में मूर्त है, भारतीय कलाकार की स्वप्नमयी दृष्टि से भारत की सामाजिक परम्परा सांस्कृतिक विरासत चिरन्तर स्वतः मुखारित हो उठती है भारतीय संस्कृति और सभ्यता की स्थायी सफलता उसकी कला में निहित

है। सामाजिक आदर्श, आर्थिक वैभव और धर्म, साम्राज्य बदल गये किन्तु कला में उसकी अमूल्य निधियां संचित है, जिनसे हमें सांस्कृतिक तत्व मिलते हैं भारतीय कला सदा से ही धार्मिक सत्य और नैतिक आदर्शों की संवाहिका रही भारत की उन्नत कला में धार्मिक भावनाओं और ईश्वर के प्रति उनके गम्भीर चिन्तन का वैभवपूर्ण, श्रेष्ठ और पर्याप्त वर्णन होता है। वैसे तो सभी प्राचीन संस्कृतियों की कला प्रधानतः धर्म विषयक रही किन्तु भारतीय कला की विशेषता अत्यन्त स्पष्ट है भावात्मक एवं रागात्मक एकता, मानवीय भावनाओं की अपेक्षा उसकी आध्यात्मिकता को प्रतिबिम्बित करने के साथ साथ उन्हें अमरत्व भी प्रदान करती है।

समस्त भारतीय कलाओं में हम पाते हैं, जीवन का उद्देश्य आनन्द एवं कल्याण की उपलब्धि और मंगल की कामना निहित है आनन्द, कल्याण और मंगल बाह्य जीवन में सदैव अपूर्ण रहता है। उसकी पूर्णता आत्मानुभूति व आत्म संतोष में है। भारतीय कला आध्यात्मिकता प्रधान है, जिसकी व्यंजना भक्ति पथ से की गयी है। अनेक सूफी संतो, प्रेममार्गी, भक्ति मार्गी कवियों, वौद्धिक दर्शनों की उदारता सादगी मधुरता से भारतीय कला मन मोह लेती है। मानव जीवन के आचार विचार परिमार्जन की प्रक्रिया निरन्तर गतिमान रहती है। अतः भारतीय कला कभी जड़ न होकर सतत् विकासशील प्रवाहमान धारा है, जो आदर्शों मूल्यों मान्यताओं को अपने में समेटे रहती है। अनगिनत ज्ञात, अज्ञात कलाकारों के निरन्तर चिन्तन एवं दर्शन के परिणाम स्वरूप भारतीय कला समृद्ध और विस्तृत है।

भारतीय कलाएँ महामाया के वंधनजयी रूप को अभिव्यक्ति देने का प्रयास है, मूर्तियों काव्यों और शब्दों के माध्यम से मनुष्य गूढ अर्थों की व्यंजना करता है, उसके मूल में दिये हुए सूक्ष्म अर्थ का परिचय प्राप्त करने से कला की सौन्दर्यानुभूति पूर्ण और गम्भीर बनती है। आध्यात्म के बिना सौन्दर्य सौभाग्य विहिन है, आध्यात्मिक अर्थ के साथ कला पूजनीय बन जाती है। भारतीय दृष्टि से सौन्दर्य बोध का संबन्ध वस्तुजगत के बाह्य और भीतर दोनों ओर रहा है। सौन्दर्य दर्शन के लिए विशेष दृष्टि का होना आवश्यक है, यह विशेष दृष्टि ही किसी कला वस्तु का गुण है जो प्रत्येक कलाकृति में सूक्ष्मतया स्थूल रूप में विद्यमान रहता है, आन्दानुभूति एवं सौन्दर्यानुभूति के लिए स्थूल तत्वों में ऐसा संयोजन स्थापित किया जो एक दूसरे के उत्कर्ष को व्यक्त करते हैं। भारतीय कला की मान्यता है प्रत्येक कलाकृति के दर्शन से कुछ उसके गुण का परिचय प्राप्त हो वह पूर्णतः अनन्यसंभूत सुगम तथा आलौकिक हो उच्च दृष्टि का परिचायक हो। आध्यात्मिक दृष्टि से कला का स्वरूप विवेचन विराट भावभूमि पर प्रतिष्ठित है, वेदान्त दर्शन में ब्रह्म की आनन्दमय और उसकी अभिव्यक्ति को आनन्दमय कहा गया है उसकी आनन्दमयी सत्ता सोलह कलाओं द्वारा उद्भाषित

है। आनन्द की खोज मनुष्य की शाश्वत आकांक्षा है, ब्रह्म अथवा आत्मा का अस्तित्व मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा सृष्टि के रहस्यों को जानने का प्रयत्न मनुष्य ने आदि काल से ही किया। आध्यात्मिक खोज निरन्तर गतिशील रही वेद, उपनिषद्, जैन, बौद्ध, भागवत, शैव धर्म ने विभिन्न दर्शन तथा जीवन मार्गों की स्थापना की जिससे मनुष्य चिरशांति प्राप्त कर सके।

कला की लम्बी वैभवशाली यात्रा का यह सूक्ष्म वृत्तांत एक अर्न्तधारा को आलोचित करता है, वह यह की मनुष्य और प्रकृति का सहअस्तित्व चिरन्तन है इस आध्यात्मिक सह अस्तित्व से महान कला के अंतहीन तारकमण्डल का जन्म होता जो भविष्य का चमत्कारी द्वार बनता है इसका चिरन्तन उदारहण नटराज का जो अस्ति से अस्तित्व का पूर्णतम दृश्य आकार है नटराज की मूर्तियां अपने संतुलन से उत्कर्ष प्रस्तुत करती हैं। भारतीय कलाकार ने अपने कृतियों का निर्माण अर्न्तमन की प्रेरणा से किया। कलाकृतियों में तन्मयता के भाव आत्मविस्मृति और आत्म समर्पण की उच्च भावना समाविष्ट है, इसलिए भारतीय कलाकृतियाँ उस शाश्वत सत्य तथा अनन्त दीप्तीपुंज सत्ता को अपनी दुसाध्य साधना केवल से निराकार को साकार, असीम को ससीम, अपार्थिव को पार्थिव और अज्ञेय को ज्ञेय रूप में बाँध देने की निपुणता प्राप्त की यही कला की आध्यात्मिक भावभूमि है। यहीं पृष्ठभूमि संस्कृति की चिरकालीन संवाहिका रही है।

साहित्य एवं संगीत— साहित्य संगीत की वाणी है, संगीत ने उसे अपनी तरंगित लयों के साथ दिशांत में भर दिया। साहित्य शब्द व चिन्तन प्रधान है और संगीत स्वर व नाद प्रधान। रामायण, महाभारत, भजन कीर्तन के साथ कबीर, तुलसी, मीरा, सूरदास सिख गुरुओं के द्वारा रचित साहित्य की अपनी वाणी में उस परमात्मा के प्रतिकार को संगीत में ध्वनित किया।

स्थापत्य— वास्तुकला के माध्यम पत्थर, ईट आदि है, जो भौतिक गुणों की दृष्टि से कठोर तथा स्थानिक है कलाकारों द्वारा इनमें भी अपने कौशल से कोमलता और सूक्ष्मता गुणों का बोध भरा गया है। पत्थर का "कोमलता" गुण मानसिक बोध आत्मक होता है। मंदिर भारतीय स्थापत्य कला का महत्वपूर्ण पक्ष है इसका संबंध हिन्दू धर्म के विविध सम्प्रदायों के साथ साथ जैन व बौद्ध धर्म से भी रहा है। देवी देवताओं की पूजा हेतु उनके मूर्त रूपों की स्थापना के लिए जो सुन्दर भवन निर्मित हुए वही मंदिर कहलाए। तृतीय शताब्दी पश्चात् हिन्दू संस्कृति के अनेक भव्य मंदिर आज भी सुरक्षित देखे जा सकते हैं बौद्ध धर्म के चर्मोत्कर्ष में बौद्ध स्तूपों, बिहारों, चैत्य गृहों के साथ हिन्दू शैल मंदिर की स्थापत्य के विशिष्ट उदाहरण हैं।

मूर्तिकला— संसार में मूर्ति जितना शक्तिशाली प्रतीक रहा है, उतना कोई अन्य

प्रतीक नहीं। भारतीय मूर्तिकला अन्य देशों की कलाओं की ही भांति युग के साथ कला की शैली बदलती रही किन्तु उसके अंतः में धार्मिक आस्था व आध्यात्मिक प्रेरणा सदैव विद्यमान रही। उदारणतः त्रिमूर्ति भारतीय मूर्तिकला में भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से श्रेष्ठ सुन्दर व प्रसिद्ध है जिसमें सृष्टि के तीनों रूपों को दिखाया गया है। शक्ति की मूर्तिया भी सम्पूर्ण भारत में पायी जाती है, वासुदेव कृष्ण , विष्णु की मूर्तिया अनंत को अपने में समेटे भारत में प्राचीन काल से ही पायी जाती है। सारनाथ में गुप्त काल की धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में बैठी बुद्ध की भव्य मूर्ति देश की सबसे सुन्दर मूर्तियों में से एक है। भारत के सभी क्षेत्रों में शिव, विष्णु, शक्ति गणपति, कार्तिकेय, बृद्ध ,जैन तीर्थकरों की भव्य मूर्तियों में अभिव्यक्ति का आत्मिक तत्व एक ही है। सत्यं शिवमं सुदरम्।

चित्रकला— भारत की चित्रकला उसकी अन्य कलाओं और संस्कृति की भांति बहुत प्राचीन है निश्चित ही ये चित्र बर्बर मानव की भाव चेतनाएँ व्यक्त करते हैं जिसने पूजा अनुष्ठान और उल्लास में ये चित्र बनाये। अजन्ता, एलोरा, जैन, पाल एवं राजपूत , पहाड़ी शैली के चित्र पूर्णतः धर्म प्रधान हैं। पुरुष और प्रकृति , आत्मा और परमात्मा के व्याख्यान चित्र रचे गये हैं उनका सम्बन्ध केवल भाव और आस्था से है।

संदर्भ

1. अग्रवाल,वासुदेवशरण (1987) भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी।
2. अग्रवाल, आर0ए0(2008) कला विलास भारतीय चित्रकला का विवेचन, इण्टर नेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
3. उपाध्याय, भगवत शरण (2007)भारतीय कला की भूमिका, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. कासलीवाल, मीनाक्षी (2009) भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
5. गुप्त, जगदीश (1961)भारतीय कला के पदचिन्ह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
6. गैरोला, वाचस्पति(1990) भारतीय चित्रकला, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
7. जोशी, ज्योतिष, समकालीन कला ललित अकादमी, दिल्ली।
8. तिवारी, मारूति नन्दन, गिरी कमल(1991)मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
9. प्रसाद, जनेश्वर (1985)रीतीकालीन श्रृंगारिकता एवं ललित कलाएँ, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली।
10. प्रताप, रीता(2010) भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
11. लूनिया, वी0एन0(2004)भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा।

महेन्द्र सिंह सुरेला
शोधार्थी, सेन्टर फॉर म्यूजियोलॉजी एण्ड कर्न्जवेशन,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

राजस्थान के प्रमुख संग्रहालयों में प्रदर्शित मूर्तिशिल्प

प्राचीनकाल से ही भारतीय कला एवं संस्कृति में मूर्तिकला का विशेष स्थान रहा है। मूर्तिकला से प्राचीन भारत के सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन का चित्रण उभर कर सामने आता रहा है, मूर्तिकला मानव संस्कृति का ही एक प्रतिवेदन है इसका उदय मानव की सौन्दर्य भावना का परिचायक है। इसी कारण प्राचीन समय से ही भारत में मूर्तिकला का उद्भव देखा गया है। भारतवर्ष के कला क्षेत्रों में मूर्तिकला का विशिष्ट योगदान रहा है। मूर्तिकला के प्रमुख केन्द्रों में राजस्थान का प्रमुख स्थान रहा है।

राजस्थान अपनी भौगोलिक संरचना व सांस्कृतिक महत्व के कारण भारतवर्ष को प्रभावित करता रहा है, प्राचीन समय से ही मूर्तिकला के निर्माण देवप्रसादों, मंदिरों में किया जाता रहा है, क्योंकि प्राचीन समय से ही मूर्तिकला के निर्माण के पीछे कोई ना कोई धार्मिक कारण अवश्य रहा है। अतः प्रारम्भ से ही मूर्तिकला के स्थायी भण्डारों के रूप में मंदिरों व देवप्रसादों को माना गया है परन्तु जैसे जैसे समय बीतता गया प्राकृतिक आपदाओं व बाहरी आक्रमणों के चलते मूर्तिकला के इन स्थायी भण्डारों ने धीरे धीरे संग्रहालयों में आश्रय ले लिया। अतः वर्तमान समय में मूर्तिशिल्प के स्थायी भण्डारों में संग्रहालयों की अपनी अहम भूमिका को देखा जा सकता है। राजस्थान के ऐसे प्रमुख संग्रहालय हैं जो कि अपने मूर्तिशिल्प के संग्रह के कारण महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि विश्वप्रसिद्ध हैं, वह हमारी प्राचीनकाल की धरोहर के रक्षक के रूप में एक स्थायी संस्था के रूप में अपना कर्तव्य बखूबी निभा रहे हैं। ऐसे ही प्रमुख संग्रहालयों की विवेचना निम्न प्रकार से है :-

मण्डोर का संग्रहालय

मण्डोर संग्रहालय की स्थापना सन् 1968 में जनाना बाग के प्राचीन महलो में की गयी है। इस संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में मण्डोर, ओसिया, किराडू, घटियाणा, जूना, सलावास आदि से प्राप्त मूर्ति एवं वास्तुकला के खण्ड प्रदर्शित किये गये हैं, विशेषकर मण्डोर से प्राप्त अवशेषों के लिये पृथक से एक कक्ष बनाया गया है जिसमें 9-10वीं शताब्दी की सूर्य, त्रिविक्रम, सुर-सुन्दरी, नट, यक्ष, दुर्गा, शिव, किचक, नवग्रह

आदि प्रतिमाओं के साथ अलंकृत वास्तुकला के महत्वपूर्ण खण्ड सजाये गये हैं।

बीकानेर संग्रहालय

महाराज गंगासिंह के राज्यारोहण की स्वर्ण जयन्ती के समारोह के अवसर पर तत्कालीन गर्वनर जनरल लिनलिथगो द्वारा 5 नवम्बर, 1937 को गंगा गोल्डन जुबिली म्यूजियम का औपचारिक उद्घाटन हुआ था। जनसहयोग से निर्मित वृताकार वर्तमान संग्रहालय भवन का उद्घाटन 4 सितम्बर 1954 को किया गया।

बीकानेर संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में आरम्भिक गुप्तकालीन मृण्मय मूर्तियों का अमूल्य भण्डार है। रंगमहल से प्राप्त एकमुखी शिवलिंग, उमा-माहेश्वर, दानलीली, अजैकपाद, गोवर्धनधारी कृष्ण, पीर सुल्तान की पैडी से अप्सरा, बडोपत से पुजारिन, प्रेमदृश्य, चिन्तनमग्न आदि मृण्मय मूर्तियाँ आरम्भिक गुप्तकालीन धार्मिक जानकारी देने के साथ-साथ इस क्षेत्र में मूर्तिकला के विकास की प्राचीनता पर प्रकाश डालती हैं। जैन सरस्वती उमा माहेश्वर, नर्तन-गायन मुद्रा में आकृतियों, लक्ष्मीनाराण (झज्जू 16वीं शती) उल्लेखनीय प्रस्तर प्रतिमाये प्रदर्शित हैं।

राजकीय संग्रहालय चित्तौड़गढ़

चित्तौड़गढ़ संग्रहालय की स्थापना सन् 1968 में दुर्ग में स्थित फतेह प्रकश महल में की गयी, यहाँ के संग्रह में करीब 640 पाषाण प्रतिमाएँ, 18 धातु प्रतिमाएँ हैं। यहाँ की मूर्तिशिल्प दीर्घा कक्ष में गुप्तकाल से आधुनिक काल तक की प्रतिमाओं का प्रदर्शन है जिसमें अधिकतर प्रतिमाएँ चित्तौड़गढ़ शाखा से प्राप्त हुई हैं जो दुर्ग से संबंधित हैं। इसके अलावा प्रतापगढ़, पानगढ़, राश्मी (चित्तौड़गढ़) जहाजपुर, मेजाबांध (भीलवाडा) से भी प्रतिमाएँ संग्रहित की गयी हैं। यहाँ के संग्रह में केन्द्रीय पुरातत्व से प्राप्त अश्ववाहिनी देवी मध्योत्तर काल एवं नारी धड गुप्तोत्तर काल तथा पानगढ़ से प्राप्त गणेश पूर्व मध्यकाल एवं जहाजपुर से प्राप्त गोधासन गौरी की श्वेत एवं कृष्ण की प्रतिमाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

धातु प्रतिमाओं में विष्णु वेणुगोपाल एवं नन्दी की प्रतिमाएँ महत्वपूर्ण हैं जो जिलाधीश कार्यालय चित्तौड़ से प्राप्त हुई हैं। इसमें विष्णु को भी एक चौकी पर दर्शाया गया है।

राजकीय संग्रहालय अजमेर

अजमेर के राजकीय संग्रहालय की स्थापना "राजपूताना म्यूजियम" नाम से भारत सरकार द्वारा शहर के बीच 'मैग्जीन' के नाम से चर्चित अकबर किले में 19 अक्टूबर 1908 को की गई थी।

राजकीय संग्रहालय अजमेर की प्रतिमा दीर्घा कक्ष में अनेक प्राचीन प्रतिमाओं

को प्रदर्शित किया गया है। ये प्रतिमाएं अजमेर एवं राजस्थान के महत्वपूर्ण पुरास्थलों यथा अढाई दिन का झोपडा, पुष्कर, पीसांगन के अतिरिक्त हर्षनाथ, अर्थूणा, ओसिया, मण्डोर, चन्द्रावती, कांमा, बयाना आदि स्थानों से इस संग्रहालय में अवाप्त की गयी है। मुख्य प्रतिमाओं में चतुर्मुखी शिवलिंग, शिव-पार्वती तथा शिव-पार्वती विवाह से संबंधित प्रतिमाएं गुप्तकालीन हैं। इसके अतिरिक्त लिंगोद्वय महेश्वर, नक्षत्र, वराहस्वामी, लक्ष्मीनारायण, कुबेर तथा सूर्य की प्रतिमाएं चिताकर्षक हैं। जिन्हें पुष्कर, अढाई दिन का झोपडा, बघेरा, हर्षनाथ (सीकर) आदि स्थलों से एकत्रित किया गया है व अन्य प्रतिमाओं में कटारा से प्राप्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अर्थूणा के इन्द्र एवं कुबेर, कुसुमा से प्राप्त शिव पार्वती, आउवा से प्राप्त बलदे-रेवती एवं विष्णु की प्रतिमा चिताकर्षक हैं।

इस संग्रहालय में जैन मूर्ति दीर्घा में लगभग तीन दर्जन प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं इनमें मुख्य रूप से कुंथुनाथ, पार्श्वनाथ तथा आदिनाथ, महावीर स्वामी, जैन सरस्वती, वासुपूज्य की प्रतिमाएं मुख्य हैं।

डूंगरपुर संग्रहालय

सन् 1973 में प्राप्त पुरासामग्री को विधिवत प्रदर्शित कर राजकीय संग्रहालय का स्वरूप प्रदान किया गया। तत्पश्चात् पुरासामग्री के वैज्ञानिक प्रदर्शन हेतु नये भवन का निर्माण करवाया गया जिसका 11 फरवरी का उद्घाटन हुआ था। राजकीय संग्रहालय में वर्तमान में 197 विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाएं हैं। संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में प्रदर्शित 5वीं-6वीं शताब्दी की गुप्तकालीन प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय हैं जिसमें मृग चर्मयुक्त वृही, पद्यपाणि यक्ष, कौमारी आदि की प्रतिमाएं महत्वपूर्ण हैं इनमें वीणाधर शिव, कुबेर, गणेश की प्रतिमा भी उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा विद्याधर शिव तल्लीन भाव में नन्दी पर आरूढ हैं। शिव की ऐसी प्रतिमा अबतक इस क्षेत्र में प्राप्त प्रतिमाओं में सबसे प्राचीन हैं। अन्य प्रतिमाओं में प्रारम्भिक मध्यकाल के निर्देशन के लिये स्थानक वराह का अधोभाग, आसनास्थ कुबेर दम्पति, सुर-सुन्दरी का धड, आसनास्थ ध्यान मुद्रा में आदिनाथ, महिषासुर मर्दनी तथा स्थानक चामुण्डा की प्रतिमाएं भी दर्शनीय हैं।

मारवाड का मुकुट सरदार संग्रहालय

महाराजा उम्मेद सिंह के शासनकाल में सन् 1935 में डीडवाना के सेठ मग. नीराम बांगड व रामकुमार ने उम्मेद उद्यान में कला सामग्री के प्रदर्शन हेतु वर्तमान संग्रहालय भवन का निर्माण करवाया जिसका उद्घाटन 17 मार्च सन् 1936 को लाड विलिंगटन द्वारा किया गया। सरदार संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में विशेष

रूप से पाषाण प्रतिमाएं प्रदर्शित करी गयी है जिसमें प्रमुख प्रतिमाएं योग नारायण, पद्मपाणि, शेषशायी विष्णु, गणपति, इन्द्राणी, इत्यादि की हैं जो मूर्तिशिल्प में अपना विशेष महत्व रखती हैं।

जैसलमेर संग्रहालय

जैसलमेर संग्रहालय की आधारशिला 5 दिसम्बर 1979 को रखी गई है और 14 फरवरी 1984 को विधिवत रूप से संग्रहालय का उद्घाटन कराकर दर्शको के लिये खोल दिया गया।

संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में किराडू से प्राप्त सुर-सुन्दरी, लोदवा से प्राप्त अर्द्धनारीश्वर, सुर-सुन्दरी, चंवरधारित विष्णु, प्रणयलीन प्रतिमा कार्तिकेयी आदि की प्रतिमा जो 12वीं सदी की हैं, प्रदर्शित की गयी हैं। इसके साथ-साथ बूंदी से प्राप्त नवगृह, गणेश और जैसलमेर की शिव-पार्वती की प्रतिमा विशेष विधि के रूप में प्रदर्शित की गयी हैं।

राजकीय संग्रहालय भरतपुर

भरतपुर रियासत के शासक महाराज सवाई ब्रजेन्द्र सिंह के निर्देशानुसार सन् 1944 में लोहागढ दुर्ग के अन्दर स्थित कचहरी कला में विधिवत एक संग्रहालय की योजना प्रारम्भ की गयी जो कि 16 वर्षों तक चली एवं एक पूर्ण संग्रहालय के रूप में उभर कर सामने आयी।

राजकीय संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में प्रस्तर प्रतिमाओ, मृण्मूर्तियो, धातु प्रतिमाओ आदि बडी संख्या में संग्रहित हैं जिनमें प्रस्तर प्रतिमाएं द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से 19 वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक की उपलब्ध हैं। अतः मूर्तिशिल्प के अध्ययन की दृष्टि से यह संग्रहालय अपना विशेष स्थान रखता है। इनमें प्रमुख रूप से उल्लेखनीय कुछ प्रतिमाएं हैं जिनमें बोधिसत्व मैत्रेय, यक्ष प्रतिमा, एकमुखी शिवलिंग, चक्रेश्वरी प्रतिमा, कार्तिकेय, शिव-पार्वती प्रतिमा, यथा, नागराज प्रतिमा, नृत्य शिव, सर्वतोभद्र, आदिनाथ प्रतिमा, कुंडियायक्ष, बूट-कवच युक्त स्थानक सूर्य, हरिहर, शेषशायी विष्णु, दशावतार, महिषासुर मर्दनी, महाविष्णु (बैकुण्ड) आदि हैं।

अलवर संग्रहालय

अलवर राज्य के अंतिम शासक तेजसिंह के शासनकाल में नवम्बर 1940 को अलवर संग्रहालय की स्थापना हुई। अलवर संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में प्रदर्शित प्रतिमाओ में मुख्यतः 11वीं-12वीं शताब्दी की प्रतिमाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अलवर क्षेत्र में राजौरगढ, नीलकण्ड, सैथली आदि स्थलो के खण्डित प्राचीन मन्दिरों की यत्रतत्र दबी प्रतिमाओ को संग्रहित कर यहाँ प्रदर्शित किया गया है जिनमें नृत्य मुद्रा में अष्टभुजी गणेश (जिस पर वि.सं. 1101 का लेख उत्कीर्ण है) स्थानक विष्णु, सप्ताशव पर विराजमान स्थानक में शिव-पार्वती, आलिंगन मुद्रा में शिव-पार्वती,

ललितासन में शिव-पार्वती ध्यानमुद्रा में या शवनाथ, संग्रहनिधि (जिस पर 1510 वि.सं. का लेख है) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

राजकीय संग्रहालय कोटा

राजकीय संग्रहालय कोटा को सन् 1995 में जनता के लिये खोला गया। कोटा संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन मतावलम्बियों से संबंधित स्थापत्य व मूर्ति कला के अवशेष प्रदर्शित हैं। कोटा संग्रहालय की प्रतिमा ख्याति प्राप्त है जो कि इंग्लैण्ड में हुये भारत महोत्सव में इस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर चुकी है। संयुक्त देव प्रतिमा कक्ष में 9वीं शताब्दी की गांगोबी से प्राप्त योगनारायण, विलास से प्राप्त हरिहर पितामह-मार्तण्ड की संयुक्त देव प्रतिमा आदि प्रदर्शित हैं। इसके अलावा दिक्पालो में वरुण, अग्नि, ईशान, वायु, कुबेर, यम व नवगृह पटल आदि का प्रदर्शन है। जैन प्रतिमाओं में शान्तिनाथ मालीनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर आदि की प्रतिमाएं प्रदर्शित की गई हैं।

पाली संग्रहालय

पाली के श्री बांगड राजकीय संग्रहालय का शिलान्यास 20 अप्रैल 1982 को तथा 19 जुलाई 1991 को उद्घाटन हुआ। पाली संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा में मध्यकाल में धातु प्रतिमा की ढलाई के काम में भी पाली संग्रहालय का उल्लेखनीय योगदान रहा है। यहाँ जैन धर्म से संबंधित तीर्थकर 11 वीं शताब्दी ई. पाली तथा बलवाना से प्राप्त 8वीं-9वीं शताब्दी की जीवन्त स्वामी प्रतिमा उल्लेखनीय हैं। जीवन्त स्वामी की प्रदर्शित कांस्य प्रतिमा एक दुर्लभ प्रतिमा है। इसके अलावा विष्णु स्थानक व काली की प्रतिमा है। काली की इस प्रतिमा के 10 सिर व 54 हाथ हैं।

राजकीय संग्रहालय आहाड

उदयपुर नगर में प्रताप नगर रेलवे स्टेशन को जाने वाली सड़क के समीप आहाड नदी के उत्तर पूर्वी किनारे पर एक प्राचीन टीला है। वर्तमान में आहाड या आयड कहा जाता है। सन् 1961-62 में इस टीले की खुदाई में जो सामग्री प्राप्त हुई उसके प्रदर्शन के लिये आहाड की स्थापना की गई।

आहाड संग्रहालय में प्रतिमाएं दसवीं से ग्यारहवीं शताब्दी की हैं। इसमें सूर्य, शिव-पार्वती, कच्छापावतार, मत्स्य अवतार और त्रिमुख विष्णु प्रतिमाएं प्रमुख हैं।

श्रीराजकुमार हरदयाल सिंह राजकीय संग्रहालय सीकर

राजकीय संग्रहालय सीकर को 28 जून 2006 को जनता के लिये खोल दिया गया था। इस संग्रहालय की मूर्तिशिल्प दीर्घा की प्रमुख प्रतिमाओं में नवगृह खण्ड, नृसिंह वराह, दिक्पाल, ब्रम्हाणी, योद्धा, योगिनी, लक्ष्मी, ऊर्ध्वरेतस् शिव, वैष्णवी, विष्णु,

सप्तफालका फलक, सुर—सुन्दरी, आसनस्थ शिव, नारी आकृति, वीणाधारिणी, द्वारशाखा, सपत्निक ब्रह्मा, हरिहर पितामह मार्तण्ड, शिवलिंग आराधना, स्थानक गणेश, रेवन्त, वाराही, यम, नृत्यरत योगिनी, नृत्यरत दुर्गा, शेषशायी विष्णु आदि प्रदर्शित है।

हवामहल राजकीय संग्रहालय जयपुर

हवामहल राजकीय संग्रहालय में सांभर व आभानेरी की प्रस्तर प्राप्तियां उल्लेखनीय है। इसमें ईसा की 8वीं शती में निर्मित आभानेरी से प्राप्त महिषमर्दिनी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शियो में कई बार विदेश यात्रा कर चुकी है। इसी संग्रह में खडिया मिट्टी का बना एक मृण्मयफलक नगर में मिला था जो चर्तुभुजा महिषमर्दनी का भव्य अंकन प्रस्तुत करता है। राजस्थानी मृण्मूर्तिकला की यह अनुपम देन है, यहाँ देवी की वेशभूषा आदि शृंगकला का स्मरण करा देती है परन्तु नीचे सिंह की विद्यमानता द्वारा इसके काल निर्णय की सूचक है। राजस्थानी शिल्प में महिषामर्दिनी दुर्गा का तो यह अद्यखधिज्ञात प्राचीनतम अंकन है।

उपरोक्त संग्रहालयों के अध्ययन व उनकी मूर्तिशिल्प दीर्घाओं की व्याख्या से यह ज्ञात होता है कि राजस्थान के संग्रहालयों में मूर्तिशिल्प के अमूल्य भण्डार सुरक्षित व संरक्षित रखे हुये है जो कि वर्तमान में ही नहीं बल्कि हमारे आने वाले भविष्य के लिये भी सुरक्षित रखे हुये है। अतः राजस्थान के ये संग्रहालय हमें मूर्तिकला के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी के लिये बहुत ही उपयोगी साधन है जो हमें मूर्तिशिल्प के हर पहलू को समझने में अपनी अहम भूमिका निभा रहे है जो मूर्तिशिल्प की बनावट से लेकर उनके पीछे के इतिहास की भी जानकारी उपलब्ध कराते है व मूर्तिकला जैसे उपयोगी विषय को भी संग्रहालयों के माध्यम से सरलता से समझा जा सकता है व शिक्षा के संदर्भ में संग्रहालय अपने कर्तव्यों को निस्वार्थ भावना से निभा रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. नीलिमा वशिष्ठ, राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2001
2. रोहित कुमार सिंह, राजस्थान सुजस, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, राजस्थान, जयपुर, 2008
3. डॉ० रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. डॉ० पंकज लाल श्रीवास्तव, हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान
5. डॉ० इन्द्र सिंह राजपुरोहित, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर, 2007
6. डॉ० गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,

डॉ. रीतिका गर्ग
सहायक प्रोफेसर, चित्रकला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

बुद्ध को समर्पित – मथुरा व गान्धार शैली

भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है जिसमें कलाओं का अपना विशिष्ट स्थान है। भारत ने संसार को बहुत कुछ दिया, चाहे व धर्म या संस्कृति हो या कला और ज्ञान। शिल्पकला भी प्राचीन काल से हमारे मन्दिरों, भवनों का एक अभिन्न अंग रही है। हमारे धर्म तथा संस्कृति के प्रचार-प्रसार का एक निरन्तर व सतत् माध्यम होने के कारण यह स्थापत्य व चित्रकला की भांति ही अपना एक विशिष्ट स्थान लिए है। भारत में जैन व बौद्ध धर्म का प्रचार होने के उपरान्त कला में भी उनका व्यापक प्रभाव आया। बौद्ध धर्म ने तो अपनी सत्य और अहिंसा की नीति से कलाकारों के हृदय को अत्यन्त प्रभावित कर उन्हें अजन्ता, बाघ आदि स्थानों की कलाकृतियों के निर्माण की प्रेरणा प्रदान की तथा इन उत्कृष्ट कलारूपों का निर्माण हुआ। 'कुछ विद्वानों की तो यह मान्यता है कि भारतीय शिल्पकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला का जो निखरा स्वरूप दिखाई देता है, वह बौद्ध धर्म की ही देन है। गुहा मन्दिरों का निर्माण, मूर्तिकला की गान्धार शैली तथा भावना प्रधान अजन्ता शैली की चित्रकला बौद्ध धर्म के प्रभाव से ही विकसित हो पाई है।'¹

ऐसा माना जाता है कि भारतीय कला के क्षेत्र में पाषाण का सर्वप्रथम प्रयोग शायद अशोक ने ही किया था। अशोक ने 84 हजार स्तूपों का निर्माण करवाया था, जिसमें सांची का स्तूप वर्तमान समय में भी अपनी कलात्मकता के कारण प्रसिद्ध है। अशोक द्वारा निर्मित कराये गए स्तम्भों में भी उच्चकोटि की कला के दर्शन होते हैं। सौन्दर्य, समाधि, कल्पना और भावबोधकता में उसका किसी अन्य देश की कला समता कर सकती है, यह कहना आसान नहीं है।² मौर्यकाल के उपरान्त सांची, भरहुत और अमरावती में बौद्ध धर्म की उच्चकोटि की कलाकृतियों का निर्माण हुआ। शिल्पकला का विकास भी बौद्ध धर्म के कारण ही सम्भव हो पाया। शिल्प परम्परा में देवी-देवताओं की विभिन्न प्रकार की मूर्तियों की स्थापना मथुरा में हुई। अन्य स्थलों पर बौद्ध सम्प्रदाय का वर्चस्व रहा। मथुरा की कला शिल्पविज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व की है। मथुरा में यदि एक ओर धर्मप्रेरित कला की प्रखरता है तो अन्य

विविध मूर्तियों में 'सांसारिकता' का उद्दाम भाव भी मिलता है।³

शुंगों के बाद कुषाणों के युग में भी कला की अपार संपदा प्रसूत हुई है। कुषाणों के राज्य विस्तार के साथ भारतीय कला शैली एवं विषयवस्तु का प्रभाव मध्य एशिया आदि क्षेत्रों में भी व्याप्त हुआ। अतएव शैली की विभिन्न अभिव्यंजनाएँ इस युग में मिलती हैं। इस समय पत्थर और मिट्टी दोनों का असाधारण मात्रा में उपयोग हुआ। जिस प्रकार पाटलिपुत्र में अशोक द्वारा बनवाये हुए राजप्रसाद की प्रशंसा आगे चलकर फाहान नामक चीनी यात्री ने की थी, उसी प्रकार कनिष्क के बौद्ध चैत्य का प्रशंसा मिश्रित उल्लेख अलबरूनी ने किया था।⁴

प्रारम्भिक बौद्ध मूर्तिकला में बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण दिखाई नहीं देता है। तथागत बुद्ध ने स्वयं अपनी मूर्ति का निर्माण करने का विरोध किया था। कुषाण-युग से पहले भगवान बुद्ध की प्रतिमाओं का निर्माण नहीं किया जाता था। बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण उनके महापरिनिर्वाण के लगभग 500 वर्षों के उपरान्त हुआ। बुद्ध की मूर्ति का उद्भव कुषाणों के शासनकाल में हुआ, ऐसा अनुमान है। इस युग में गान्धार एवं मथुरा दोनों कलाशैलियों में उनकी मूर्तियों की स्थापना हुई। विभिन्न विद्वानों ने इस सम्बन्ध में गान्धार और मथुरा की बुद्ध मूर्तियों की परस्पर एक दूसरे से पूर्वता सिद्ध करने का प्रयास किया है।⁵ इस समय उत्तरी भारत में मथुरा कला का महत्वपूर्ण केन्द्र था। पहली शती ईसवी से तीसरी शती तक इसकी समृद्धि का स्वर्णिम काल रहा। उसके बाद चौथी से सातवी शताब्दी तक भी मथुरा के शिल्प का वैभवपूर्ण युग रहा। कुषाण काल में प्रतिमा निर्माण एवं शिल्प में मथुरा देश भर में विख्यात था।⁶

ब्राह्मण धर्म से प्रभावित होकर बुद्ध को महापुरुष के स्थान पर देवत्व प्रदान किया गया तथा मूर्तिपूजा ने बौद्ध धर्म के स्वरूप को ही बदल दिया। बौद्ध धर्म का प्रचार सम्पूर्ण भारतवर्ष में होने के साथ ही भारत के बाहर के अन्य देशों में भी हुआ। धीरे-धीरे बौद्ध धर्म में दूरव्यापी परिवर्तन और सुधार हुए जिसके फलस्वरूप महायान का उदय हुआ। कनिष्क इसी महायान संप्रदाय का अनुयायी था।⁷ कनिष्क के काल तक महायान धर्म में भक्ति का समावेश हो चुका था जिसके कारण कला के क्षेत्र में कुछ नवीनता उत्पन्न हो गयी। कुषाण सम्राट कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के समय में मथुरा की कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंची। मथुरा के शिल्पियों ने भरहुत और सांची के शिल्पियों के कौशल को अपनाकर और अधिक विकसित किया। मनोभावों के सौन्दर्य के साथ बाह्य-रूप के समन्वय में ये शिल्पी अद्वितीय थे। इन्होंने परम्परागत रूपों को अपनाया तथा उनमें नवीन रूपों को भी जोड़ा।⁸ कनिष्क के शासनकाल में अनेक बौद्ध तथा जैन स्तूप बने जिनकी प्राकार वेष्टनियाँ

(रेलिंगे) कला के प्रतीकों की खान बन गयी। उसने स्वयं अनेक स्तूप बनवाये तथा कश्मीर में चौथी बौद्ध संगीति का अधिवेशन कर बौद्ध धर्म की सेवा में अपना विशेष योगदान दिया।

कनिष्क के शासनकाल में बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण मथुरा में हुआ। इसकी सिद्धि अभिलेख सहित प्राप्त मथुरा शैली की बुद्ध मूर्तियों से होती है। मथुरा शैली की प्रारम्भिक बुद्ध मूर्तियों में सारनाथ, श्रावस्ती तथा कौशाम्बी से प्राप्त तीन मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। इनसभी पर शक संवत् की निश्चित तिथियाँ हैं जिनसे स्पष्ट है कि इनका निर्माण कनिष्क के शासनकाल के दूसरे तथा चौथे वर्ष में हुआ। मथुरा में बनी किन्तु अन्यत्र प्राप्त उक्त मूर्तियों से यह स्पष्ट है कि उत्तर भारत के विभिन्न भागों में इनकी बहुत अधिक मांग थी। इस मांग की पूर्ति कर सकने में मथुरा पूर्णतः समर्थ था।⁹ इस प्रकार कुषाण काल के अनेक विशिष्ट केन्द्र थे, मथुरा, सारनाथ, अमरावती। उधर पश्चिम में तक्षशिला आदि भी मूर्तियों के आकर सिद्ध हुए। पेशावर तो कनिष्क की राजधानी ही था।¹⁰ मथुरा के शिल्पियों की सबसे प्रमुख देन बुद्ध प्रतिमाओं का तथा देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण था। विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा, सप्त मातृकाएँ, कार्तिकेय आदि की प्राचीनतम जैन-प्रतिमाएँ तथा स्तूप मथुरा से ही प्राप्त हुए हैं। मथुरा के शिल्पियों ने जैन-तीर्थकरों की अनेक मूर्तियों का निर्माण किया। मातृपूजा की परम्परा में अनेक देवियों की मूर्तियों का निर्माण मथुरा में हुआ, यथा श्रीलक्ष्मी, गजलक्ष्मी, वसुधारा, अम्बिका, महिषासुरमर्दिनी, सप्तमातृका आदि।¹¹

इस युग में गान्धार एक ऐसा प्रदेश था जहाँ एशिया और यूरोप की कई सभ्यताएँ एक-दूसरे से मिलती थी। पूर्व से भारतीय और पश्चिम से यूनानी, रोमन, ईरानी और शक संस्कृतियों का यहाँ संगम था।¹² गान्धार कला को 'इण्डो-ग्रीक' (हिन्दू-यूनानी) कला के नाम से भी पुकारा जाता है क्योंकि इस कला के विषय तो भारतीय हैं, परन्तु शैली यूनानी है। चूंकि बौद्ध धर्म उसकी प्रेरणा था अतः इसे ग्रीको बुद्धिष्ट भी कहा गया। इस शैली की शिल्पविधि द्वारा जो बुद्ध की मूर्तियाँ निर्मित की गईं, वे यूनानी देवता अपोलो की मूर्तियों से काफी साम्यता रखती हैं। उनकी मुद्राएँ तो बौद्ध हैं, जैसे कमलासन मुद्रा में बुद्ध बैठे हुए हैं, किन्तु मूर्तियों के मुखमण्डल और वस्त्र निश्चित रूप से यूनानी हैं, जो स्पष्टतया यूनानी अथवा रोमन कला का प्रभाव है।¹³ बुद्ध, बोधिसत्व और अवलोकितेश्वर, मज्जुश्री आदि मूर्तियाँ यूनानी देवताओं, राजाओं और स्त्रियों के आदर्शों पर बनायी गयी। उनकी वेशभूषा, श्रृंगार और सजावट भी यूनानी ढंग की हैं। इसलिए इस कला को कुछ लोग यवन-बौद्ध अथवा भारतीय-यवन भी कहते हैं। महायान के उदय से इस कला को प्रोत्साहन मिला। बुद्ध, बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर आदि की मूर्तियाँ ध्यान-मुद्रा, धर्म-चक्र-मुद्रा,

अभय—मुद्रा, वरद—मुद्रा आदि में बनने लगी। इसके अतिरिक्त जनसाधारण के चित्र भी पत्थर में अंकित पाये जाते थे। भारतीय मूर्तिकला पर यवन प्रभाव जो गान्धार शैली में दिखायी पड़ता है वह पश्चिमोत्तर भारत तक ही सीमित रहा। यूनानी कला का उद्देश्य प्रकृति का सजीव अनुकरण और बाह्य सौन्दर्य का चित्रण था, भारतीय कला का आदर्श प्रतीकवाद और भावनावाद था। इसलिए यद्यपि भारतीय मूर्तिकला ने गान्धार शैली से बाहरी आकार—प्रकार को बनाने में सहारा लिया, किन्तु मथुरा और वाराणसी पहुँचते—पहुँचते बुद्ध की प्रतिमा पूरी भारतीय हो गयी। बुद्ध यूनानी राजा व देवता की प्रतिकृति न होकर शुद्ध भारतीय योगी या ऋषि के रूप में प्रगट हुए।¹⁴

गान्धार की राजधानी तक्षशिला कला का प्रमुख केन्द्र थी और व्यापार की बड़ी और महत्वपूर्ण मण्डी थी। यहाँ सलेटी पत्थर की मूर्तियों का बहुतायत से निर्माण हुआ। तक्षशिला में भीर, सिरकप तथा सिरमुख तीन स्थानों से कलात्मक अवशेष प्राप्त हुए हैं। भीर के टीले का समय मार्शल ने सातवीं शती और चौथी शती ई. पू. माना है। यहाँ से मिट्टी के बर्तन, उत्कीर्ण टुकड़े, मिट्टी के खिलौने, पत्थर की तश्तरी, हाथी दाँत, अस्थि आदि से बनी सामग्री, सोने—काँसे के गहने आदि प्राप्त हुए हैं।¹⁵ पुष्कलावती नाम स्थान से भी तथागत बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की बहुत सी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं अधिकांश: गान्धार शैली की मूर्तियाँ सलेटी—नीले पत्थर से बनी हैं तथा कुछ चूने मसालें की भी बनी हैं। इस शैली की सभी मूर्तियाँकेवल बौद्ध स्थलों से उपलब्ध हुई हैं। अभी तक ऐसी कोई मूर्ति इस शैली की न मिली जिसमें जैन अथवा ब्राह्मण धर्म के प्रतीक निरूपित हो।¹⁶

गान्धार शैली में बुद्ध के जीवन की घटनाओं, बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियों, जातक कथाओं, यूनानी देवताओं व कथाओं के दृश्यों, भारतीय देवी—देवताओं, भारतीय व यूनानी अंलकरणों का निर्माण हुआ। इनमें बुद्ध के जीवन की घटनाओं के उत्कीर्ण शिलापट्टों की संख्या सर्वाधिक हैं। इन शिलापट्टों में बुद्ध के जीवन की लगभग 60 घटनाओं को उकेरा गया है। इन विविध और बहुमुखी दृश्यों के चित्रण में गान्धार शिल्पी सबसे आगे हैं। इन्होंने बुद्ध के मानवीय रूप में रुचि ली और मानवीय रूपों को प्रधानता दी। भारतीय कुबेर गान्धार में पंचिक नाम से विख्यात था। इसी प्रकार दुर्गा और हारीती का समन्वय किया गया। पंचिक और हारीती की मूर्तियों में भारतीय प्रभाव देखा जा सकता है। गान्धार कला में शालभंजिकाओं को भी उत्कीर्ण किया गया। इन शिल्पियों को शुद्ध यूनानी विषयों को बनाने में पूरी सफलता मिली। इन मूर्तियों में पहले लम्बे ढीले चोगे में सिकुड़ने अधिक बनती थी जो बाद में हल्की हो गयी।¹⁷ कान लम्बे, लहरदार बालों का जूड़ा तथा भवों के

बीच गोला भी बनाया जाने लगा। भारतीय प्रभाव के कारण ही इन बुद्ध मूर्तियों के सिर पर उष्णीष, हथेलियों व पैरों में चक्र, त्रिशूल व पद्मासन आदि बनाये गये। इन मूर्तियों की हस्त-मुद्राएँ लोच व सजीवता लिए हैं परन्तु आभामण्डल का अंकन यूनानी परम्परा जैसा हुआ।

भारतीय कला का टोन (मुद्रा) अधिकतर मूक, गम्भीर और जन्म को दुःख मानने के कारण प्रायः खिन्न रहा था। पर इस विदेशी कुषाण भावसत्ता ने उसे अपनी प्रसन्न मुद्रा प्रदान की। छाया को धूप का योग मिला, भारतीय कला धूप-छाँव से खिल उठी। बुद्ध के मूक और शांत रूप पर बोधिसत्व की अभिराम प्रसन्न छटा छिटकी। अर्हतों, बुद्धादि की प्रतिमाएँ चाहे कुछ एकान्तिक बनी पर उनका परिवार, उनके पार्षद और उनके सम्बन्ध की अनन्त प्रतीक-माला तारुण्य, चापल्य, गति, क्रीड़ा, हास और उल्लास लिये पत्थर की पृष्ठभूमि से उठी और जीवन पर सर्वत्र छा गयी।¹⁸ इस प्रकार ये मूर्तियाँ आध्यात्मिकता के धरातल पर ही आधारित हैं।

गान्धार कला में बुद्ध को बहुधा पद्मासन या कमलासन में ही दिखाया गया है। यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ बालों तथा मूँछों से रहित हैं जो विशुद्ध रूप से भारतीय प्रभाव है। इन मूर्तियों को इतना गहरा खोदा जाता था कि इसमें पीछे से निर्मित होने का भ्रम होने लगता है जबकि ये पीछे से सपाट हैं। गान्धार प्रदेश में बौद्ध धर्म के प्रभाव से भी कला में भारतीयता की प्रमुखता रही। इस प्रकार बौद्ध धर्म कला प्रसार का एक साध्य रहा। तदुपरान्त गान्धार से लेकर उत्तर भारत में उनके बुद्ध मूर्तियों का निर्माण हुआ जिसमें उनकी तपस्चर्या की कृष्णकाय मूर्तियाँ, उनकी योग मुद्रा की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हुईं। भारत के अतिरिक्त जापान व चीन आदि की कला पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इस शैली की कई विशेषताओं ने गुप्तकालीन भारतीय कला को भी प्रभावित किया।

तथागत बुद्ध के रूप की आराधना करने की परम्परा में जो मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं उनमें निरन्तर वृद्धि हुई तथा सभी कलाओं ने इसमें अपना सहयोग प्रदान कर इसके सौन्दर्य में श्रीवृद्धि की। गुप्तकाल के आते-आते इस कला में यवन-प्रभाव पूर्णतः समाप्त हो गया तथा कल्पना, भावव्यंजना और शारीरिक गठन में शुद्ध भारतीयता आ गयी। इस समय की मूर्तिकला का सबसे भव्य नमूना, सारनाथ में मिली हुई धर्म-चक्र-प्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति, जो अपने लावण्य, गाम्भीर्य और भावव्यंजना के लिए प्रसिद्ध है। इनमें भौतिक सौन्दर्य के साथ ही आन्तरिक शान्ति की अभिव्यक्ति, ओज तथा आध्यात्मिकता सभी के दर्शन होते हैं।

यद्यपि मथुरा व गान्धार शैली में ही बुद्ध मूर्तियों के निर्माण का आरम्भ हुआ तथापि इनके श्रेष्ठ कलात्मक गुणों को अपनाकर आगे आने वाली शैलियों में भी

बुद्ध मूर्तियों का सृजन हुआ। इस प्रकार कुषाण काल में इन श्रेष्ठ कलाकृतियों के निर्माण से तथागत बुद्ध की छवि को पाषाण मूर्तियों के रूप में उत्कीर्ण करने का कार्य आरम्भ हुआ जिसने उनके कलाकारों को प्रेरणा प्रदान की तथा भारतीय कला के विकास में अपना विशेष योगदान प्रदान किया।

संदर्भ

1. शर्मा, डॉ. कालूराम व व्यास डॉ. प्रकाश, प्राचीन भारत का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1998, पृ.सं. 124
2. उपाध्याय, भगवतशरण, भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, रणजीत प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली, 1965, पृ.सं. 78
3. मिश्र, डॉ. रमानाथ, भारतीय मूर्तिकला, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1978, पृ.सं. 75
4. शर्मा, डॉ. कालूराम व व्यास डॉ. प्रकाश, प्राचीन भारत का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1998, पृ.सं. 236
5. मिश्र, डॉ. रमानाथ, भारतीय मूर्तिकला, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1978, पृ.सं. 76
6. श्रोत्रिय, डॉ. शुकदेव, भारतीय कला गौरव, चित्रायन प्रकाशन, मुजफरनगर, 2003,पृ.सं. 40
7. दास, राय कृष्ण, भारतीय मूर्तिकला, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2016, पृ.सं. 85
8. श्रोत्रिय, डॉ. शुकदेव, भारतीय कला गौरव, चित्रायन प्रकाशन, मुजफरनगर, 2003,पृ.सं. 41
9. मिश्र, डॉ. रमानाथ, भारतीय मूर्तिकला, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1978, पृ.सं. 81
10. उपाध्याय, भगवतशरण, भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, रणजीत प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली, 1965, पृ.सं. 87
11. श्रोत्रिय, डॉ. शुकदेव, भारतीय कला गौरव, चित्रायन प्रकाशन, मुजफरनगर, 2003,पृ.सं. 41
12. पाण्डेय, डॉ. राजबली, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1994, पृ.सं. 237
13. शर्मा, डॉ. कालूराम व व्यास डॉ. प्रकाश, प्राचीन भारत का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1998, पृ.सं. 236
14. पाण्डेय, डॉ. राजबली, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1994, पृ.सं. 238
15. श्रोत्रिय, डॉ. शुकदेव, भारतीय कला गौरव, चित्रायन प्रकाशन, मुजफरनगर, 2003,पृ.सं. 43-44

“अवतार रूप में मत्स्य का पौराणिक उद्गम एवं राजस्थान के लघुचित्रों में कलागत अनुशीलन”

भारतीय शास्त्रीय, पौराणिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों तथा परम्परागत व लोकानुरंजनों में अनेक वैशिष्ट्यों के साथ देवाताओं के अवतार ग्रहण करने की कथाएँ मिलती हैं। पृथ्वी पर भगवान का अवतीर्ण होना और यहाँ अपने उद्देश्य की पूर्ती तक निवास करना अवतार कहलाता है। अब तक परमात्मा अपने अनेक रूपों में धरती पर प्रकट हो चुके हैं। पौराणिक ग्रन्थ साहित्य में अनेक स्थानों पर इन्हें भगवान से जोड़कर अवतार के रूप में कल्पना की गई है।

पुराणों के अनुसार विष्णु के दस अवतारों में मत्स्यावतार प्रथम है। नैमित्तिक प्रलय में जब समस्त सृष्टि जलमग्न हो गई थी तब एक महाबली दैत्य सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) के पास से वेदों को चुराकर पानी के अन्दर छिप गया था। मत्स्य ने वेदों को पुनः प्राप्त किया तथा मनु के द्वारा जीवों की रक्षा की अतः सृष्टि बीजों की रक्षा हेतु इनका आर्विभाव हुआ था।¹ सभी पुराणों में मत्स्य को विष्णु का अवतार बताया गया है। प्रारम्भ में मत्स्यावतार का सम्बन्ध ब्रह्मा से था। शतपथ ब्राह्मण में जलपलावन की कथा सबसे पहले मिलती है। जिसमें बताया गया है कि सृष्टि के प्रलय के बाद एकमात्र मत्स्य बचा, जिसने मनु के द्वारा सृष्टि को आगे चलाया। उस सम्बन्ध में वैदिक कथा इस प्रकार है – नदी किनारे अन्वेषण (अण्वेजन) करते समय मनु के हाथ छोटी मछली आ गई जिसने अपनी रक्षा की प्रार्थना की। उसे मनु ने घड़े में डाल दिया, पर कुछ ही समय में उसका आकार बढ़ गया तब तालाब में एवं फिर समुद्र में डाला गया। उसके आकार से अचम्बित मनु को मछली ने प्रलय के समय उसकी रक्षा करने का वचन देकर अन्न बीजों को सुरक्षित रखने की आज्ञा दी और जल प्लावन के समय मनु की सृष्टि बीजों के साथ रक्षा की।² महाभारत (II, 187.52) तथा मनुस्मृति में जहाँ कथा का पुनः वर्णन है, अनेक श्लोकों में मत्स्य को प्रजापति कहा गया है।³

भागवत् पुराण में विष्णु द्वारा मत्स्यावतार ग्रहण करने की कथा मिलती है।

यहां उल्लेख है कि पिछले कल्प में नैमित्तिक प्रलय के समय ब्रह्मा के निद्रामग्न हो जाने पर हयग्रीव नामक दैत्य ने वेदों को चुरा लिया। तब श्री हरि ने मत्स्य रूप धारण किया। जिस स्थान की जलराशि में भगवान ने मत्स्य रूप धारण किया था, उस प्रदेश में सत्यव्रत नामक धर्मपरायण राजा उस कृतमाला नदी में तर्पण कर रहा था। उसकी अंजली में छोटी मछली आ गई। राजा से वह छोटी मछली बड़े-बड़े जलचर जीवों से अपनी रक्षा की याचना करने लगी। जिसे कमण्डलु में रखकर राजा सत्यव्रत अपने साथ ले आया। पर रातभर में ही वह इतनी बढ़ गई कि उसे मटके में डाला। दूसरी रात में वह फिर बढ़ गई और उसे सरोवर में डाला। पर फिर से आकार बढ़ने पर वह उसमें समा नहीं पाई तब राजा ने उसे समुद्र में पुनः डालने का निश्चय किया, और उसके आकार से अचम्भित हो, मत्स्य से अपने वास्तविक रूप में प्रकट होने के लिए निवेदन किया। तब भगवान मत्स्य रूप ने सत्यव्रत को बताया कि 'सात दिन पश्चात प्रलय आने और त्रिलोक के डूब जाने पर मेरी भेजी नौका पर सवार होकर मेरे सींग से वासुकि नाग को लपेटकर उस नौका को बाँधना और निर्भय विचरण करना।' सात दिन पश्चात ऐसा ही हुआ भगवान ने सत्यव्रत को नौका पर, प्रलय से बचाया और हयग्रीव को मारकर वेद ब्रह्माजी को सौंप दिए।¹⁴ इस प्रकार उन्होंने मानव जाति की भी रक्षा की और ज्ञान का आधार वेद भी पुनः अपने स्थान पर पहुँचा दिये। इस तरह सृष्टि के प्रलय के बाद एकमात्र मत्स्य ही था जिसने मनु के द्वारा सृष्टि को आगे चलाया।

सभी पुराणों में इसी तरह का आख्यान मिलता है किन्तु जहाँ भागवत पुराण में राजा सत्यव्रत का उल्लेख है वहीं अग्निपुराण में उसके स्थान पर वैवस्त्व मनु का नाम दिया गया है। मत्स्यपुराण, शिवपुराण तथा स्कन्ध पुराण में भी इस अवतार की कथा दी गई है। अपराजितपृच्छा में भी इस अवतार की कथा मिलती है किन्तु वेदहर्ता असुर का नाम हयग्रीव के स्थान पर शंखासुर है।¹⁵

संस्कृत साहित्य में भी अनेक स्थानों पर मत्स्य रूप में विष्णु के अवतार का वर्णन है। कालीदास कृत रघुवंश, जयदेवकृत गीतगोविन्द, हनुमत्कवि विरचित खण्डप्रशस्ति, नरसिंह बारहट कृत अवतार चरित्र इत्यादि साहित्यिक कृतियों में अन्य अवतारों के साथ मत्स्यावतार की भी स्तुति की गई है।

भारतीय पौराणिक आख्यानों एवं साहित्यिक कृतियों के अतिरिक्त भी प्रलय की कथा अनेक देशों की पौराणिक गाथाओं में मिलती है जिसका सम्बन्ध मत्स्य से है। बाइबल में यह कथा प्रायः इससे मिलते-जुलते रूप में कही गई है। कुराण भी इसी का अनुकरण करता है।

यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो मूलतः मत्स्यावतार ब्रह्मा, प्रजापति से सम्बन्धित था, किन्तु वैष्णव सम्प्रदाय के विकास के साथ इस अवतार का सम्बन्ध विष्णु से स्थापित हो गया। मत्स्य का भारतीय, असीरियन, फिलिस्तीन और मिस्र की सभ्यता में प्रमुख स्थान है। भारत के बाहर यूनान, रोम आदि में भी मत्स्य का अनेक देवों से सम्बन्ध ऐतिहासिक, पौराणिक रूप में रहा है। ड्रेगन एक मत्स्यदेव ही था जिसके हाथ-सिर इत्यादि ऊपरी भाग मनुष्य के तथा धड़ मछली का माना जाता था।⁹ जैन धर्म के अष्टमांगलिकों में मत्स्य को जिन द्वारा मार-विजय का प्रतीक माना गया है। आज भी राजस्थान में मीणा समाज में मत्स्य भगवान की उपासना की जाती है यद्यपि उनकी कथा मत्स्यावतार से भिन्न है तथापि मूलतः वे मत्स्य रूप ही हैं। ज्योतिष की बारह राशियों में अन्तिम राशि मीन अर्थात् मत्स्य है। भवन के वास्तु विज्ञान में भी मछली को शुभत्व का प्रतीक माना जाता है।

राजस्थान के अनेक संग्रहालयों, ग्रन्थ भण्डारों एवं निजी संग्रहों में अनेक सचित्र पोथियाँ व स्वतन्त्र चित्र मिले हैं जिनमें मत्स्य अवतार के पौराणिक दृश्य को प्रदर्शित किया गया है। ऐसे अनेक चित्र प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, राजकीय संग्रहालय, भरतपुर एवं अन्य संग्रहालयों में मिले हैं।

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संग्रहित, 1789 ई. की मेवाड़ शैली की गीतगोविन्द पोथी में अवतार विषयक चित्र अंकित है। आगे के दो चित्रों को छोड़कर आरम्भ से तृतीय चित्र मत्स्यावतार का है। यहाँ चतुर्भुज, कीरीट-मुकुट व कर्ण कुण्डल धारी, वनमाला पहने नृमत्स्य अंकित हैं। जो स्वर्ण (पीतश्वेत) वर्णी अर्द्धगोलाकार पुच्छ वाले मत्स्य मुख से निकलते, चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं श्वेत कमल लिए अंकित है। उनका अधोवस्त्र नारंगी एवं शरीर नीले वर्ण का है। दायीं ओर मुख किए वे एकचश्म प्रदर्शित हैं। पृष्ठभूमि व अग्रभूमि दो समान भागों में विभाजित है। नीचे सलेटी वर्ण से जल का अंकन है जिसमें कमल की पंखुड़ियाँ, दो-तीन व पाँच के समूह में एक साथ प्रदर्शित हैं। ऊपर हरी पृष्ठभूमि तथा सबसे ऊपर नारंगी व नीली आभा अंकित है।

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में ही संग्रहित उन्नीसवीं शताब्दी के मेवाड़ शैली के गीतगोविन्द ग्रन्थ में श्वेत अर्द्ध वलयकृत पुच्छ युक्त मत्स्य के मुख से निकलते चतुर्भुज देवता, नीलवर्णी शरीर वाले, चतुर्भुज रूप में अंकित हैं। दायीं ओर उन्मुख देव कीरीट मुकुट, कर्णकुण्डल, आभूषणों से अलंकृत हैं। वे शंख से निकले, लम्बकर्ण, पशुमुख, शंखासुर की केश शिखा पकड़े युद्धरत प्रदर्शित हैं। चित्र में बाईं ओर अंकित चार हाथ जोड़े पुरुषाकृतियाँ (वेद) हैं। पृष्ठभूमि का ऊपरी भाग हरा है एवं नीचे पानी का अंकन हल्के सलेटी पर श्वेत आड़ी रेखाओं से किया गया है। शंखासुर

के पीछे पृष्ठभूमि पर चार खानोंवाली खिड़की भी प्रदर्शित है।

मेवाड़ शैली के अवतार चरित्र नामक ग्रन्थ में अवतारों का कथानुरूप सुन्दर चित्रण, घटना दर—घटना किया गया है। यह भी 19 वीं शताब्दी का ग्रंथ है। मत्स्यावतार की कथा में छः चौखानों वाले एक चित्र में क्रमशः सोते हुए ब्रह्मा के पास से शंखासुर का वेदों को चुराना, ब्रह्मा द्वारा मत्स्यावतार से इस हेतु प्रार्थना, मत्स्यावतार का पानी में उतरना, मत्स्य द्वारा पानी में सोते हुए शंखासुर को ललकारना, शंखासुर से मत्स्यावतार का युद्ध, युद्ध में अंधे मुह गिरा शंखासुर आदि घटनास्वरूप अलग—अलग अंकित हैं। आगे के चार खानों वाले एकचित्र में शंखासुर द्वारा मत्स्यावतार से क्षमा मांगना, विष्णु भगवान समक्ष ब्रह्माजी, एवं श्री विष्णु द्वारा ब्रह्मा को चारों वेद सौपना, तथा प्रलय के समय रक्षा हेतु ऋषियों का श्रीविष्णु से अनुनय—विनय करना अंकित हैं। इसके पश्चात के चित्र में विशाल मत्स्यपृष्ठ की नौका पर वृक्ष, अन्न व सृष्टिबीजों के साथ तीन ब्राह्मण सहित मनु विराजमान हैं। नीचे विशाल मत्स्य अंकित है तथा नौका के आगे वासुकी नाग बँधा है। सामने सींग युक्त गदाधारी राक्षस पानी में अंकित है। क्रमिक कथा चित्रण का ऐसा सुन्दर अंकन अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता।

जोधपुर शैली के 19 वीं शताब्दी के अवतार चरित्र⁸ में नृमत्स्यावतार अर्द्धवल्याकार पुच्छ वाले लाल श्वेत मत्स्य के मुख से चतुर्भुज, नीलवर्णी शरीर वाले, पीत अधोवात पहने प्रदर्शित हैं। मेवाड़ी कलम की अपेक्षा इस चित्र में पुरुष धड़ मत्स्य मुख से अधिक बाहर प्रदर्शित है। नृमत्स्य हाथों में तलवार, भाला, ढाल व चक्र लिए मुकुट—आभूषणों युक्त, बाईं ओर उन्मुख एक चश्म अंकित हैं। इनके भाले के समक्ष खड़ा राक्षस का उदर घायल हो गया है। यहाँ रक्त का भी अंकन किया गया है। इस चित्र में राक्षस शंखासुर को भी देवता के समान ढाल—भाला—तलवार आदि लिए चतुर्भुज शंख से निकलता प्रदर्शित किया गया है। राक्षस के लम्बे कान, सिर के सींग, मुँह पर मूँछों व फैली हुई दाढ़ी का अंकन रोचक है। पृष्ठभूमि का ऊपरी भाग हरे व हरे—पीत रंग से एवं नीचे पानी का अंकन नीले—श्वेत आभायुक्त व श्वेत हल्की आड़ी—खड़ी रेखाओं से युक्त है। जिसमें कमलपत्र, पुष्प, कमल कलियाँ व छोटी—छोटी लाल—श्वेत मछलियाँ भी अंकित की गई हैं।

गीतगोविन्द की किशनगढ़ शैली की एक अन्य पोथी⁹ में पृष्ठ संख्या 4 पर नृमत्स्य का चित्र है। जिसमें चतुर्भुज, नीलवर्णी शरीर वाले मत्स्यदेव का धड़, शंख—चक्र—गदा व कमल धारी, किरीटमुकुट कुण्डल, आदि आभूषणों से युक्त, लाल अधोवस्त्र व दुपट्टा ओढ़े, सलेटी रंग के मत्स्य मुख से निकलता प्रदर्शित है। अर्द्धवल्याकृत मत्स्य पुच्छ का कुछ भाग, कमल पुष्प व कमल पत्र युक्त सलेटी रंग के

“अवतार रूप में मत्स्य का पौराणिक उद्गम एवं राजस्थान के लघुचित्रों में कलागत 55

श्वेत आड़ी धारियों वाले जल के अन्दर है। पृष्ठभूमि का ऊपरी भाग नीली व श्वेत पट्टिका के पश्चात पीत रंग से अंकित है। देवता का मुख बायीं ओर एक चश्म है। चित्र में आकृतिगठन और रंग योजना उत्कृष्ट है।

जयपुर शैली की¹⁰ एक पौथी में पृष्ठ 29 पर चित्रित नृमत्स्य-शंखासुर-युद्ध का अंकन भी रोचक है। अर्द्धवलयकृत पुच्छ युक्त श्वेत मत्स्य मुख से ऊपर चतुर्भुज देव का धड़ नीलवर्णी, मुकुटधारी, कर्णकुण्डल व आभूषणों से युक्त, नारंगी अधोवस्त्र धारी, चतुर्भुजी- गदा-चक्र-कमल एवं वक्ष पर हाथ युक्त है। यहां एक चश्म मुख वाले देवता का एक पैर मुड़कर मत्स्य के मुख पर स्थित अंकित है। सामने श्वेत शंख युक्त अघोभाग वाले तलवार ढालधारी, नीलवर्णी शरीर वाले, जटा-जूट, दाड़ी व मूँछधारी, लाल अधोवस्त्र पहने, शंखासुर का अंकन है। पृष्ठभूमि में ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः नीली-हरी आभा में हंस पर बैठे चार पुरुष, नृमत्स्य पर पुष्पवर्षा करते हुए, पीली पृष्ठभूमि पर, एक कोने में वृक्ष एवं दूर तक जाते पहाड़ी स्थानों का अंकन अत्याधिक मनोरम है। इसके बाद नीचे गहरे सलेटी रंग के जल पर आड़ी श्वेत रेखाएँ अंकित हैं। यहाँ शंखासुर के शरीर पर सफेद बिन्दुओं का अंकन भी सुरुचिपूर्ण है।

गुजराज वर्नाकुलर सोसायटी, अहमदाबाद के संग्रह में राजस्थानी शैली की चित्रित गीतगोविन्द पौथी संरक्षित है। जिसमें मत्स्यावतार का पुच्छ भाग पानी में डूबा अंकित है। उसके मुख से निकलते चतुर्भुज देवता शंख, चक्र, गदा व पद्मधारी हैं। वनमाला व किरीटमुकुट पहने मत्स्यमुख बाईं ओर मुखरित, एक चश्म हैं। पानी का अंकन छोटी-छोटी अर्द्धगोलाकार रेखाओं से प्रदर्शित किया गया है। सम्पूर्ण चित्र में आकारों व रेखाओं में अलंकारिकता दिखाई पड़ती है।

भरतपुर के राजकीय संग्रहालय में राजस्थानी लघु चित्र शैली के कुछ छिन्न चित्र प्रदर्शित हैं जिनमें मत्स्यावतार के दो चित्र हैं। इनमें से एक में श्वेत अर्द्धवलयकृत पुच्छ युक्त मत्स्य मुख से ऊपर नीलवर्णी शरीर वाले चतुर्भुज (गदा-शंख-चक्र-पद्मधारी) किरीट मुकुट व आभूषणों से युक्त प्रदर्शित हैं। दायीं ओर मुखरित देवता के एक चश्म चेहरे के पीछे आभामण्डल अंकित है। कमलयुक्त हाथ से वे पास में अंकित, भूरे शरीर वाले, तलवार-ढालधारी शंखासुर के केश पकड़े हुए हैं। इसी ओर पृष्ठभूमि में चार श्वेत चौखाने अंकित हैं जो चार वेदों का प्रतीकात्मक अंकन हैं। अण्डाकार-आकार में बने इस चित्र की पृष्ठभूमि ऊपर से नीचे तक क्रमशः नीली हरी व सलेटी रंग में अंकित है।

मत्स्यावतार का दूसरा चित्र भी इसी प्रकार का है पर यहाँ देवता के शीश का

मुकुट व हाथों के चक्र इत्यादि का अंकन अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर है। इन दोनों चित्रों में मत्स्यावतार की आकृति कुछ अधिक भारी एवं कुछ अधिक चौड़ाई लिए अंकित है। जो ढूँढाड़ शैली की विशेषता को व्यक्त करते हैं।

बीकानेर के लालगढ़ पैलेस संग्रहालय में भी मत्स्य का छिन्न चित्र संग्रहित है। चित्र में कुछ अधिक लम्बाई लिये नृमत्स्य का अंकन है जिनके समक्ष राक्षस मृत पड़ा है। ऊपर दो देव आकृतियां अंकित हैं।

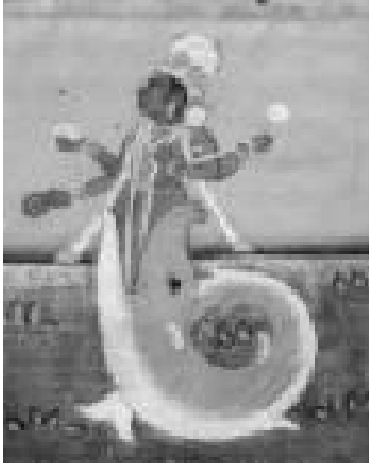
प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में सन् 1935 का एक पुट्टा संख्यक 106 पर संग्रहित है जिसमें 24 अवतारों के चित्र हरे एवं गेरु रंग से अंकित हैं। इसमें लाल रंग के लगभग एक-डेड इंच चौड़े बार्डर के अन्दर, हरे रंग की पृष्ठभूमि पर, 24 बराबर चौखानों में, अवतार आकृतियां अंकित हैं। प्रारम्भ से क्रमशः मत्स्य, कूर्म, वराह, राम, नृसिंह, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, नारद, ध्रुव, हंस, यज्ञ, हयग्रीव, पृथु, नरनारायण, धनवन्तरी, कपिल, ऋषभदेव, गजेन्द्रमोक्ष, दत्तात्रेय, व्यास, सनक-सनन्दन-सनातन-सनतकुमार अंकित हैं। इनके आभूषणों के निर्माण हेतु श्वेत रंग का प्रयोग किया गया है। इसमें मत्स्यावतार के अंकन में वलयकृत पुच्छ वाले मत्स्यमुख से ऊपर चतुर्भुज देवता का धड़ मुकुट-आभूषण धारी, एक चश्म, एक हाथ शंखनुमा आकृति के पास है जो शंखासुर का प्रतीकात्मक रूप है। पीछे चार चौखाने वेदों के प्रतीक हैं।

मत्स्यावतार के इस प्रकार के अनेक अंकन लघुचित्रों में विभिन्न स्थानों एवं अनेक संग्रहों में सुरक्षित हैं। जिन्हें समय समय पर भिन्न भिन्न शासकों ने अपनी रुचि के अनुसार निर्मित करवाया। उन सभी के अध्ययन एवं अनुशीलन से इस दिशा में नये आयाम उजागर होंगे।

आभार— प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर एवं राजकीय संग्रहालय, भरतपुर के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को छायाचित्रों हेतु आभार।

संदर्भ ग्रन्थ

- 1 Thapar, D.R., Icons in Bronze, Calcutta, 1961, p. 59.
- 2 शतपथ ब्राह्मण, 1.8.1.1.
- 3 श्रीवास्तव, ब्रजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1990, पृ. 27.
- 4 भागवत् पुराण, स्कन्ध 8, अध्याय 24, 1912 एवं शास्त्री, रामचंद्र वर्मा, श्रीमद्भागवत पुराण,



चित्र संख्या-1 मेवाड़ शैली



चित्र संख्या-2 मारवाड़ शैली



चित्र संख्या-3 किशनगढ़ शैली



चित्र संख्या-4 जयपुर शैली

डॉ. कुसुम बिंडवार
सहायक व्याख्याता (मूर्तिकला/चित्रकला)
शास. संगीत एवं ललित कला
महा.खण्डवा (म.प्र.)

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

भारत में आधुनिक कला

भारतीय कला के अध्ययन में कला का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से आधुनिक कला का महत्व बढ़ गया है। आधुनिक कला के प्रसार के साथ ही उसके गूढ़ सौन्दर्य का रस ग्रहण करने की कला प्रेमियों में जिज्ञासा बढ़ गई भारतीय आधुनिक कलाकारों ने निर्माण-क्षेत्रों व सामाजिक जीवन में स्थान प्राप्त करके आधुनिक काल की कला का रूप आधुनिक ही हो सकता है, सिद्ध किया है। भारतीय दर्शक आधुनिक चित्र को दुर्बोध व गूढ़ मानता है।

भारतीय आधुनिक कला के सामाजिक महत्व के बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता है। आधुनिक कला के अंतर्गत कलाकार स्वयं के द्वारा किये गये प्रयोगों को समाज के सम्मुख रखने का औचित्य है जिससे दर्शक के मन में जिज्ञासा पैदा होती है। आधुनिक कला का मूल्यांकन भारतीय जीवन दर्शन व परिस्थिति के विचार को दृष्टि में रखा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात आधुनिक कला के क्षेत्र में हुए विभिन्न प्रयोगों के मूलाधार बीसवीं सदी में हुए कलात्मक प्रयोगों द्वारा प्रकाशित कलातत्त्व ही थे।

समकालीन प्रसिद्ध कलाकारों एवं उनके प्रयोगों ने कला क्षेत्र स्थान एवं कला का मूल्यांकन दर्शकों के उपर छोड़ दिया। भारतीय आधुनिक कला के इतिहास में कलाकारों का मौलिक योगदान रहा। जिनमें भारतीयत्व का परोक्ष या अवरोक्ष दर्शन अवश्य होता है। “आधुनिक कला आधुनिक कलाकारों के कला संबंधी दृष्टिकोणों में हुए प्रयोगों का इतिहास है। आधुनिक सृजनात्मक कलाकृति का दर्शक स्वयं को इन तत्वों के प्रति जाग्रत नहीं होगा तब तक वह उस कलाकृति का रसग्रहण करने में सफल नहीं होगा।”

कलाकार का व्यक्तिव स्वतंत्र होते ही सृजन क्षेत्र में आत्म अभिव्यक्ति व विशुद्ध सौंदर्य की खोज के बीच द्वन्दात्मक अवस्था में आधुनिक कला गतिमान हो गयी। सामान्य दर्शक कला को वास्तव सृष्टि को प्रतिरूपायत करने का साधन मात्र समझता है। “पुर्नजागरण काल से कलाकार ने वैज्ञानिक ढंग से अपनी अंकन पद्धतियों में संशोधन कर कला की धार्मिक अभिव्यक्ति से भौतिक रूप प्राप्त हुआ। भौतिक सौंदर्य के प्रति आकृष्ट दर्शक के लिए कलाकृति में वास्तव सृष्टि की सच्ची प्रतिकृति होगा कलाकृति की श्रेष्ठता का

मापदण्ड बन गया आधुनिक कलाकृति के रसग्रहण के लिए यह अनिवार्य है कि दर्शक इस पूर्वाग्रह दूषित दृष्टिकोण को त्यागे।²

“कला मानव निर्मित है, और मानव की निर्मित को मानव के सम्पूर्ण जीवन से कैसे पृथक किया जा सकता है। मानव की कला, विज्ञान, व्यवहार व कृति को मानव के जीवन से ही अर्थ प्राप्त होता है। आधुनिक कला के अध्ययन के लिये आधुनिक कला, आधुनिक मानव की कला है। आधुनिक जीवन जितना जटिल है उतनी ही आधुनिक कला जटिल है।³

“19वीं सदी के करीब धर्म, राजा एवं धनिक वर्ग का अध्ययन नष्ट होने से कलाकार बंधनों से अधिकांशतः मुक्त होकर स्वतंत्र विचार से कला निर्मित करने लगे। अपनी कलाकृतियों में सौंदर्यात्मक गुणों का अधिक से अधिक विकास करके कला को आत्म अभिव्यक्ति का साधन मानने लगा। चित्र विषय का महत्व कम हो गया एवं वस्तु निरपेक्ष कला का निर्माण आरंभ कर दिया।⁴

भारतीय कलाकारों ने आधुनिक कला का अध्ययन करते समय वस्तु निरपेक्ष सौंदर्य, आत्मिक अनुभूति, अतिथर्थात् कल्पना आदि कलांतर्गत सर्जनशीलता तत्वों का स्पष्ट व विशुद्ध रूप आधुनिक कला में सम्मिलित हो गया। प्रागैतिहासिक मानव की कला आधुनिक कला के समरूप बन गई। इसी कारण प्रसिद्ध कला समीक्षक हर्बर्ट रीड ने लिखा है कि “आधुनिक कला तीस सहस्र वर्ष प्राचीन है।” लोक चित्रकला एवं बाल चित्रकला में भी मूल सर्जनशील तत्वों का बहुत ही स्वाभाविक विकास होता है। आधुनिक कला का अध्ययन करते समय उपर्युक्त कलाओं से आधुनिक कलाकारों को प्रेरणा मिलती है। आधुनिक कला का बाह्य उद्देश्य नहीं होता जबकि ये कला बाह्य उद्देश्य से प्रेरित होती है। अजंता की कला, राजपूत कला व जैन पुस्तक चित्रणकला आधुनिक कला के अंतर्गत नहीं होते हुए भी उन प्राचीन धार्मिक कलाओं में कला के मूलाधार सर्जन तत्व प्रकट हुए हैं। ये कलाशैलियाँ आधुनिक कला के अनुसार उत्कृष्ट मानी जाती हैं। जिन कला तत्वों व सर्जनात्मक सहज प्रवृत्तियों को प्राचीन कलाकारों ने साधन के रूप में अपनाया। सत्य का दर्शन उन्हीं कलाकारों को हो सकता है जो कि स्वयं दार्शनिक होकर अपनी आत्मिक अनुभूति द्वारा जीवन के छिपे हुये रहस्य को खोज में सर्जन कार्य करते रहते हैं व जिनकी कला उपासना रूप होती है।

इस प्रकार के दृष्टिकोण से कलाकार के स्वतंत्र विचारों एवं अनुभूतियों का दर्शन आधुनिक कला का महत्वपूर्ण अंग बन गया। कला के आंतरिक स्वरूप के सत्य अन्वेषण में दर्शन शास्त्र, मनोविज्ञान, पदार्थ विज्ञान आदि विषयों का अध्ययन हो गया है। प्रकृति के विरोध भास के तत्व को हम आधुनिक कला के संदर्भ में भी अनुभव करते हैं। प्रत्येक आधुनिक कलाकार अपने व्यक्तित्व के अनुरूप कलानिर्मित करने लगा व कला में वैचित्र्य आ गया। ६

गिरे धीरे कला का प्रतीकात्मक महत्व नष्ट हो गया। इस संबंध में विकासो का कथन है कि “आजकल कोई कलाशैलियों नहीं है, केवल कलाकार ही कलाकार है।”

“आधुनिक कला में कलाकार आंतरिक या अंतर्मन की अनुभूति को ही सत्य के साक्षात्कार का साधन मानते हैं। रंग, रेखा, सतह आदि दृश्य कला के मूल तत्वों को तादात्म्य भाव से सचेत करके भावपूर्ण चित्र सृष्टि का निर्माण इन कलाकारों की साधना है।”⁵

अंजता, जैन व राजपूत शैलियों में दृष्टिगोचर भारतीय चित्रकला मुगल शैली के अंतर्गत पर्शियन व राजपूत शैलियों के समन्वित रूप में विकसित होने के बाद उसका पतन दिखाई देने लगा। मुगल एवं राजपूत शैली से प्राप्त भारतीय रूप— यानी गतिपूर्ण लयबद्ध रेखा, रूढिबद्ध आकारों का आलंकारिक सौंदर्य चमकीली रंग संगीत आदि सौंदर्य तत्वों का आलंकारित्व व कल्पना सौंदर्य के गुणों का ह्यास हो रहा था। भारतीय कला पर यूरोप की कला का प्रभाव पड़ा जिससे उसका मूल सौंदर्य दर्शन नष्ट होकर भ्रष्ट रूप प्राप्त हुआ। जिनमें दिल्ली कलम, लखनऊ कलम, पटना कलम, दक्षिणी कलम वगैरह नाम से अविकसित भ्रष्ट शैलियों कार्य करती रही।

“19वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय विद्यार्थियों को कला में प्रशिक्षित करने के विचार से मद्रास, कलकत्ता, बम्बई व लाहौर में कला विद्यालय खोले गये जहाँ नैसर्गिकतावादी पद्धति से चित्रण कार्य करने वाले अंग्रेज कलाकारों की नियुक्ति की गई। ग्रीक मूर्ति एवं व्यक्ति चित्रण के साथ—साथ हस्तकला व ग्रामीण उद्योगकला का अभ्यास कराया जाता था। त्रावनकोर के प्रतिभा संपन्न चित्रकार राजा रविवर्मा ने थिओडोर जंसन नाम के इंग्लिश चित्रकार से तैलरंग चित्रण पद्धति से शिक्षा प्राप्त कर भारतीय जीवन व्यक्ति व पौराणिक विषयों के चित्र बनाये। नैसर्गिकतावादी चित्रण—पद्धति पर सफल प्रभुत्व प्राप्त करने वाले राजा रवि वर्मा सर्वप्रथम भारतीय चित्रकार थे। किंतु यह चित्रण पद्धति भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति व जीवन दर्शन के अनुकूल नहीं थी अतः इनके चित्र अभिव्यक्ति के विचार से अविशुद्ध प्रतीत होते हैं।”⁶

“अवनीन्द्रनाथ की आरंभिक कला विद्यालयीन शिक्षा में परम्परागत नियमों का गहरा अध्ययन, प्रत्यक्ष पालन तथा सुदीर्घ साधन आवश्यक थे, जिनके अभाव से उनकी रेखा में ना सामर्थ्य था न रंगों में मोहक सौंदर्य जो भारतीय शैली की प्रमुख विशेषता थी। अतः अवन. न्द्रिनाथ की कला परंपरावादी कर्मकाण्ड मात्र हो गयी। अवनन्द्रिनाथ ने जापानी ढंग की कोमल रंग संगति में आकारों को अस्पष्ट अंकित करना शुरू किया।”

आधुनिक कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण कलात्मक गुण प्राचीन भारतीय कलाशैलियों में पाये जाते थे इन गुणों का पुनरुत्थान शैली में अभाव था।

डॉ. कुमार स्वामी ने पुनरुत्थान शैली की निर्बलरेखा व निस्तेज रंगों पर असंतोष व्यक्त किया।

ओ.सी. गांगुली ने पुनरुत्थान शैली का जन्म बौद्धिक विचार, स्वदेश प्रेम, स्वाभाविकता

व सहज ज्ञान नहीं है कहा।

“समाज के आधुनिकीकरण के साथ कला के रूप में तदनुकूल परिवर्तन, आधुनिक गतिशील कार्यव्यस्त व फ़ैले हुए मानव जीवन में दृश्य कलाओं को विश्वव्यापी सर्जन के मूल तत्वों पर आधारित कला निर्मिति के प्रयत्न स्वाभाविक है। रविंद्रनाथ टैगोर में कला की असाधारण काव्यमय दृष्टि व सूक्ष्मग्राहक संवेदनक्षमता उनकी कला के साधन थे। तथा लय, कला की आत्मा है। उनकी कला में काल्पनिक पक्षीया, जानवर जैसे आकार प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।”⁸

जें. कृष्णमूर्ति के विचारों से “अंकन पद्धति पर प्रभुत्व उदर निर्वाह का साधन बन सकता है। किंतु उससे हम सर्जनशील नहीं बनते, यदि हमें कोई आंतरिक ज्योति प्रज्वलित है, कोई आनंद है, तो उसको व्यक्त करने का अपने आप दिखाई देगा, अभिव्यक्ति के तरीकों का अध्ययन आवश्यक नहीं है।” रविंद्र नाथ टैगोर ने कहा है “ मेरे जीवन का प्रभात गीतो भरा था अब शाम रंग भरी हो जाये।” कुमार स्वामी ने लिखा है “ रविंद्रनाथ की मौलिक सहज सिद्ध अभिव्यक्ति असामान्य नित्य युवती प्रतिभा का प्रमाण है।”

“भारतीय कला को आधुनिक मोड देने का काम अमृता शेरगिल ने आरंभ किया। अतः उनको भारतीय आधुनिक कला के प्रणेताओं में स्थान दिया जाता है।”⁹ उनका मानना था कला प्राचीन हो या आधुनिक श्रेष्ठ कलाकृतियों उन्हीं अपरिवर्तनीय मूलाधार तत्वों पर आधारित होती हैं। “श्रेष्ठ कला में चित्र क्षेत्रीय एवं रचनात्मक सौंदर्य पर रूप के आवश्यक तत्वों पर विचार कर सरलीकरण किया जाता है।” अमृता शेरगिल के शब्दों में। अमृता ने प्राचीन कोंगडा व बसौहली शैलियों का निर्दिष्ट मार्ग से आधुनिकीकरण किया जा सकता है। अजंता, मुगल व बसौहली शैलियों के अध्ययन से अमृता ने अपनी शैली के विकास में काफी लाभ उठाया। उन्होंने लिखा “ कम से कम एक कारण से मुझे प्रसन्नता है कि मैंने कला की शिक्षा यूरोप में पाई। इसने ही मुझे अवसर दिया कि मैं अजंता, मुगल व राजपूत चित्रकारी को समझ सकूँ व उन्हें पसंद कर सकूँ। होता यह है कि उसको समझने का अधिकांश भारतीय चित्रकार ढोंग तो करते हैं, लेकिन वास्तव में वह गलत ढंग से समझी जाती है।” रविंद्रनाथ टैगोर व अमृता शेरगिल ने आधुनिक कला पद्धतियों से आरंभ करके अपनी कला को भारतीय रूप प्रदान किया।

यामिनी राय एक ऐसे कलाकार हैं। जिन्होंने बंगाल की ग्रामीण कलाओं से प्रेरण पाकर उनको आधुनिक रूप देने के प्रयत्न किये। पश्चिम बंगाल में संधाल लोगो में पटचित्रण का अधिक प्रचलन था। बंगाल की ग्रामीण कला एवं संधाल लोगो की कला का यामिनी राय की कला पर काफी प्रभाव पडा। कलकत्ता में नैसर्गिकतावादी एवं पुनरुत्थान कला का दोहरा प्रभाव यामिनी राय की कला पर था। “यामिनी राय के इन प्रयोगों की

तुलना पिकासो के नीग्रोकाल में किये गये प्रयोगों से की जा सकती है यद्यपि बाद में गतिरोध पैदा होकर यामिनी राय की कला में कृत्रिमता आ गयी । उनके चित्रों में पौराणिक विषयों एवं जानवरों के चित्र भी हैं।¹⁰

संदर्भ ग्रंथ

1. प्राचीन भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला, अरविंद कुमार सिंह
2. कला इतिहास भारतीय और पाश्चात्य, रमेशचन्द्र नारायण पारकर
3. कला इतिहास भारतीय और पाश्चात्य, रमेशचन्द्र नारायण पारकर
4. भारतीय कला पुर्नजागरण एवं चित्रकार, डॉ. संध्या पांडे एवं डॉ. आर.पी.पांडे
5. आधुनिक चित्रकला का इतिहास, र.वि. साखलक
6. भारतीय चित्रकला का इतिहास, अविनाश बहादुर वर्मा
7. आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तंभ, डॉ. प्रेमचन्द गोस्वामी
8. कला के अंतःदर्शन, र.वि. साखलकर
9. ललित कला के आधारभूत सिद्धांत, मीनाक्षी कासलीवाल
10. भारतीय कला एवं संस्कृति के प्रतीक, डॉ. कृष्णा दुबे

डॉ. अमित वर्मा
विभागाध्यक्ष, ड्राईंग एण्ड पेंटिंग विभाग,
स्टेनी मेमोरियल पी.जी. कॉलेज,
मानसरोवर, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

कला क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित करती 'कम्प्यूटर कला' एक अध्ययन

कला का उद्भव व विकास समग्र ऐतिहासिक-सामाजिक प्रक्रिया का अंग है। कला का प्रभाव भी सामान्य एवं समन्वित सामाजिक प्रक्रिया का अंग है। कलाकार नवीन प्रयोग करते हुए नवीन आयाम स्थापित करता है। वर्तमान समय में भारत ही नहीं समस्त विश्व में प्रयोगधर्मिता को स्पष्ट रूप से चिन्हित किया जा सकता है। परिवर्तन एक निरन्तर प्रक्रिया है जो आदिकाल से विद्यमान है। प्रचलित मान्यताएँ पीढ़ियों द्वारा स्वीकृत होती हुई आगे बढ़ती हैं। किन्तु एक विचारशील सजग समुदाय उन मान्यताओं को अस्वीकार करते हुए एक नवीन दिशा एवं नवीन मूल्यों की ओर समाज को ले जाना चाहता है। यही परिवर्तन का प्रारम्भ है। जितनी तीव्रता से जीवन के अर्थ परिवर्तित हो रहे हैं उतनी ही तीव्रता से कला में परिवर्तन हो रहा है। कला का यह परिवर्तन समकालीन कला रूप में हमारे समक्ष है। नवीन प्रयोग कला का पर्याय बनते जा रहे हैं। कलाकार सामूहिक पहचान से दूर व्यक्तिगत मौलिकता की ओर अधिक आकृष्ट हो रहे हैं। वस्तुतः आधुनिकता या समकालीनता का तात्पर्य है नवीन दिशा खोजने एवं मौलिक सृजनात्मकता के माध्यम से समाज को नवीन चेतना प्रदान करते हुए प्रोन्नति की ओर अग्रसर करना। समसामयिक कला जीवन की नवीनताओं, सृजनात्मक संभावनाओं, गहन संवेदनाओं तथा वैचारिक शक्ति के साथ जीवन को समझने का एक प्रयास है। आज कलाकार कल्पना में पूर्ण विश्वास रखते हुए उसके सहारे नवीन रूपों का-जो प्रकृति में भी देखने को न मिल सकें-निर्माण करना चाहता है। इस प्रकार समसामयिक कला का महत्वपूर्ण गुण सदैव प्रयोगवादी होना है। प्रयोगवाद में ही प्रवाह है तथा प्रवाह में गति व जीवन की अनुभूति है।'

अब तक चित्रकार तूलिका, मापनी, ज्यामितीय उपकरण, पिचकारी जैसे साधनों की सहायता से रंगांकन या आरेखन करते आये। अब शिल्पविज्ञानीय युग में कम्प्यूटर से चित्रण करने के प्रयोग शुरू हुए व ऐसी कला 'कम्प्यूटर कला' नाम से ज्ञात हुई। इस कला का स्वरूप अभी मर्यादित ही है व जो कृतियाँ बनाई गई हैं वे

सब आई.बी.एम. या कम्प्युटर से सुसज्जित अन्य बड़ी कम्पनियों की प्रयोगशालाओं के इंजीनियरों या इंजीनियरों व कलाकारों के सहयोग की उपलब्धि है। एक ही व्यक्ति से अभियान्त्रिकी व कला में निपुण होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्तिगत स्तर पर इस तरह के प्रयोग करने में आर्थिक कठिनाई भी है।

‘कम्प्युटर कला’ के पीछे प्रधान विचार यह है कि जो भी कार्य मानव-नियन्त्रित है वह कम्प्युटर से करवाया जा सकता है बशर्ते कि कार्य करवाने वाले व्यक्ति में नियन्त्रण कौशल व कला संबंधी पर्याप्त ज्ञान हो। अतः चित्रकला के अतिरिक्त संगीत, सिनेमा व काव्य की निर्मिति भी कम्प्युटर से की गई है। जब वाद्य से, जो एक यन्त्र होता है, संगीत का निर्माण होता है तो कम्प्युटर से क्यों नहीं हो सकता? इस विचार का आधार है भिन्न ललितकलाओं के मूल तत्वों की समानता।



अब तक श्रेष्ठ व ख्यातनाम कलाकारों द्वारा कम्प्युटर से सर्जनकार्य नहीं किया जाना ‘कम्प्युटर कला’ की संभावनाओं के बारे में संदेह उत्पन्न होने का एक कारण है। कम्प्युटर कला की प्रदर्शनियों में से न्यूयार्क (1965), लंदन (1968) व हानोवर (1969) की प्रदर्शनियों का काफी प्रचार हुआ व उन पर चर्चाएं हुईं। कम्प्युटर कला का अधिकतर कार्य नवलचीलवाद, रचनावाद, नेत्रीयकला, वस्त्रालंकरण जैसे शाखाओं से हुआ है क्योंकि गणितीय सिद्धान्तों पर आधारित होने से इनमें कम्प्युटर का उपयोग सुलभता से व प्रभावी ढंग से किया जा



सकता है। सायबर्नेटिक्स में हुए संशोधनों से विज्ञानियों को विश्वास हो रहा है कि कला का सर्जन ऐन्द्रिय व बौद्धिक क्रियाओं पर आधारित है, विभिन्न कलाओं के मूलतत्वों की समानता से इस बात की पुष्टि होती है। अतः वे वर्तमान शिल्प-विज्ञानीय युग में कम्प्युटर कला को सौन्दर्यात्मक अनुभूति प्राप्त करने के माध्यम के रूप में विकसित करने के लिए प्रयत्नशील है। ग्रेस हर्टलाइन का मत है, “कम्प्युटर की कलाक्षेत्रीय मर्यादाएँ हैं

कलाकार की कल्पनाशक्ति व कलाकार द्वारा कम्प्युटर का स्वीकार। शिल्पविज्ञान व

कला, इन दोनों के आंतरिक नियमों को स्वाभाविक रूप से स्वीकारने पर कलाकार बन्धमुक्त होकर सफल सर्जनकार्य कर सकेगा।" कम्प्युटर को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अचूक व द्रुतगामी उपकरण मानने के बजाय कलात्मक अनुभूति प्राप्त करने का एक नया क्षेत्र समझना चाहिये। अमेरिकन कम्प्युटर कलाकार चार्लस क्युरी कहते हैं, "मैं कम्प्युटर के जरिये आकारों की एक नई दुनिया का आविष्कार करता हूँ।"

सन् 1993 में शुरू में, 'स्टेट ऑफ द आर्ट' शीर्षक से, नौ समकालीन भारतीय कलाकारों की कम्प्युटर-आधारित एक प्रदर्शनी आयोजित की गई थी। इस प्रदर्शनी में कलाकारों की कैनवास पर मिश्रित माध्यम में पेंटिंग्स शामिल थीं और इसका आयोजन अहमदाबाद के भविष्यवादी कला स्टूडियो 'ब्रह्मा' के सहयोग से राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नई दिल्ली में किया गया था। इस प्रदर्शनी में शामिल कलाकार थे—एम.एफ. हुसैन, एस.एच. रजा, अकबर पदमसी, प्रभ. ाकर बरवे, लक्ष्मण श्रेष्ठ, मनु पारेख, मंजीत बावा, नवजोत अल्ताफ और अतुल डोडिया।



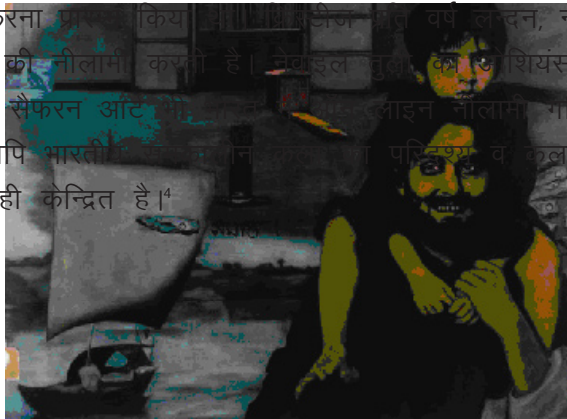
इस प्रदर्शनी के द्वारा कलाकार के स्टूडियो में निजी कम्प्युटर के प्रवेश पर प्रकाश डाला गया था—एक

ऐसा उपकरण जो आज आधुनिक कार्यालय का एक अपरिहार्य अंग बना हुआ है। यह तर्क भी दिया गया कि यदि कोई कलाकार आधुनिक उपकरणों से परहेज करता है तो उसे समकालीन भी नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः स्थिति यह है कि कलाकारों को आजकल से बेहतर माहौल पहले कभी नहीं मिला क्योंकि उन्हें आज मल्टीमीडिया के सभी लाभ उपलब्ध हैं जैसे कि फोटोग्राफी, वीडियो और कम्प्युटर। नए और "उपग्रह संचार, लिक्विड-क्रिस्टल डिस्प्ले (एलसीडी) और वर्चुअल रिएल्टी के क्षेत्र में हुए द्रुत विकास की वजह से आधुनिक विज्ञान ने कलाकारों के दरवाजे पर नए अवसरों को ला खड़ा किया है।"

फोटोग्राफर के पोर्ट्रेट के विपरीत कम्प्युटर छवि को बना लेने के बाद भी उसका 'पोज' बदला जा सकता है और उसकी प्रकाश-व्यवस्था या 'एंगल' को भी पूरी तरह पुनर्नियोजित किया जा सकता है। इसकी मदद से महान कलाकारों की कृतियों का पुनर्सृजन भी किया जा सकता है क्योंकि इसके इलेक्ट्रॉनिक्स रंग-चयन

में असीम संभावनाएं रहती हैं। फिलहाल तो हम इसके व्यापक प्रयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं और उस समय की भी, जब मानव तथा कम्प्युटर एक-दूसरे के साथ पारस्परिक क्रिया कर सकेंगे और अर्थपूर्ण सृजनात्मक चाक्षुष अभिव्यक्ति में मानव के प्रयासों के भागीदार बन सकेंगे।³

समसामयिक कला की नवीन संभावनाओं को कला व्यवसायियों ने भी बहुत प्रभावित व प्रोन्नत किया है। कला व्यवसायी स्वयं को समाज व कलाकार के मध्य एक सेतु के रूप में स्थापित करते हैं। कला एक उद्योग के रूप में अचानक प्रकट हुई है तथा इसका विस्तृत बाजार बन गया है। भारतीय कलाकृतियों के लिए विश्वपटल पर एक नवीन जोश दृष्टिगत होने लगा है। कला निवेश को आज अधिक सुरक्षित माना जा रहा है अपेक्षाकृत अन्य परम्परागत क्षेत्रों में निवेश के। बड़े शहरों में कला व्यवसायी नवीन कला दीर्घाएँ खोल रहे हैं। दिल्ली में ही सवा सौ से अधिक कला दीर्घाएँ हैं। समकालीन कला व्यवसाय ने देश में सांस्कृतिक पर्यावरण को प्रभावित किया है। न्यूयार्क की क्रिस्टीज व सदबीज जैसे अन्तर्राष्ट्रीय नीलाम गृहों ने भारत में नब्बे के दशक में कार्य करना प्रारम्भ किया। 'गोपनीय' ऐजेंसी 'वर्ण' लॉन्चन, न्यूयार्क व हांगकांग में कला कृतियों की नीलाम करवा रहे हैं। 'देवदल' व 'क' के अशियस तथा अमिताभ व नंदिनी गांधी का 'सेफ़रन आर्ट' भी न्यूयार्क में 'गोपनीय' ऐजेंसी के नीलाम गतिविधियाँ संचालित कर रहा है, तथापि भारतीय नीलाम गृहों का परिचय व कला बाजार बड़े खड़े प्रमुख नगरों में ही केन्द्रित है।⁴



विज्ञापन के सृजन में भी कम्प्युटर की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। कम्प्युटर के प्रयोग ने विज्ञापन निर्माण की जटिलता एवं धीमी गति को सरलता एवं तीव्रता प्रदान की है। अन्य सभी व्यवसायों – शिक्षा, मनोरंजन, संचार, चिकितसा आदि की तरह ही कम्प्युटर से विज्ञापन के सृजन और मुद्रण तकनीक में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों की तरह ही दृश्य विज्ञापन के सृजन एवं प्रकाशन में कम्प्युटर डी.टी.पी. (Desk Top Publishing) अर्थात् एक ही मेज पर प्रकाशन की सभी सुविधाएँ, की महत्वपूर्ण भूमिका है। डी.टी.पी. द्वारा विज्ञापन (डिजाइन) की रचना और उसके प्रकाशन की जटिलता की समस्या का समाधान हुआ है। कम्प्युटर द्वारा इस प्रक्रिया को सुगमता से पूरा किया जा सकता है। डी.टी.पी. द्वारा यह प्रक्रिया इतनी सरल व कम लागत वाली हो गई है कि डिजाइनर अपने चाहे गये आकार में डिजाइन बनाकर उसे मुद्रण हेतु तैयार कर सकता है और अगर उसमें बदलाव करना चाहे तो कुछ ही समय में उसमें बदलाव कर सकता है तथा उस डिजाइन में विभिन्न तरह के प्रभाव डालने में उसे सुविधा रहती है।

समकालीन कला वस्तुतः बीसवीं शताब्दी की उत्तेजक गतिविधियों व वैचारिक क्रांति की द्योतक है। आज कलाकार ने कला को पूर्णतया तकनीकी व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा है। यही कारण है कि दर्शक की सक्रिय भागीदारी कलाकार की अनुभूति व कला से नहीं हो पातली फिर भी आज कला में विस्तृत विविधता, नवीन खोजों व बौद्धिकता को नहीं नकारा जा सकता। आज कला की सभी विधाएँ चित्रकला, मूर्तिकला, व्यावहारिक कला, ग्राफिक कला आदि में सहअस्तित्व है। इन केन्द्रों के कला परिदृश्यों का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ा। किन्तु यह दुविधापूर्ण व खेदजनक स्थिति है कि नवीन संवेदनाओं के साथ नवीन प्रयोगों को अपनाते हुए समकालीन जीवन का प्रतिबिम्ब होते हुए भी समकालीन कला जीवन का अंग नहीं बन सकी है। हाँ, प्रयास अवश्य जारी हैं जिसमें तथाकथित उच्च व्यवसायी व बौद्धिक वर्ग को समकालीन कला की समझ, मूल्य एवं महत्व का बोध है। जनसाधारण तक पहुँच कर यह समकालीन कला उनके जीवन का अंग बने तथा सामाजिक स्तर पर मूल्यवान हो, यह समय पर ही निर्भर है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. ममता चतुर्वेदी, समकालीन भारतीय कला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृष्ठ संख्या 172
2. र.वि. साखलकर, आधुनिक चित्रकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2001, पृष्ठ संख्या 298-299
3. प्राणनाथ मागो, भारत की समकालीन कला-एक परिप्रेक्ष्य।

लोकेश कुमावत
(व्याख्याता, ललित कला संकाय)
स्टेनी मैमोरियल पी.जी. कॉलेज

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

कला में प्रेरणा एवं तकनीक

कलाकार के लिए कला सृजन का माध्यम किसी न किसी प्रकार की प्रेरणा होती है। यह प्रेरणा का स्रोत किसी भी रूप में हो सकता है। समसामयिक कलाकारों की बात करें तो अधिकांश कलाकारों का पारिवारिक माहौल और उनके जीवन अनुभव की यात्राएँ कला सृजन की प्रेरणा बन गई है। इन प्रेरणाओं के साथ-साथ वैज्ञानिक, तकनीकी विकास भी समसामयिक कला विकास और परिवर्तन का मूल कारण बनता जा रहा है। इन्हीं प्रेरणा स्रोतों और नये वैज्ञानिक तकनीकी तत्वों के समाहित होने से समसामयिक कला नये आयामों को छू रही है। ऐसे बहुत से नामी कलाकारों को उदाहरण के रूप में देख सकते हैं जो उपरोक्त मुख्य दोनों तत्वों से प्रभावित हैं।

यामिनी राय

34 वर्ष की उम्र में अपने अचानक अकादमी पद्धति छोड़ कला को पारम्परिक कला से जोड़ने का निर्णय लिया; यामिनी राय के इस निर्णय का मूल कारण जानने की कोशिश करें तो हमें ज्ञाता होता है कि आपका बचपन बांकुरा की लाल जमीन पर लोक कलाकारों के बीच गुजरा, जहाँ आपने इन लोक कलाकारों को खिलौने बनाते और पटचित्र बनाते बहुत नजदीक से देखा यही प्रभाव आपकी प्रेरणा का स्रोत साबित हुआ और आपकी कला को नया संसार मिला।



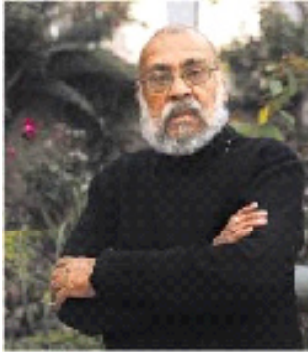
चित्र-1



चित्र-2

हिम्मत शाह

आप बचपन से ही एक अलग स्वभाव के धनी रहे। फक्कड़पन आपकी पहचान बन गया था, बाकी समय आपने जूनागढ़ के जंगलों में बिताया। ग्यारह वर्ष की उम्र में घर छोड़ दिया, आपकी जीवन यात्रा की गहराई आपकी कला रचना को देख पता चलती है। आपका मानना था कि हमें पहले 12 सालों का जो अनुभव होता है, वह हम बार-बार जीते हैं। बोहेमियन स्वभाव ने हिम्मत का पीछा नहीं छोड़ा। आप मूडी किस्म के कलाकारों में अग्रणी हैं। आपकी प्रकृति आपकी कला की मुख्य प्रेरणा दिखाई पड़ती है। आपने टेराकोटा कला को तकनीकी रूप से नये आयाम दिये और विकसित की तथा अपनी एक अलग पहचान बनाई।



चित्र-1



चित्र-2

एम.एफ.हुसैन

भारतीय जिंदगी के विविध रूपों और विविधता को (चाहे गरीबी हो, यथार्थ-अयथार्थ, नर-नारी, हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति आदि) लम्बे समय तक और करीबी से देखा और यही विविधता और आस-पास की घटनायें आपको कला-सृजन के लिए विवश करती थी। घटनाओं के प्रति आपकी यही प्रतिक्रिया कला में एक ऊर्जा के रूप में देखने को मिलती है। लम्बे समय तक फिल्मी पोस्टर बनाने का जो अनुभव आपके पास था वह आपकी कृतियों में देखा जा सकता है। पिकासो, अमृता शेरगिल, जार्ज कोट, मिनियेचर

में देखी जा सक



चित्र-1

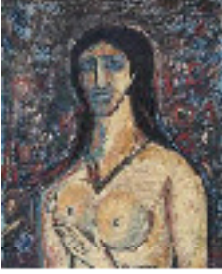


चित्र-2

हुसैन की कला

एफ. एन. सूजा

आपके भीतर एक तूफानी किस्म की बेचैनी है। यह आपकी मूल प्रकृति का हिस्सा है। आपके चित्र संसार में स्त्रियों को केन्द्रिय स्थान मिला है। सूजा स्त्री के प्रति हिंसक भी है और कोमल भी, नंगेपन और नग्नता के भेद को आपने बनाये रखा। आपका प्रिय माध्यम ऐक्रलिक बन गया क्योंकि इस माध्यम ने आपकी कला को और भी प्रचण्ड और प्रबल बना दिया कारण कि यह जल्दी सूखता है और एक दिन में कई पेंटिंग बनाई जा सकती है।



चित्र-1



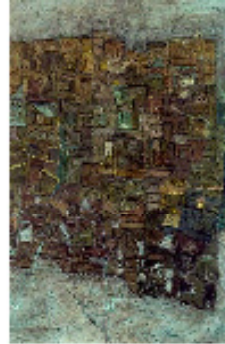
चित्र-2

राम कुमार

अपनी प्रेरणा के लिए रामकुमार अक्सर दो-तीन महिनों के बाद किसी नए शहर, लैण्डस्केप के लिए चले जाते हैं।



चित्र-1



चित्र-2

सोमनाथ हीर

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापानियों ने सोमनाथ हीर की जन्मस्थली चटगांव पर बमबारी की थी, युद्ध के दौरान ये घाव सोमनाथ हीर के दिल और दिमाग में गहराई ले चुके थे। विभाजन की रक्तरंजित स्मृतियां बरसों तक आपकी कला की प्रेरणा बनती रही। आपकी कला में अधिकांश नवीन तकनीकी प्रयोग देखने को मिलते

थे जो आपके इन घावों को और स्पष्ट कर देते हैं।

“मैं तस्वीरें नहीं बनाता हूँ। मैं जख्म बनाता हूँ।”



चित्र-1



चित्र-2

तैयब मेहता

विभाजन की त्रासदी ने तैयब मेहता के दिलो-दिमाग पर गहरा असर डाला, मुम्बई के कसाईखानों में बंधे हुए पशुओं की छवि ने तैयब मेहता को काफी झकझोर दिया। विभाजन को आपने युवा अवस्था में नजदीकी से देखा और यह हिंसा आपके भीतर बनती गई और किसी न किसी रूप में आपके चित्रों में प्रकट होने लगी। सपाट रंग-योजना आपको प्रभावित करती थी। इसका एक कारण यह भी था कि सिनेमा पोस्टर से काफी आकृषित थे।



चित्र-1



चित्र-2

इसी कड़ी में बहुत से कलाकार हैं जैसे- सुबोध गुप्ता, गणेश पाइन, विनोद बिहारी, आकाश चोयल आदि जिन्होंने किसी न किसी घटना व पारिवारिक माहौल से प्रेरणा प्राप्त की है तथा कला को नया आयाम दिया है। इन कलाकारों की यात्रा का कोई न कोई ठोस उद्देश्य और कारण इनकी यात्रा को सफल बनाता है इसी प्रकार वर्तमान यात्रा कर रहे कलाकारों को अपनी राह की पहचान कर मंजिल पर पहुँचने का प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ

1. बृहद आधुनिक कला कोश, विनोद भारद्वाज

आध्यात्म और धर्म का संगीत से पारस्परिक समन्वय

प्रत्येक राष्ट्र और समाज ने संगीत को धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में अपनी उन्नति और सफलता का माध्यम बनाया है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं के अवशेषों से इसके प्रमाण मिले हैं। विश्व के सभी धर्मों ने, सभी सम्प्रदायों ने सभी सन्तमह. आत्माओं ने संगीत को ईश्वर-प्राप्ति का साधन माना है, जैसा कि श्री अरविन्द ने कहा है— “संगीत मूलतः एक आध्यात्मिक कला है और यह सदैव धार्मिक भावनाओं तथा आंतरिक जीवन से संबंधित रही है।” अतः संगीत और धर्म के परस्पर समन्वय पर दृष्टि डालने से पूर्व धर्म और आध्यात्म क्या है, उसको जान लेना आवश्यक है।

धर्म लैटिन भाषा के शब्द 'रिलीजन' का पर्याय है, जिसका अर्थ होता है— बाँधना। इसलिए धर्म, आराध्य तथा आराधक, उपास्य तथा उपासक, व्यक्ति तथा समाज को बाँधता है। धर्म के सम्बन्ध में अनेक परिभाषायें उपलब्ध हैं जो इस प्रकार हैं—

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार — “धर्म व्यक्ति की ऐसी उच्चतर अदृश्य शक्ति पर विश्वास है, जो उसके भविष्य पर नियन्त्रण करती है और जो उसकी आज्ञाकारिता, शील, सम्मान तथा आराधना का विषय है।”

मनुस्मृति में वेदों को ही धर्म का मूल बताते हुए कहा गया है — “वेदोऽखिलो धर्ममूलं”। जैमिनी सूत्र में उल्लेख मिलता है — वेद जिसकी घोषणा कर वह धर्म है।”

इ.वी. टायलर के अनुसार — “धर्म आध्यात्मिक सत्ताओं में विश्वास है।” मैक्समूलर के अनुसार — “धर्म वह मानसिक शक्ति या प्रवृत्ति है जो मनुष्य को अनन्त सत्ता का ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम बनाती है।” कान्ट के अनुसार — “देवी आदेश के रूप में कर्तव्यों की स्वीकृति ही धर्म है।” श्लायरमाखर के अनुसार — “ईश्वर पर पूर्ण रूप से निर्भर रहने की भावना में ही धर्म का तत्व निहित है।”³

सुप्रसिद्ध दार्शनिक विचारक ब्रेन ब्राउन ने धर्म की महत्ता बताते हुए लिखा है

— "Everyman should follow his own religion, A Christian should follow Christianity a Mohamedan should follow Mohomedianism and so on. For the Hindu ancient path the path of Aryan Rishi is the best."⁴

अतः सामान्य अर्थ में धर्म एक विश्वास, एक भावना और संकल्प है और हमारी संस्कृति का मूल्यवान अंग है।

आध्यात्म का सम्बन्ध दार्शनिकों ने आत्मा से माना है। 'हिन्दी मानक कोश' में अध्यात्म का अर्थ है — परमात्मा, आत्मा, आत्मा तथा परमात्मा के गुणों एवं उसके पारस्परिक विषयों के सम्बन्ध में किए जाने वाला दार्शनिक चिंतन, निरूपण या विव. चन। 'हिन्दी साहित्य कोश' के अनुसार आध्यात्मवाद दर्शन का प्रारम्भिक रूप है। भारतीय दर्शन में ललितकलाओं के माध्यम से अलौकिक आनन्द का अनुभव किया जा सकता है। यही कला का आध्यात्म है।

भारतीय संगीत की यह विशेषता है कि उसका उद्गम स्थल भी आध्यात्मिक है। धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रह्मा के द्वारा हुई। ब्रह्मा ने यह कला शिवको दी तथा शिव के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती से नारद तथा नारद ने स्वर्ग के गंधर्व और अप्सराओं को संगीत शिक्षा दी।⁵ आगे अनेक विद्वानों ने संगीत के विकास क्रम को आगे बढ़ाया।

भारतीय संगीत का न केवल उद्गम अपितु पालन-पोषण भी धार्मिक स्थलों एवं आध्यात्मिक संगीतज्ञों के प्रश्रय में हुआ है। भारत की प्राचीन सभ्यता व सांस्कृतिक उत्थान में भी संगीत का सक्रिय योग रहा है। हमारे ज्ञान-ग्रन्थों वेद, उपनिषद, स्मृति-ग्रन्थ, सूत्र-ग्रन्थ, योग, दर्शन, व्याकरण आदि में संगीत को पर्याप्त महत्व दिया गया है।

भारत धर्म प्रधान देश है। हिन्दु धर्म में सर्वशक्तिमान ईश्वर से साक्षात्कार के लिए योग को अलौकिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। किन्तु मोक्ष प्राप्ति का यह मार्ग बहुत कठिन होने के कारण जनसाधारण के लिए बोधगम्य नहीं था। मानव के चंचल मन को केन्द्रित करना अत्यन्त कठिन है। संगीत में वह दिव्य शक्ति है जिससे चंचलमन सहज ही एकाग्र किया जा सकता है। कहा गया है कि चैतन्य महाप्रभु अपनी मंडली सहित कीर्तन करते हुए ईश्वर-भक्ति में तन्मय होकर मूर्छित हो जाते थे। वास्तव में संगीत से साधक स्वर-ब्रह्म में लीन होकर उस अलौकिक आनन्द की प्राप्ति करता है जिसकी केवल अनुभूति की जा सकती है अभिव्यक्ति नहीं। यही कारण है कि अति प्राचीनकाल से ही विश्व के विभिन्न धर्मों में संगीत को महत्व दिया जाता रहा है।

संगीत यज्ञों का अनिवार्य अंग था। हिन्दु धर्म के सभी देवी-देवताओं को किसी न किसी रूप में संगीत से संबद्ध किया गया है। देवताओं के आदिदेव शंकर संगीत के सृष्टिकर्ता माने गये हैं। विद्या की देवी सरस्वति वीणा-वादनी कहलायी, गणेश मृदंगवादक बने, योगीराज श्रीकृष्ण की मुरली ध्वनि से मानवही नहीं पशुपक्षी भी मोहित हो जाते थे।

धार्मिक-ग्रन्थ वेदों की उत्पत्ति नाद से ही मानी गयी है। कहा है -

“आदिनाथ अनहद भयो तातो उपजो वेद,
पुनि पायो वा वेद ने सकल सृष्टि को भेद।।”

सामवेद तो पूर्णतः गेय ही है। धार्मिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व है क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है - “वेदोनामसामवेदोस्मि” अर्थात् वेदों में सामवेद मैं ही हूँ। उन्होंने नारद से यहां तक कहा है कि -

“नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

सामवेद का उपवेद गंधर्व वेद है। गंधर्व वेद के अनुसार - “एक संगीत विज्ञानम् चतुर्वर्गफलप्रदम्” अर्थात् एकमात्र संगीत विज्ञान ही चारों फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान करने वाला है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि उस समय धर्म के साथ-साथ संगीत विकसित हो रहा था। याज्ञवल्क्य स्मृति में संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते हुए लिखा गया है कि -

“वीणा वादन तत्त्वाः श्रुति जाति विशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्ष मार्ग निगच्छति।।

अर्थात् जो वीणा-वादन को जानने वाला है, श्रुति-जातियों का जानकार है, जो तालज्ञ है वह बिना प्रयास के ही मोक्ष प्राप्त करता है।

वैदिक साहित्य के पश्चात् धार्मिक दृष्टि से रामायण और महाभारत में भी संगीत का विशिष्ट स्थान है। इन दोनों ही महाकाव्यों के नायक भगवान विष्णु के अवतार माने जाते हैं। महाभारत के श्रीकृष्ण की संगीत सम्बन्धी रुचि तो सर्वविदित है। रामायण में भी भगवानराम के महलों में सदैव शंख, तुरही, मुरज, मृदंग, वीणा आदि वाद्यों की ध्वनि गुंजरित होती रहती थी।⁶ रामायण, महाभारत के पश्चात् हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में पुराण का स्थान है। 18 पुराणों में छः ब्रह्मा, छः विष्णु और छः शिव से संबंधित हैं। इनमें भी संगीत संबंधी पर्याप्त विवेचन मिलता है।

दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में भारत पर विदेशी आक्रमण हुए तथा उन्होंने भारत पर विजय प्राप्त की। आक्रमणकारियों ने भारतीय संस्कृति को मिटाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु उस काल में भी समाजोद्धारक सन्त महात्माओं द्वारा इसकी परम्परा को बनाए रखा गया। आलवार सन्तों ने नाम संकीर्तन की भक्ति-धारा से दक्षिण भारत को रसपूरित करके उत्तर को भी आप्लावित किया। 14वीं से 19वीं शताब्दी का समय भक्ति-साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। इस काल में भक्तिआन्दोलन अपने चरम उत्कर्ष पर था। इसी समय निर्गुण-सन्त-भक्ति, प्रेमामार्गीय सूफी-भक्ति, प्रेमलक्षण कृष्ण भक्ति तथा मर्यादा मार्गी राम-भक्ति की प्रेरणा से समाज में भक्ति का पूर्ण वातावरण बन गया। अनेक भक्ति कवि तथा संगीतज्ञ हुए जिन्होंने संगीत के माध्यम से धर्म का प्रचार किया। अष्टछाप कवि और संगीतज्ञ कृष्णलीलाओं का गान करने लगे। उनकी कीर्तन-पद्धति जिसे कभी-कभी हम भक्ति-संगीत या हवेली-संगीत के नाम से आकाशवाणी के कुछ केन्द्रों पर आज भी सुनते हैं।

उसी समय सिक्ख-धर्म का बीज गुरुनानक द्वारा बोया गया। सिक्ख धर्म वैदिक सनातन हिन्दु धर्म से पृथक होकर अस्तित्व में आया। 'गुरुग्रन्थ साहिब' सिक्खों का मुख्य धार्मिक ग्रन्थ है। गुरुमुखी में लिखित लगभग 1430 पृष्ठों का यह विशाल ग्रन्थ है। इस धार्मिक पुस्तक के श्लोकों को 'शब्द' कहते हैं। सिक्ख-धर्म के अनुसार यह गुरुओं की पवित्र वाणी है। यह मोक्ष प्राप्ति का एक तरीका है। यह वाणी हमको ईश्वर के सम्मुख लेजाती है। कहा भी है -

“शब्दै हो नाउ ऊमजै शब्दे मोल मिलाइआ।

बिनु शब्दै सभु-जगु बउराना बिरथा जनमु गवाइआ।।

अमृत एको शब्द है नानक गुरु मुखि पाइआ।।⁷

शब्द से हम भगवान को प्राप्त कर सकते हैं। इन शब्दों का राग में गाना अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इन वाणियों में संगीत तत्व को विशेष महत्व दिया गया है। गुरुओं के अनुसार वाणी का राबगद्ध गायन मन को अधिक प्रभावित करता है। उनकी वाणियों में यहभी कहा गया है कि कथा, कीर्तन, राग एवं नाद द्वाराअपार आनन्द, सुख तथाअन्ततः कल्याण आदि की प्राप्ति होती है जैसे राग-बिलावल में निबद्ध यह वाणी -

“अनद सूख, मंगल बने पेखत गुन गाउ। एक रहाउ।।

कथा कीरतनु राग नादु धुनि इहु बनिओ सुहाउ।।⁸

सिक्ख धर्म में संगीत को उच्च स्थान मिला है। इस संबंध में डा. ए.एस. पेंटल

का कथन है — "For spiritual elevation and as an aid to communion with god, music plays a special role in almost all the religions of the world. It is intimately related to the heart of man and has little to do with his reasoning mind. The devotee of the music, that is evocative of emotions, thus enjoys intimate communion with god. He becomes one with god as he realize Brahma in Nada. It is not, therefore, surprising that the sikhs attach great importance to music and regard it as one of the means of communion with god. The Sikh Gurus, from Guru Nanak to Guru Govind Singh gave music an honoured place in their religion."⁹

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि सिक्ख धर्म में संगीत का बहुत अधिक सहारा लिया गया है। संगीतात्मकता के कारण ही आज उनका काव्य जनप्रिय है।

धार्मिक दृष्टि से कुरान और हदीस (मुहम्मद साहब के सत्य वचन) द्वारा निर्दिष्ट आचरण पर विश्वास रखना ही इस्लाम है। इस्लाम-धर्म का प्रमुख ग्रन्थ कुरान है। इसके प्रवर्तक नाजिज मोहम्मद साहब माने जाते हैं। भारत में मुस्लिम संस्कृति काफी प्रगतिशील रही। एक ओर जहां इसके धार्मिक व दार्शनिक सिद्धान्तों ने भारतीय समाज को प्रभावित किया, वहीं दूसरी ओर हमारे देश के सांस्कृतिक गुणों को भी ग्रहण किया। सामान्यतः मुस्लिम-धर्म में संगीत निषेद्ध माना जाता है परन्तु नैतिकता पूर्ण आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाकर सूफी-सन्तों ने विश्व स्तर पर इस्लाम-धर्म के प्रचार में व्यापक भूमिका निभाई। ईश्वर-प्रेम में मग्न होकर नाचने और गाने वाले सूफी जब भारत आये तो जनता उनकी ओर आकृष्ट हुई। एक विशिष्ट बात जिसने भारतीय जनता को आकृष्ट किया वह था इनका 'संगीत प्रेम'। संगीत के मधु से मिश्रित सूफी-तत्व ज्ञान भारतीयों को सहज पसन्द आया। भारतीय जनता के इस मर्म को इस्लाम के इन सूफी-सन्तों ने समझा और पहचाना तथा अपने आध्यात्मिक-संगीत के अंतर्गत गान की नवीन शैलियों — गज़लों और कव्वालियों आदि के द्वारा भक्ति तथा प्रेम का दिव्य सन्देश प्रसारित करना प्रारंभ कर दिया। आज भी अजमेर-शरीफ की दरगाह पर हर साल उर्स (मेला) लगता है। सारे हिन्दुस्तान से कव्वाल आते हैं। अपनी विशेषगायन-शैली — ताली बजाबजाकर, राग-रागिनियों में स्वरबद्धता के साथ ख्वाजा दुर्वेश की मजार पर इबादत पेश करते हैं। ये गायक कव्वाली के माध्यम से प्रशंसा करते हैं।

आधुनिक काल में भी हम धार्मिक केन्द्रों में संगीत सुनते हैं। चित्तवृत्तियों को शान्त तथा एकाग्र कर श्रोताओं को तन्मय कर देने का संगीत में एक महान गुण होने के कारण जप-तप और ज्ञान से भी अधिक महत्व भजन तथा कीर्तन का माना

गया है। तभी कबीर ने कहा है –

“भजन बिना बावरे तूने हीरा जनम गंवाया।”

अतः आध्यात्म और धर्म का संगीत से पारस्परिक समन्वय है। इस सत्य की हम अनदेखी नहीं कर सकते।

सन्दर्भ—ग्रन्थ

1. धर्म दर्शन – डॉ. रामनारायण व्यास, पृष्ठ 231.
2. भारतीय संगीत का इतिहास – डॉ. सुनिता शर्मा, पृष्ठ 11
3. संगीत दर्शन – विजयलक्ष्मी जैन, पृष्ठ 116
4. The Wisdom of Hindu- Brain Brown, page 265
5. संगीत विशारद – बसन्त, पृष्ठ-12
6. भारतीय संगीत का इतिहास— डॉ. शरदचन्द्र श्रीधर परांजपे, पृष्ठ-11
7. गुरुग्रन्थ साहिब, राग-सोरठ, बार-4, श्लोक-3, पृष्ठ 644

डॉ. नीरू कल्ला
प्रवक्ता, चित्रकला
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

राजस्थान के प्रसिद्ध गौरवमयी दुर्ग

राजस्थान सदैव वीरता और शौर्य की क्रीडास्थली रहा है। यहां के प्रत्येक अंचल में भव्य और विशाल दुर्ग समाये हुए हैं। राजस्थान में राजाओं के शासनकाल में अनेक दुर्ग का निर्माण हुआ और इनके निर्माण कार्य की परंपरा अत्यन्त प्राचीन रही है। दुर्ग स्थापित करने का प्रमुख उद्देश्य शत्रुओं के आक्रमण से अपने प्रदेश के निवासियों की सुरक्षा करना और उनकी बर्बरता से बचाना मुख्य उद्देश्य होता था इसीलिये राजाओं के सवर्णिम अतीत के प्रहरी ये दुर्ग (किले) सदियों के इतिहास की कहानी आज भी सुनाते प्रतीत होते हैं। इनकी भव्य सुंदरता व इनकी आंतरिक और बाहरी सज्जा देखते ही बनती है। ये दुर्ग आज भी युद्ध, त्याग व बलिदान की रोमांचक दास्तान अपने अंदर संजोये हुए हैं। इसीलिये आज विश्व में जिन दुर्ग के कारण हम राजस्थानवासियों का सिर गर्व से उपर उठ गया है वे दुर्ग निम्न हैं जिनका संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय निम्न प्रकार से है। दुर्ग को प्रमुखतः हम निम्न वर्गीकरण से देख सकते हैं क्योंकि हर दुर्ग की अपनी विशेषता होती है। उसे निर्मित करते समय उसकी निर्माण विधि व निर्माण तरीके से दुर्ग को संबोधित किया जाता था जैसे – 1. गिरि दुर्ग, 2. जल दुर्ग, 3. मही दुर्ग या स्थल दुर्ग, 4. वन दुर्ग, 5. धान्वन दुर्ग, 6. पारिख दुर्ग।

प्रस्तुत लेख में वर्तमान में विश्व में अपना परचम फहराने वाले पांच दुर्गों के बारे में स्पष्ट करना चाहूंगी। राजस्थान लोक संस्कृति का धनी रहा है साथ ही यहां के दुर्ग कि निर्माण विधि व सौन्दर्य ने आज विश्व के हर पर्यटक को अपनी और आकर्षित करके राजस्थान का गौरव बढ़ाया है राजस्थान के चित्तौड़ किला।

राजस्थान का चित्तौड़ किला

चित्तौड़ का किला गिरि दुर्ग में आयेगा यह राजस्थान का गौरव गढ़ों का सिरमौर चित्तौड़गढ़ दुर्ग बेड़च व गंभीर नदियों के संगम स्थल के समीप अरावली पर्वतमाला के एक विशाल पर्वत शिखर पर स्थित है। इसे मौर्य राजा चित्रांका ने बनवाया था। इतिहास पर दृष्टि डाले तो गुहिल वंशीय धापा रावल ने मौर्य शासक मान मौर्य से

734 से यह दुर्ग जीता था।

चित्तौड़ दुर्ग तीन प्रसिद्ध इतिहासिक साको का गवाह है।¹ सन् 1303 में अलाउद्दीन खिलजी व चित्तौड़ के राणा रतनसिंह के मध्य युद्ध। इस साके में रानी पद्मनी ने जौहर किया व वीर गोरा व बादल वीर गति को प्राप्त हुए। कहते हैं खिलजी ने अपने पत्र खिजखॉ को दुर्ग सौंपकर उसका नाम खिजाबाद रख दिया कुछ समय बाद उसने मालदेव सोनरा को सौंप दिया। ऐसा इतिहास में लिखा गया है।

1534 में गुजरात के सुल्तान बादशाह तथा अल्पवच विक्रमादित्य के मध्य युद्ध, जिसमें देवलिया प्रतापगढ़ के वीर रावत बाघसिंह पाडनपोल दरवाजे के बाहर लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो गये थे आज भी उनकी याद में चबूतरा बना हुआ है। इसी समय हाडा रानी कर्मवती और अन्य वीरांगनाओं ने जौहर किया इसी युद्ध के पूर्व रानी कर्मवती ने हुमायूँ को राखी भेजकर सहायता की मांग की थी।

सन् 1567 में मुगल बादशाह अकबर व राणा उदयसिंह के मध्य युद्ध हुआ जिसमें वीर जयमल पत्ता व कल्ला राठौड़ वीरगति को प्राप्त हुए। भैरव पोल व हनुमानपोल के बीच वीरवर राठौड़ कल्ला और टाकुर की छत्रियां हैं तथा रामपोल के भीतर रावत पत्ता का चबूतरा है।

वीरता और बलिदान की घटनाओं के लिये प्रसिद्ध चित्तौड़ दुर्ग स्थापत्य की दृष्टि से भी अपने ढंग का निराला दुर्ग है। सुदृढ़ और घुमावदार प्राचीर सात अमेघ प्रवेश द्वारा उन्नत और विशाल बुर्ज व किले पहुंचने का टेढा-मेढा और लम्बा सर्पिल मार्ग की विशेषताओं ने इसे एक अमेघ दुर्ग बनाया है।

यहां का विजय स्तम्भ कुंभश्याम मंदिर, मीरा बाई मंदिर, जैन की तिरितात गोरा बादल महल, नवलक्शा बुर्ज, श्रृंगार चंवरी भीमलत कुंड, चित्रांग मोरी तालाब आदि यहां के प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल हैं।

कुम्भलगढ़ दुर्ग

मेवाड़ व मारवाड़ की सीमा पर सादडी गांव के समीप राजसंमद जिले में अरावली पर्वतमाला पर स्थित गिरी दुर्ग कुम्भलगढ़ हैं जो महाराणा कुंभा ने मौर्य शासक सम्प्रति (अशोकका द्वितीय पुत्र) द्वारा निर्मित एक प्राचीन दुर्ग के ध्वंसावशेषों पर शिल्पी मंडन की देखरेख में बनवाया था। इस दुर्ग की आधार शिला 1448 में रखी गई और दुर्ग का निर्माण 1458 ई. में पूरा हुआ था।

कुम्भलगढ़ के आसपास पर्वतश्रृंखलाओं ने इसे एक नैसर्गिक सुरक्षा कवच के

रूप में सुरक्षित कर रखा है। इस दुर्ग के लिये एक जगह अबुल फजल ने लिखा है कि यह इतनी बुलन्दी पर बना हुआ है कि नीचे से ऊपर की ओर देखने पर सिर से पगड़ी गिर जाती है। यह दुर्ग सैनिक अभियानों के संचालन की दृष्टि से उपयोगी था और प्राचीन काल में युद्ध व समय शरणस्थल के रूप में उपयुक्त था। "कर्नल टॉड ने इसकी तुलना (सुदृढ प्राचीन बुर्जों व कंगूरों के कारण) 'एट्रस्कन' से की है।

कुभलगढ दुर्ग में एक लघु दुर्ग कटारगढ स्थित है जिसमें झांसी रानी का मालिया 'महल प्रमुख है। कहते हैं कटारगढ के उत्तर में झालीबाव बावड़ी व मामादेव का कुंड है जिसमें महाराणा कुंभा के पुत्र अदा ने जघन्य हत्या की थी और इसी के पास कुंभा द्वारा निर्मित कुंभा स्वामी विष्णु मंदिर है।

इसके पूर्व में प्रार्थना गुढा की नाल है इसकी तलहरी में महाराणा रायमल के कुंवर पृथ्वीराज की छतरी बनी हुई है जो 'उडणा राजकुमार के नाम से प्रसिद्ध था। इस दूर्ग से जुड़ी कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं है।

1. राणा सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ राज परिवार की स्वामीभक्त पन्ना धाय ने अपने पुत्र की बलि देकर उदयसिंह को बनवीर से बचाया था।
2. इसी दुर्ग में उदयसिंह का मेवाड़ के महाराणा के रूप में राज्याभिषेक हुआ।
3. 1537 ई. में कुभलगढ दुर्ग से ही प्रमाण कर उदयसिंह ने बनवीर को परास्त कर चितौड़ पर वापस अपना अधिकार स्थापित किया।
4. कुभलगढ दुर्ग में ही वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप का जन्म हुआ।
5. महाराणा प्रताप ने कुभलगढ से मेवाड़ का शासन किया।

रणथम्भौर दुर्ग—

सवाई माधोपुर जिले में स्थित है और अरावली सुंदर पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा थंभौर पहाड़ी पर स्थित एक विकट दुर्ग है। इसका निर्माण 994 ई. में रणथम्भनदेव द्वारा करवाया गया था। इसमें गिरि दुर्ग व वन दुर्ग दोनों की विशेषताएं विद्यमान है। इसको देखने से दूर से नहीं दिखाई देता किन्तु सभी सैनिक अपनी शत्रु सेना आसानी से देख सकते थे।

यह दुर्ग विशेष रूप से चतुर्दिक पहाड़ियों से घिरा हैं रणथम्भौर की सुदृढ नैसर्गिक सुरक्षा व्यवस्था से प्रभावित होकर अबुल फजल लिखते हैं अन्य सादा (नंगे) है जबकि यह दुर्ग बख्तरबंद है।

इसी दुर्ग में प्रसिद्ध गणेश मंदिर, पीर सदरूद्दीन की दरगाह, सुपारी महल, जौरा-भौरा, जोगी महल, हम्मीर महल, जैहर महल रनिहाड़ का तालाब आदि प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल है।

कहते हैं अजमेर शासक पृथ्वीराज तृतीय के तराइन के द्वितीय युद्ध में हार जाने के बाद उसके पुत्र गोविन्दराज ने यहां अपना शासक स्थापित किया था। हम्मीर देव चौहान यहां के प्रसिद्ध शासक थे। जिनके साथ सन् 1300-1301 में अलाउद्दीन खिलजी ने युद्ध किया व हम्मीर वीर गति को प्राप्त हुए। और जुलाई 1301 ई. में रणथम्भौर पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया था।

आमेर दुर्ग—

जयपुर का आमेर दुर्ग प्राचीन काल में अम्बावती और अम्बिकापुर के नाम से आमेर कछवाहा राजाओं की राजधानी रहा है। राजा मानसिंह प्रथम द्वारा सन् 1592 ई. में निर्मित आमेर दुर्ग के महल हिन्दु मुस्लिम शैली की एकता व समनव्यता का रूप है। यहाँ का प्रसिद्ध शीशमहल , शिलामाता का मंदिर, जगत शिरोमणि मंदिर प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल है। दुर्ग में शिरोमणि मंदिर में प्रतिष्ठापित भगवान कृष्ण की काले पत्थर की मूर्ति के लिये कहा जाता है कि यह चितौड़ से लाई गई थी और यह वहीं मूर्ति है जिसकी पूजा मीराबाई किया करती थी।

यहां का प्रसिद्ध मावठा जलाशय तथा दिलाराम का बाग स्थित है। इसके एक सिरे पर पुरा सम्पदा का संग्रहालय है। मिर्जा राजा जयसिंह ने 1639 ई. में आमेर के गणेश पांबदा निर्माण भी करवाया गया था। 1707 ई. में मुगल बादशाह बहादुर शाह (मुउज्जम) में आमेर का नाम मोमिनाबाद रखा था।

आमेर दुर्ग का दक्षिणवर्ती पर्वत शिखर पर अव्यवस्थित यह दुर्ग महाराजा मानसिंह प्रथम ने 1600 ई. के लगभग बनवाया था। इसके पश्चात् उनके उत्तराधि कारियें मिर्जा राजा जयसिंह एवं सवाई जयसिंह द्वारा इसमें उत्तरोत्तर परिवर्द्धन किया जाता रहा इस दुर्ग का नाम मिर्जा राजा जयसिंह के नाम व आधार पर "जयगढ़" रखा गया। इस दुर्ग के प्रमुख तीन द्वार है। डुंगर दरवाजा, अवकि दरवाजा और भैरू दरवाजा। जयगढ़ में एक लघु दुर्ग 'विजयगढ़ी' भी है जहां महाराजा सवाई जयसिंह ने अपने छोटे भाई विजयसिंह को कैद में रख था और जयगढ़ में विशिष्ट राजनैतिक बंदियों को कैद में रखा जाता था। सुमट निवास खिलजति निवास व विलास मंदिर जयगढ़ के प्रमुख महल है।

इस दुर्ग के भीतर मध्यकालीन शस्त्रों का विशाल संग्रहालय है जहां तोपे ढालने का कारखाना भी था। यहां अति विशाल तोप, जयबाण है जो एशिया की सबसे

बड़ी तोप मानी जाती है यह जनश्रुति है कि यहां कछवाहा राजाओं का राजकोष भी रखा हुआ था। कुछ वर्षों पहले आपत वाली ने गुप्त खजाने की खोज इसके भीतर की गई और व्यापक खुदाई की घटना ने जयगढ़ कादेश विदेश में प्रसिद्ध कर दिया।

नाहरगढ़ दुर्ग

इसी दुर्ग का हिस्सा नाहरगढ़ दुर्ग है जिसका निर्माण महाराजा सवाई जयसिंह ने 1734 ई. में मराठों के विरुद्ध सुरक्षा की दृष्टि से कराया था इसका पूर्व नाम सुदर्शनगढ़ था। अरावली पर्वतमाला में यह किला जयपुर के मुकुट के समान है। इसका नाहरगढ़ नाम लोकदेव नाहरसिंह भौमिया के नाम पर पड़ा है। जिनका स्थान किले की प्राचीन में प्रवेश द्वार के निकट बना हुआ है इसमें एक जैसे नौ महल है जो महाराज माधोसिंह द्वितीय ने अपनी नौ पासवानों हेतु बनाए थे। ये हैं सूरजप्रकाश, खुशहाल प्रकाश, जवाहर प्रकाश ललित प्रकाश, लक्ष्मी प्रकाश, आनन्द प्रकाश, धन्द्र प्रकाश, रत्न प्रकाश व बसन्त प्रकाश राजा जगतसिंह की प्रेमिका रसकपूर इसी किले में कैद करके रखी गई थी व उसकी मृत्यु भी इसी दुर्ग में हुई थी।

गागरोन का मिला (जल दुर्ग)

झालावाड़ में आहू और काली सिंध नदियों के संगम स्थल 'सामेलजी' के निकट यह उत्कृष्ट जल दुर्ग डोड (परमार) राजपूतों द्वारा निर्मित करवाया गया था। खींची राजवंश के संस्थापक देवनसिंह ने 12वीं शताब्दी में इसे जीत कर इसका नाम गागरोन रखा। खींचा राजवंश के राजा जैतसिंह सेत पीपा तथा अचलदास खींची प्रमुख शासक हुए हैं। मालवा, गुजरात मेवाड़ और हाडोती का सीमावर्ती दुर्ग होने से गगागरोन का सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। यह दुर्ग मुकन्दरा की पहाड़ी पर बना हुआ है सन् 1303 में दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने इस पर आक्रमण किया था परन्तु वहां के शासक जैत्रसिंह को हरा नहीं पाया।

इस दुर्ग के प्रमुख दर्शनीय स्थल निम्न हैं—

1. भगवान मधुसुदन का मंदिर जो राव दुर्जनसाल हाड़ा ने बनवाया।
2. कोटा रियासत के सिक्के ढालने के लिये निर्मित टकसाल
3. रामानंद के शिष्य संत नरेश पीपाजी की छतरी है जहां प्रतिवर्ष उनकी पुज्यतिथि पर मेला भरता है।
4. सूफी संत हमीदुद्दीन चिश्ती की समाधि जो 'मीठेशाह की दरगाह' के नाम से प्रसिद्ध है ये खुरासान से यहां आये थे।

5. कोटा के झाला जालिमसिंह द्वारा निर्मित विशाल परकोटा 'जालिमकोट'।

इस दुर्ग के प्रमुख शासक

(अ) 1423 ई. में मांडू के सुल्तान होरांगशाह (सुल्तान अफपर खां गोरी) व भोज के पुत्र अचलदास खींची के मध्य हुआ युद्ध जिसमें अचलदास वीरगति को प्राप्त हुए थे व अचलदास की रानी उमादे सहित दुर्ग की सभी ललनाओ ने जौहर किया। कहते हैं कि प्रसिद्ध कवि शिवदास गाडण ने अपनी काव्यकृति 'अचलदास खींची री वचनिका' में इस युद्ध का विशद वर्णन किया है।

(ब) सन् 1444 ई में मांडू के सुल्तान महमूद खिलजी प्रथम व अचलदास खींची के पुत्र पाल्हणसी के मध्य हुआ युद्ध मुख्य है विजयी सुल्तान ने दुर्ग में एक ओर कोट का निर्माण करवाया व दुर्ग का नाम मुस्तफाबाद रखा। यही हमारे दुर्गों की विशेषता रही है।

आज राजस्थान के प्रसिद्ध दुर्ग पूरे विश्व के सिरमौर बने हुए हैं वर्ल्ड हैरिटेज

डॉ. वंदना कल्ला
एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

‘वागड़ की ‘मीरा’ – गवरी बाई’

हमारे भारतीय संगीत जगत में अनेक महान कलाकारों ने अपना सहयोग संगीत कला को गौरान्वित करने में किया है। संगीत चाहे शास्त्रीय हो या लोक इनसे संबंधित सभी कलाकारों ने संगीत की साक्षात् प्रतिमूर्ति बनकर संगीत जगत में इतिहास रचा है। राजस्थान का दक्षिण भाग जिसे ‘वागड़’ के नाम से जाना जाता है। इसी क्षेत्र में एक असाधारण प्रतिमा का जन्म हुआ जिसे गवरी बाई (गौरी बाई) के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र ने मावजी महाराज व दुर्लभराज जी जैसी प्रतिमाओं को जन्म हुआ है। गवरी बाई ने अपना सम्पूर्ण जीवन कृष्ण भक्ति के पद व भजन को स्वयं रचित करके गाया है।

अतः इसी कारण वागड़ आपको ‘वागड़ की मीरा’ के नाम से पुकारा जाता है। वागड़ क्षेत्र की सन्त व भक्ति परम्परा में आज भी गवरी बाई का नाम अमर है। जैसे मीरा बाई का जीवन रचित पदों और भक्ति संगीत से ओतप्रोत था व एक साधु द्वारा कृष्णमूर्ति व ज्ञान प्राप्त हुआ है व इसी तरह गवरी बाई को भी आशीर्वाद मिला। जैसे मीरा कहती थी जिसके “सर मोर मुकुट मेरा पति सोई” वैसे ही गवरी बाई कहती है मेरा पति परमात्मा है।

गवरी बाई के पदों में राजस्थानी, गुजराती, ब्रजभाषा और वागड़ी भाषा का पुट स्पष्ट होता है और कहीं-कहीं कुछ राग रागिनी का भी प्रयोग हुआ है। जैसे सारंग, कल्याण, आसावरी व बिलावल आदि।

इस सन्त गायिका का जन्म करीब सवा दो सौ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् 1815 ई. (सन् 1756) के डूंगरपुर में वडनगरा के नागर ब्राह्मण कुल में हुआ था। गवरी बाई का ध्यान बचपन से ही ईश्वर भक्ति की तरफ रहता था। अपने बाल-विवाह के बाद पति के स्वर्गसिधारने से मन के दर्द को अपनी कृष्ण भक्ति में पिरो लिया और उसी दर्द ने स्वरचित पद व भजन को जन्म दिया जो भी आज भी गाये जाते हैं जैसे-जैसे समय आगे बढ़ा आपकी कृष्ण भक्ति की उत्कंठा बढ़ती गई।

सरल बाल-मन से की कृष्ण भक्ति और समय के साथ-साथ धार्मिक पुस्तकें

व सन्तों के ज्ञानार्जन का क्रम अनवरत रूप से चलता रहा। गवरी बाई ने कभी संगीत शिक्षा नहीं ली लेकिन अपनी भक्ति भावना व साधना का बखान संगीतमय भजन द्वारा करती रही और अपने को कृष्ण चरणों में अर्पित कर दिया।

गवरी बाई के रचे पद जैसे धीरे धीरे भक्ति की राह में बढ़ते गये वैसे वैसे उनके स्वरचित संगीतमय पदों को सुनने दूर-दूर से लोग आने लगे। गवरी बाई रचित पद 652 है जिनमें से कुछ प्रकाशित भी हुए हैं। इन पदों में कृष्ण लीला के पद तो हैं ही साथ में कुछ शिव स्तुति के पद भी हैं और कुछ ब्रह्मज्ञान से भी सम्बन्धित हैं। गवरी बाई द्वारा रचित पद आज भी मन्दिर में गाये जाते हैं। आपके पदों की रचना में राग व ताल का अच्छा मिश्रण मिलता है। इनके अनेक पदों का शीर्षक ‘गरबी’ मिलता है “गरबी” एक रचना है जो गुजराती साहित्य की अपनी मौलिक शैली है जिसे लोकधुन व तालों में रचा जाता है।

डूंगरपुर में गवरी बाई की कीर्ति से बड़े-बड़े संत दर्शन हेतु मंदिर में आने लगे और भजन कीर्तन के साथ-साथ अध्यात्मिक ज्ञान भी आपस में बांटने लगे और कई चर्चा के साथ प्रश्नोत्तरी जैसा भी वातावरण हो जाया करता था। डूंगरपुर के तत्कालीन महारावल भी गवरी बाई को सुनने आते थे। संत महात्माओं द्वारा की गई चर्चा का विवरण पद संख्या 402 में मिलता है जिसमें एक संत के साथ 33 प्रश्नोत्तरी का उल्लेख भी पाया गया है। डूंगरपुर महारावल शिवसिंगजी ने गवरी बाई की बढ़ती प्रसिद्धि से संतो से वार्तालाप करने का प्रबंध एक ‘हाटकेश्वर’ नामक मंदिर में किया और उसे गवरी बाई को भेंट किया।

संत गायिका कवयित्री और कृष्ण जी की परमभक्त गवरी बाई का संसारिकता के प्रति मोह सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो चुका था। वो अपनी कल्पना शक्ति से पद व भजन की रचना से यह दर्शाती है कि शिक्षा नहीं होने के बाद भी संगीत की अच्छी समझ रखती थी। गवरी बाई के पद सभी भक्तों के जुंबा पर आज भी सुनने को मिलते हैं। अपने इस अनूठे वैराग्य से गवरी बाई भक्ति साधना की अनोखी मूरत के रूप में सिद्ध हुई और इस अनमोल माध्यम से जनसमूह के साथ सदैव ईश्वर से जुड़ी रही। गवरी बाई ने डूंगरपुर में एक “शिव डेरी” (छोटा मंदिर) बनवाकर नागर समाज को भेंट किया जो आज भी मौजूद है और आज भी उस ऐतिहासिक अतीत का गवाह है।

स्वामी दयानन्द व भारतीय राष्ट्रवाद

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा सबको उद्यत रहना चाहिए।

स्वामी दयानन्द सरस्वती में बचपन से ही पुरोहित वर्ग के मिथ्या ज्ञान, अंहकार व मिथ्याचार के खिलाफ थे। गुरु की खोज में वो बृजानन्द से मिले। बृजानन्द दयानन्द की ज्ञान पिपासा, तीव्र बुद्धि, दृढ़ संकल्प शक्ति, निर्भिकता, उत्साह से प्रभावित थे। उन्होंने गुरु दक्षिणा में दयानन्द से यह प्रतिज्ञा ली कि वह सम्पूर्ण आर्यावर्त का भ्रमण करके अवैदिक मतों के अविद्या अंधकार का नाश करें और वेदों के ज्ञान को पुनः स्थापित करे ताकि अतीत का जगद्गुरु भारत पुनः अपने गौरव व सम्मान को प्राप्त कर सके।

प्रत्यक्ष रूप से स्वामी दयानन्द एक धार्मिक पुरुष व सन्यासी प्रतीत होते हैं और इस रूप में उनकी धार्मिक व सामाजिक सुधारों में रुचि थी। किन्तु दयानन्द द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थों तथा उनके प्रवचनों के संग्रह के अध्ययन से स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि उनकी रुचि राजधर्म (राजनीति) में भी पर्याप्त मात्रा में थी। यद्यपि उन्होंने प्रकट रूप से किसी राजनीतिक आन्दोलन का संचालन था नेतृत्व नहीं किया था, किन्तु ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं कि सन् 1855 ई. से 1860 ई. के काल में उनका सम्बन्ध ब्रिटिश राज के विरोध हेतु बनाये गये गुप्त क्रान्तिकारी संगठनों से था।

ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं कि 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की विफलता से बहुत आहत हुए। वो इसका कारण धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में पिछड़ापन को मानते थे। रुढ़िया, धार्मिक संकीर्णता, अंधविश्वास आदि के कारण लोग पूर्वाग्रहों से ग्रस्त रहते हैं तथा एकजुट नहीं हो पाते। इसलिए उन्होंने भारत में धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में क्रियाशील रहकर राष्ट्रीय चेतना के विस्तार के लिए कार्य किया। उस समय की परिस्थितियों में दयानन्द जी के द्वारा यह एक प्रशंसनीय कदम था। स्वामी पूर्णानन्द

तथा गुरु प्रज्ञा—चक्षु दण्डी स्वामी बिरजानन्द की गणना 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित धर्माचार्या के गुप्त संगठनों के प्रमुख सदस्यों के रूप में कि जाती है। स्वामी दयानन्द ने केवल सम्पूर्ण भारत में केवल वेदों का प्रचार प्रसार ही नहीं किया अपितु भारत माता को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने के लिए लोगों में राष्ट्रवाद की भावना का प्रसार किया। इन्होंने प्राचीन भारत के गौरव, वैदिक स्वराज्य तथा राष्ट्रीय आत्मसम्मान आदि की धारणा पर बल देकर इस दायित्व को अच्छी तरह निबाहा। दयानन्द के देशी रियासतों के नरेशों से सम्पर्क को ब्रिटिश राज सन्देह से देखता था और 1873 में कलकत्ता में महर्षि दयानन्द की वार्ताओंको सुनकर नार्थब्रुक ने उन्हें राजद्रोही साधु कहा।

स्वामी दयानन्द के चिन्तन में भारतीय राष्ट्रवाद के बीज या प्रमुख तत्वों का अध्ययन हम निम्न रूपों में कर सकते हैं :-

1. आध्यात्मिक एवं धार्मिक राष्ट्रवाद के जनक :- ब्रिटिश राज के समय लोगों में एकता व आत्मसम्मान की भावना को जगाने, रुढ़ियों, अंधविश्वासों आदि का विरोध करने के लिए सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन चला रहे थे। स्वामी दयानन्द से पहले राजा राम मोहनराय व संस्था ब्रह्म समाज ने धार्मिक सुधारों पर बल दिया था लेकिन उनके विचारों में राष्ट्रवाद का अभाव था। दयानन्द ने उनके इस गंभीर दोष की आलोचना की और धार्मिक आधार पर राष्ट्रवादी चिन्तन का विकास किया। उन्होंने वेदों को अधिक महत्व दिया। वेदों की महत्ता का सम्पूर्ण देश में प्रसार किया। उनकी गैर परम्परागत व्याख्या की। उन्होंने जीवन में वेदों को बहुत महत्वपूर्ण माना उसमें से सारतत्व को प्राप्त कर एक समग्र पुरुषत्व तथा एक सम्पूर्ण राष्ट्रीयता को खोज निकाला और उसके अनुरूप निर्णय लेने का साहस दिखाया। उनकी सभी रचनाओं में राष्ट्रवाद कूट-कूट कर भरा हुआ था। उनकी रचनाएं परम्परागत व्याख्याओं से चाहे कितनी ही भिन्न हों, राष्ट्रीय भावना से अवश्य ही सराबोर है। दयानन्द के धार्मिक स्वाभिमान ने भारतीयों में पहले तो सांस्कृतिक स्वाभिमान को जन्म दिया जिसका अन्तिम विकास देशाभिमान में हुआ। स्वामीजी ने वैदिक धर्म की व्याख्या एक सर्वभौम व मानव धर्म के रूप में की थी। तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दू समाज पर इस्लाम व ईसाइयत का दबाव व अत्याचार किया जाता था। ऐसे समय में स्वामी जी ने वेदों की महत्ता को प्रतिपादित कर लोगों में अपने हिन्दू धर्म के लिए श्रेष्ठता का अनुभव किया। उससे धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद की तीव्र लहर उत्पन्न हुई। इससे भारतीयों को यह प्रेरणा प्राप्त हुई कि बिना नैतिक व चारित्रिक उत्थान के राष्ट्र का उत्थान सम्भव नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि

भारत में दयानन्द के बाद धार्मिक राष्ट्रवाद का विकास स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्रपाल, बाल गंगाधर तिलक तथा महात्मा गांधी ने विभिन्न रूपों में किया।

2. सामाजिक उत्थान का समर्थन :- दयानन्द से पूर्व ही ब्रह्म समाज ने सामाजिक सुधारों की शुरुआत कर दी थी किन्तु स्वामी दयानन्द की विशेषता यह है कि उन्होंने न केवल विस्तृत मात्रा में सामाजिक सुधारों का उग्र समर्थन किया अपितु उन्होंने सामाजिक सुधारों को राष्ट्रवाद की अनिवार्य शर्त एवं साधन भी बनाया। दयानन्द ने भारत के पतन का प्रमुख सामाजिक कुरीतियों की मौजूदगी और सुदृढ़ सामाजिक संगठन का अभाव बताया। उन्होंने अंग्रेजों की राजनीतिक श्रेष्ठता का कारण उनकी श्रेष्ठ सामाजिक व्यवस्था में ढूंढा। उनका मानना था कि भारत के राजनीतिक उत्थान के लिए जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता की कुप्रथा, शूद्र व स्त्री की उपेक्षा, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, समुद्री यात्रा निषेध आदि कुरीतियों का डटकर विरोध किया। उन्होंने भारतीयों में फैले हुए सामाजिक विघटन, फूट, भेदभाव का कारण वो सामाजिक रुढ़ियों व रीतियों को मानते थे। वे भारत के राजनीतिक उत्थान के लिए शूद्रों व स्त्रियों के पूर्ण उत्थान, अनिवार्य शिक्षा पद्धति, युवा स्त्री व पुरुषों की पारस्परिक सहमति वाली विवाह पद्धति, वर्ण पर आधारित सामाजिक श्रम विभाजन की वैदिक प्रणाली, वैदिक आश्रम व्यवस्था आदि से सम्बन्धित सामाजिक सुधारों को आवश्यक मानते हैं। उनका मत था कि विवेकपूर्ण सामाजिक सुधारों की मदद से ही सामाजिक समानता, सामाजिक न्याय, सामाजिक स्वतंत्रता की स्थापना सम्भव है और तब ही एक ऐसे सामाजिक संगठन की स्थापना होगी जो भारत के राष्ट्रीय उत्थान में सहायक हो। वे राजनीतिक दृष्टि से एकता में बांधने के लिए विदेशी शासन का अन्त चाहते थे। आधुनिक हिन्दू समाज में संगठन की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है वो दयानन्द की ही देन है। जकारिया के अनुसार भारत दुःखद फूट को समाप्त करने के लिए सामाजिक दृष्टि से देश को एकता के सूत्र में बांधने के लिए दयानन्द जातियों व सामाजिक वर्गों के भेदभाव को समाप्त करना चाहते थे। दयानन्द के तरीकों का आगे अन्य उदारवादी नेता महादेव गोविन्द रानाड़े तथा गोखले ने भारत में राष्ट्रीय चेतना व जागृति के लिए सामाजिक सुधारों के महत्व को स्वीकारा। गांधी जी ने भी सामाजिक सुधार के लिए आन्दोलन चलाए।

3. स्वराज्य की आकांक्षा की अभिव्यक्ति :- दयानन्द ऐसे भारतीय थे जिन्होंने 19 वीं सदी में व्याप्त दासता की भर्त्सना की और स्पष्ट रूप से ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित दासता को भारत का दुर्भाग्य बताया। वे अपने समकालीन भारतीयों

एवं ब्रिटिश शासकों के इस मत से बिल्कुल भी सहमत नहीं थे कि ब्रिटिश शासन भारतीयों के हित में है। उनका मानना था कि अगर यह मान लिया जाये कि ब्रिटिश शासन ने भारत में सुराज स्थापित किया है तो भी यह एक अन्तिम सत्य है कि विदेशियों द्वारा स्थापित सुराज कभी भी स्वराज की तुलना में श्रेष्ठ नहीं हो सकता। स्वामी दयानन्द का मत था कि भारतीयों को विदेशी शासन से मुक्ति मिलनी चाहिए। स्वराज भारतीयों की प्रथम आवश्यकता है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा कि जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि एवं उत्तम होता है। विदेशी शासन चाहे सभी प्रकार के धार्मिक पक्षपातों से मुक्त तथा देशवासियों व विदेशियों के प्रति निष्पक्ष ही क्यों न हो, यह दयावान, कल्याणकारी तथा न्यायपूर्ण हो तो भी स्वदेशवासियों को पूर्ण सुख प्रदान नहीं कर सकता है। उन्होंने तत्कालीन भारत में स्वराज की भावना को जागृत एवं बलवती करने के लिए वैदिक स्वराज के महान् आदर्श को प्रस्तुत किया। उनका मत था कि भारतीय स्वभाव से ही स्वतंत्रता प्रिय है और इसलिए उन्हें स्वराज भी प्रिय है। तिलक के अनुसार दयानन्द स्वराज्य के सर्वप्रथम संदेश वाहक थे।

4. ऐतिहासिक आधार पर राष्ट्रीय गौरव एवं स्वाभिमान का समर्थन:— दयानन्द ने ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकट करके भारतीयों में राष्ट्रीय गौरव, अस्मिता एवं स्वाभिमान उत्पन्न करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। अंग्रेजी साम्राज्य के भ्रामक प्रचार का खण्डन करते हुए भारतीय ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध किया कि भारत के मूल निवासी आर्य है। दयानन्द ने सभी भारतीयों को एक बताया। भारतीयों के प्राचीन राजवंशों और उनके राजाओं के क्रम को प्रकट किया और बताया कि भारत का मूल धर्म वैदिक धर्म है। विश्व इतिहास में सभ्यता, संस्कृति, भाषा एवं ज्ञान के क्षेत्र में भारत ने जगतगुरु की भूमिका निभाई। विश्व के अन्य देशों में इनका प्रसार भारत से ही हुआ।

महर्षि दयानन्द के राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह आत्मिक चैतन्य से दीक्षित था। जिस प्रकार आत्मिक चैतन्य के अभाव में शरीर मृतवत् हो जाता है, उसी प्रकार आत्मिक चैतन्य नहीं रहने पर जाति और राष्ट्र का पतन हो जाता है। राष्ट्रवाद के लिए आत्मिक चैतन्य अनिवार्य है। मनुष्य को अपने सर्जनात्मक चैतन्य का प्रथम बोध धर्म के क्षेत्र में ही होता है। यूरोपीय महासुधार ने जब धार्मिक क्षेत्र में आत्मिक स्वतंत्रता की घोषणा की, तो उसका सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों पर भी बड़ा प्रभाव हुआ। आत्मिक चैतन्य से ही शक्तियों का पूर्णतम परिपाक होता है। भारतीय संस्कृति का यह सनातन सिद्धान्त है। शक्ति

का वास्तविक स्रोत आन्तरिक है। धर्म मार्ग से ही उस आन्तरिक शक्ति का पता लगता है। संसार में अनेक सभ्यताएं आयीं और मिट गईं, किन्तु आत्मिक चैतन्य को धारण करने के कारण ही भारत में अभी जीवन शेष रह गया है। धर्म के क्षेत्र में ही इस राष्ट्र को अपनी क्रियात्मिका शक्ति का भान हुआ है। जिस दिन पराधीन और पराभूत भारत को दयानन्द ने यह वैदिक संदेश दिया कि समस्त जगत को आर्य बनाना है, उस दिन एक प्रचण्ड शक्ति का संचार इस देश के लोगों की धमनियों में हुआ। पराधीन देश के निराश लोगों ने अपने विश्वव्यापक उद्देश्य और कार्य का ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार का आत्मविश्वासपूर्ण संदेश इसीलिए दयानन्द प्रदान कर सकें क्योंकि उनमें स्वयं प्रचण्ड आत्मविश्वास था। अनेक बार ऋषि को हिंसात्मक आक्रमण की धमकियां दी गयीं, किन्तु जिसने 'नायं हन्ति न हन्यते' का तत्वबोध कर लिया है। वह क्योकर साधारण लोगों की धमकी से किंचित मात्र भय करता। दयानन्द ने ललकार कर अपने विरोधियों को कहा कि आत्मा अजर और अमर है और शाश्वत अविनाशी आत्मा में विश्वास रखने के कारण विरोधियों के समस्त आक्रमण ऋषि की तेजपूर्ण दृढ़ता के सामने बेकार साबित हुए। दयानन्द अभय के जीवित मूर्तरूप थे और इस प्रकार का अभय ही पराधीन जाति को स्वतंत्रता का मंत्र दे सकता था। कोई भी सांसारिक शक्ति ऋषि को अपने न्यायोचित धर्मपूर्ण मार्ग से नहीं हटा सकती थी। उनकी धीरता और स्थितप्रज्ञता अचल-अटल थी। इस प्रकार के पुरुष का जन्म धारण और जीवन ही इतिहास में सच्ची क्रान्ति को ला सकता है। हम लोग जब ध्वनि-विस्तारक यंत्र का प्रयोग कर राष्ट्रभक्ति, वीरता और तेजस्विता का संदेश चिल्लाते हैं, तब भी हमारे अन्दर कमजोरी और समझौते की भावना रहती है। दयानन्द की परिभाषा में धर्म और सत्य के किसी दूसरे तत्व का समझौता नहीं हो सकता था। अन्याय, अत्याचार और पाखण्ड को सहना उन्हा-ने कभी सीखा न था। उनकी दृष्टि में असत्य से बगावत और अनाचार का दमन ही मनुष्यत्व है। इसी विराट आदर्शवाद पर उनका अपना जीवन निर्मित हुआ था। कभी-कभी दयानन्द एक आध्यात्मिक अराजकतावादी के रूप में हमारे सामने आते हैं और जब वे कहते हैं कि मैं किसी सांसारिक शक्ति को नहीं मानता, एकमात्र ईश्वर ही मेरा राजा और प्रभु है। ऋषि के प्रचण्ड आत्मबल से प्रभावित होने के कारण ही श्रद्धानन्द ने देहली में अंग्रेजी सेना की संगीनों के सामने अपना वक्षस्थल खोल दिया और लाजपतराय देश के उद्धार में अमर शहीद हो गये। भारतीय राष्ट्रवाद, विशेषकर हिन्दू राष्ट्रवाद को दयानन्द ने अनेक प्रकार से संपुष्ट किया, वैदिक शक्तियों के वे महान संदेशवाहक थे। शूद्रों, अछूतों, स्त्रियों आदि को समुन्नत करने में भी वैदिक

शिक्षाओं की उपादेयता वे स्वीकार करते थे। भावी नागरिकों के शारीरिक कोश की उन्नति के लिए घृत-दुग्ध की प्रचुरता देश में हो, ऐसी उनकी स्पृहा थी। सत्ता और धन के दुरुपयोग से धर्मपरिवर्तन उनको अभीष्ट नहीं था। राजनीतिक नीति-निर्धारण में चरित्रवान और मेधावी जनों का योगदान हो, ऐसा वे चाहते थे। वे आर्य वैदिक संस्कृति का संसार में प्रचार और प्रसार करना चाहते थे। शाश्वत धर्मगोप्ता कृष्ण की भांति दयानन्द भी वैदिक धर्म को अति प्राचीन और महत्वपूर्ण मानते थे। देशोद्धार के लिए, कर्मयोग का पालन और चारित्रिक शुद्धि वे प्रतिपादित करते थे। निस्सन्देह, आने वाली संतान दयानन्द को भारत में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के महान पैगम्बर के रूप में, उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नेताओं में, सर्वश्रेष्ठ स्थान देगी।

संदर्भ :

1. श्री अरविन्द, Bankim -Tilak-Dayanand
2. हरविलास शारदा, सम्पादक Dayanand Commemoration Volume
3. मि. ब्लण्ट, Cencus Report-1911 लाला लाजपतराय द्वारा अपनी पुस्तक आर्य सम्राट में उद्धृत पृ. 168

डॉ. सांवर सिंह यादव
553-554, सिद्धार्थ नगर,
जवाहर सर्किल, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

सुस्थिर विकास एवं पर्यावरण

इतिहास के आदिकाल से मनुष्य विकास की कल्पना करता रहा है। उसमें आगे बढ़ने की मनोवृत्ति रही है। वह जैसा है, उसमें संतुष्टि नहीं है किन्तु जो कुछ है उसमें बदलाव लाने और कुछ नया करने की भावना ही मनुष्य को कुछ करते रहने की प्रेरणा देती है। मैं वह करूंगा जो अब तक किसी ने नहीं किया यही विचारधारा विकास के मूल में अन्तर्निहित है। यद्यपि यह सच है कि व्यक्ति उत्तरोत्तर विकास करना चाहता है एवं समाज एवं राष्ट्र का नवनिर्माण चाहता है। लेकिन विकास की इस अवधारणा में बहुत से ऐसे आयाम हैं जिनका मूल्यांकन करना आवश्यक है।

सुस्थिर विकास की अवधारणा: जैन अर्थशास्त्र का उद्देश्य वर्तमान चिंतन के विभिन्न पक्षों की गहन एवं प्रमाणिक जानकारी प्राप्त कर कुछ ऐसे सामाजिक एवं आर्थिक प्रतिमानों एवं नैतिक मूल्यों को उद्घाटित एवं प्रकाशित करना है जिन्हें अभी तक यथोचित महत्त्व नहीं दिया गया है। इस उपेक्षावर्ती एवं विकास की भ्रांत धारणों से उत्पन्न अनेक वैचारिक विषमताओं का समुचित निदान ढूँढकर उन्हें वैज्ञानिक रूप से पुनः स्थापित करने का एक लघु प्रयास किया गया है।

वर्तमान युग में सर्वाधिक चिन्तन सामाजिक या राजनीतिक क्षेत्र के बजाय आर्थिक विकास पर दिया जा रहा है और आर्थिक चिन्तन का विषय भी केवल विकास की धारणा पर केन्द्रित हो चुका है। नीतिनिर्धारकों की दृष्टि मात्र विकास पर होती है और वह तथाकथित विकास मानव केन्द्रित है। भारत ही नहीं वरन् विश्व सभी देश इस विकास की इस अंधी दौड़ में शामिल हैं। विकास की इस अनन्त सीमा और लक्ष्यहीन दिशा को दिखते हुए आज यह चिन्तन का विषय गया है कि अन्ततः विकास का अर्थ क्या है?..... विकास का उद्देश्य क्या है?

पिछली समिदियों में मनुष्य ने जब से प्रकृति पर विजय प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा जो उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, सुख-सुविधा के साधन जफटाये हैं, असीमित जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति के लिए औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत की है, तभी से प्रकृति का सदियों पुराना संतुलित पर्यावरण खिंडित होना आरम्भ

गया है। वर्तमान मानवीय तृष्णा ने मानव जाति को अंधा बना दिया है। प्रतिदिन नई इच्छाओं का जन्म होता है। एक इच्छा की पूर्ति होते ही दूसरी इच्छा का जन्म हो जाता है। इन इच्छाओं की पूर्ति के लिये व्यक्ति अंधी दौड़ में पागल होता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको असुरक्षित अनुभव कर रहा है। व्यक्ति, परिवार, समाज के लिए यह चिन्तन का विषय है कि मनुष्य का सुख अन्ततः है कहाँ....? सुख-सुविधायेँ, भोग-विलासिता की सीमाएँ क्या हैं? उपर्युक्त प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है। इसी के फलस्वरूप सुस्थिर विकास की अवधारणा के साथ यह स्वीकार किया जाने लगा है कि विकास की प्रक्रिया से प्रकृति को किसी प्रकार की क्षति नहीं हो बल्कि विकास इस प्रकार से किया जाना चाहिए जिसमें पर्यावरण एवं मानव का समान रूप से संरक्षण, सह-अस्तित्व एवं सामंजस्य बना रहे। आज से लगभग अठारह सौ वर्षों पूर्व आचार्य उमा स्वामी ने एक सूत्र प्रस्तुत किया 'परस्परोग्रहो जीवानाम्' अर्थात् जीवन एक दूसरे के सहयोग पर आधारित है।

प्रदूषण, महामारी तथा प्राकृतिक आपदाओं से युक्त वर्तमान विकास की शृंखला एक कमजोर धरातल पर आ खड़ी हुई है, जो कभी भी गिर सकता है। इसे सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए भगवान महावीर के सिद्धान्त यथा- सापेक्षता, संवेदनशीलता, समन्वयता, सहिष्णुता एवं प्रकृति के प्रति समभाव को व्यवहारिक जीवन में अपनाये बिना इसका निराकरण संभव नहीं है। मानव के पर्यावरण-विषयक दृष्टिकोण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नियामक तत्व हैं- 'संस्कृति'। बेलग्रेड-यूगोस्लाविया में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण-शिक्षा-कार्यशाला में प्रापत निष्कर्षों द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। पर्यावरण के प्रति किसी व्यक्ति या समूह का व्यवहार एवं विचार मानव-पर्यावरण को अन्तःसम्बन्ध-विषयक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।²

विश्व में विभिन्न देशों ने विकास के लिए प्रमुख रूप से दो पद्धतियों का प्रयोग किया है- एक राज्यवादी पद्धति तथा दूसरी पूंजीवादी पद्धति। राज्यवादी पद्धति में समस्त सामाजिक व आर्थिक निर्णयों पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण होता है। यह व्यवस्था रूस तथा चीन व पूर्वी यूरोप के कुछ देशों में अपनायी गई। भारत में भी इसका मूल भाव देखने को मिलता है। दूसरी पद्धति विशुद्ध पूंजीवादी पद्धति है जिसमें आर्थिक निर्णय सरकार पर नहीं वरन् व्यक्ति विशेष पर निर्भर होते हैं। इसके अलावा इसमें "Crony Capitalism" (अपने परिचितों व सम्बन्धियों को उच्च स्थान देना) व "Casino Capitalism" (जुआघर आधारित पूंजीवाद) जैसी कमियों के कारण इसे भी अस्वीकृत किया गया है। पिछले कुछ वर्षों से विश्व में नव-क्लासिकल व नव-उदारवादी नीति के आधार पर वैश्वीकरण की आर्थिक नीति को विभिन्न देशों ने अपनाया है। इसे वैश्विक पूंजीवाद कह सकते हैं।

आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ लोगों के जीवन-स्तर पर भी अवश्य प्रभाव पड़ता है। हालांकि विकास की प्रक्रिया के साथ-साथ असमानता का दोष भी आता है, लेकिन आर्थिक परिवर्तनों के साथ रोजगार के नये अवसर भी उत्पन्न होते हैं। दक्ष श्रमिकों की मांग बढ़ती है, उनको बहुराष्ट्रीय व बड़ी कम्पनियों में काम के नये अवसर मिलते हैं। आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ सार्वजनिक राजस्व में वृद्धि के होने से सामाजिक क्षेत्र-शिक्षा, चिकित्सा, आदि के विकास पर ज्यादा व्यय करने से इन क्षेत्रों के अभाव कम होते हैं।

आज विकास की अवहेलना के परिणामस्वरूप मानव-सभ्यता के आर्थिक-सामाजिक ढांचे के खण्डन की चेतावनी देते हुए प्रकृति के प्रति समुचित आचरण का निर्देश देने हेतु नैतिक आचार संहिता की आवश्यकता स्वीकार की गई।³ विकास की गति को तेज करने के लिए ऊर्जा के उपभोग के बढ़ने से ग्लोबल वार्मिंग व जलवायु-परिवर्तन की समस्याएं तीव्र हो गयी है, जिनका उचित समाधान निकाले बिना भविष्य में विश्वस्तरीय स्थायी व सम्यक विकास की नींव नहीं डाली जा सकती।

पर्यावरण व विकास के परस्पर सम्बन्ध की चर्चा में पिछले वर्षों में सुस्थिर या सुदृढ़ या टिकाऊ विकास (Sustainable development) की अवधारणा का प्रादुर्भाव हुआ है। वह विकास जो आगे जारी रह सके, वह सुस्थिर या टिकाऊ विकास कहलाता है।⁴ इसके लिए विद्वानों ने अन्य कई प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे संतुलित या सम्यक् विकास (Balanced developed), समताकारी विकास (Equitable development), आदि। लेकिन इसके पीछे मुख्य विचार यह है कि वर्तमान पीढ़ी द्वारा आज के विकास के लिए आज प्राकृतिक स्रोतों का उपभोग करते समय यह ध्यान रखा जाए कि भावी पीढ़ियाँ पर्यावरण के गिरावट या पतन से हानि न उठाएँ।

पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग ने अपनी रिपोर्ट 'वर्तमान बचत व जनतमए 1987' में सुस्थिर व सुदृढ़ विकास का सामान्य सिद्धान्त यह बतलाया था कि "वर्तमान पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार से करे ताकि उससे भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता पर विपरीत असर न पड़े।"

अतः विकास में स्थिरता, दृढ़ता, समता व संतुलन तभी आते हैं जब वर्तमान पीढ़ी व भावी पीढ़ी दोनों के हितों का ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक साधनों का विदोहन, संरक्षण व विकास किया जाता है। विश्व में लोगों की, विशेषतया निर्धन लोगों की आवश्यकताएँ कई प्रकार की होती हैं, लेकिन उनकी पूर्ति के लिए पर्यावरण की क्षमता तथा टेक्नोलॉजी की क्षमता सीमित होती है। इसलिए पर्यावरण व उपलब्ध टेक्नोलॉजी की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति

करने का प्रयास करना सुस्थिर व सम्यक् विकास कहा जाता है। इसके लिए एक तरफ देश की उत्पादक क्षमता का विकास करना होता है तो दूसरी तरफ जनसंख्या की वृद्धि को पृथ्वी के प्राकृतिक साधनों के साथ संतुलन में रखना होता है। अतः सुस्थिर विकास परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें साधनों के उपयोग, विनियोग की दश, टेक्नोलोजिकल प्रगति का रुख व संस्थागत परिवर्तन का रूप आदि सभी वर्तमान व भविष्य अथवा आज और कल, के लिए मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की सम्भवनाओं को बढ़ाने का प्रयास करते हैं।⁵

यदि समय रहते जल, जीव, जमीन और जंगल का संरक्षण नहीं कर पाये तो विकास के परिणाम भयावह साबित होंगे। उदाहरण के लिए एक छोटा सा पक्षी चमगादड़ के नष्ट होने पर प्रकृति के अन्य घटक भी प्रभावित होते हैं।

1970 के दशक में मलेशिया में एक लोकिप्रिय फल डूरियन की पैदावार घटने लगी थी, जिससे 10 करोड़ डालर सालाना वाले इस उद्योग को भारी खतरा उत्पन्न हो गया था। इस फल के पेड़ बिल्कुल दुरुस्त थे। लेकिन देखते ही देखते इनकी पैदावार लगभग खत्म हो गई। शोध करने पर यह पाया गया कि इस पेड़ के फूल जो चमगादड़ की एक किस्म द्वारा पराग (pollinated) दिया जाता था। उनकी संख्या काफी घट गई थी। चमगादड़ों की संख्या घटने के मुख्य दो कारण थे— 1. ये स्वयं अपना भोजन मैंग्रोव (Mangrove) दलदली भूमि में पेड़ों से लेती थीं, जिनमें श्रिम्प (समुद्री केकड़ा) का विकास करने से उसका मिलना कम हो गया था एवं 2. एक स्थानीय सीमेंट की फैक्ट्री के कारण लाइमस्टोन की चट्टानों का सफाया कर दिया गया था जहाँ चमगादड़ रहती थीं। स्पष्ट है कि प्रकृति का एक छोटा सा जीव भी जैव विविधता के लिए कितना उपयोगी एवं आवश्यक है।

विकास के वैकल्पिक मॉडल की तलाश में वर्तमान वैश्विक आर्थिक संकट पर एक नजर डालना उपयुक्त होगा। 1929 की विश्वव्यापी महान् आर्थिक मंदी के बाद सम्भवतः 80 वर्ष बाद वैश्विक अर्थव्यवस्था को वर्तमान में सबसे बड़ा झटका लगा। भारत जैसे विकासशील देश भी चिंतित हैं, हालांकि यहाँ की बैंकिंग व वित्तीय संस्थाएं काफी सुदृढ़ व सुरक्षित हैं, लेकिन विश्व में, और विशेषतया विकसित देशों में, सम्भवित मंदी से हमारी अर्थव्यवस्था पर भी कुछ प्रतिकूल असर का पड़ना स्वभाविक है। लेकिन हाल ही में भारी उतार-चढ़ावों ने हमारी चिन्ताओं को बढ़ाया है, और विश्व के परिवर्तनों और बदलती हुई व वित्तीय परिस्थितियों तथा अन्य घटनाओं ने हमें विकास की रणनीति पर पुनः सोचने के लिए प्रेरित किया है।

जैन आचार मीमांसा अनुसार जीवन-शैली का एक महत्वपूर्ण सूत्र है: अनेकान्त।

अनेकान्त का आशय है एक ही विषयवस्तु के बारे में विभिन्न मत रखना। इससे समन्वय वह सह-अस्तित्व की भावना का उदय होता है। अनेकान्त का एक सूत्र है—सापेक्षता। हमारा जीवन सापेक्ष है। एक कार्य में अनेक लोगों का जब श्रम जुड़ता है, तब कहीं जाकर मनुष्य को रोटी मिलती है। सापेक्षता जीवन की सार्थकता प्रस्तुत करती है। सापेक्षता के दृष्टिकोण से ही यह विचार आता है कि विश्व, देश व समाज में व्याप्त अनेक प्रकार के मतमतान्तरों एवं धनी-निर्धन, गाँव-शहर, शिक्षित-अशिक्षित, धार्मिक-जातिगत, आर्थिक-सामाजिक आदि विषमताओं के अन्तरालों को कम किया जा सकता है। इस प्रकार सुस्थिर विकास समग्रता, समानता व सहिष्णुता जैसे मानवीय मूल्यों द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

पर्यावरण की कोई भी प्रक्रिया, परिस्थिति या कारक निरर्थक नहीं है। “जीव-समुदाय तथा अजैविक पर्यावरण का परस्परश्रयी तंत्र परितंत्र कहलाता है।⁶ संयुक्त राष्ट्र में सुस्थिरता के लिए एक नई शब्दावली को अपनाया है। The Triple Bottom Line (TBL) अथवा People, Planet, Profit. के अन्तर्गत सामाजिक विकास, प्लेनेट के अन्तर्गत पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय विकास ओर प्रोफिट के अन्तर्गत आर्थिक विकास को लिया गया है। इन तीनों के विकास में सुस्थिरता आने से ही विकास को पूर्ण सुस्थिरता का दर्जा दिया जा सकता है और यही सन्देश हमें भगवान महावीर के अर्थशास्त्र में मिलती है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अहिंसा-प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार व उनकी अहिंसा यात्राओं से इस दिशा में ठोस प्रगति हुई है, लोगों की मनोवृत्ति व मनोदशा में भरी परिवर्तन देखने को मिला है, हिंसा से अहिंसा की ओर, अकर्मण्यता से कर्मण्यता की ओर, अनैतिकता से नैतिकता की ओर, अशान्ति से शान्ति की ओर, मांसाहारिता से शाकाहारिता की ओर, मद्यपान से मद्य-निषेध की ओर तथा असीमित परिग्रह से सीमित परिग्रह की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जो परिवर्तन नैतिक मूल्यों व भावनात्मक संतुलन पर आधारित होने के कारण मानवता को सुरक्षित व सुस्थिर भविष्य प्रदान कर सकेगा।

जैन-दर्शन का मूल तत्व है—अहिंसात्मक रूप से इच्छाओं एवं उपभोग का परिसीमन। इच्छायें असीमित होती हैं, लेकिन उनकी पूर्ति के साधन सीमित होने से उन्हें भी अनिवार्यतः सीमित करना होता है। मानव स्वभाव की कमजोरी के कारण व्यवहार में ऐसा करना सुगम नहीं होता। यह परिसीमन केवल इच्छाओं तक ही लागू नहीं होता, बल्कि इसे ‘संग्रह’ पर भी लागू किया जाना आवश्यक है, जिसे जैन-दृष्टिकोण में ‘परिग्रह का परिसीमन’ कहा गया है। जैन- विचारधारा

में 'जीवन-स्तर' को ऊँचा उठाने की बजाय 'जीवन की गुणवत्ता' को बढ़ाने पर दिया जाता है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ मानवीय गुणों के विकास की यथा- सादगी, दया, उत्तम चरित्र, त्याग, सद्भावना, सच्चाई, आदि का मानव के समुचित विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जैन धर्म की समस्त साधना प्रदूषण को दूर करने की साधना है। इसके द्वारा आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के प्रदूषण पर विजय पायी जा सकती है। वस्तुओं का सम्यक् उपयोग पर्यावरण के लिए उतना हानिकारक नहीं है जितना, उनका अमर्यादित भोग एवं उपभोग हानिकारक है। इसलिए आगम में भोगोपभोग के परिणाम की बात कही गई है। वर्तमान पर्यावरणीय समस्या के समाधान के लिये एक विशिष्ट अहिंसक जीवन शैली की आवश्यकता है जिसमें प्राकृतिक सौंदर्य बोध के विश्वबंधुत्व एवं सर्वजीव समभाव की धारणा समाहित हों और यह तब तक संभव नहीं है जब तक वर्तमान युग के अनुरूप आध्यात्मिक पर्यावरण शैली को मनुष्य की जीवनशैली में शामिल ना कर लिया जाए।

प्रश्न उठता है कि क्या वर्तमान विकास सही अर्थों में विकास के मानदण्डों में उचित एवं संगत ठहरता है? क्या विकास के इस नये मॉडल में मानव में कल्याण एवं सुख-समृद्धि निहित हैं? क्या ऐसी भौतिक प्रगति मानवजाति के सुख-चैन के लिए पर्याप्त है? इन समस्त पहलुओं का विश्लेषण तीव्रता से बदल रहे ऐतिहासिक संदर्भ में 'विकास' के वैचारिक पहलू तथा विकास के व्यावहारिक परिणाम दोनों दृष्टियों से करना होगा। यद्यपि पर्यावरणीय दायित्व की भावना से युक्त होकर विकास की गति को निरन्तर बढ़ाना निश्चित रूप से चुनौतिपूर्ण प्रक्रिया है। लेकिन समन्वित एवं समुचित विकास की अवधारणा तभी सार्थक हो सकती है जब पर्यावरण को मानवीय विकास से पृथक् नहीं वरन् उसी का अहम् हिस्सा समझा जाये।

निष्कर्षतः वर्तमान में हिंसा, आतंकवाद, भुखमरी, असमानता व तनाव आदि से त्रस्त मानवता को सुरक्षित व सुस्थिर विकास की ओर ले जाने के लिए अत्यधिक प्रयास करना होगा। यह एक व्यापक व बहुआयामी समस्या है, जिसे अनेक क्षेत्रों में हल करना होगा। चूंकि मानवीय समस्याएं मूलतः भावनात्मक संवेगों से जुड़ी होती हैं, और यह विडम्बना ही है कि आज विज्ञान व प्रौद्योगिकी के इतने ऊँचे शिखर पर पहुंचने के बाद भी मानव वास्तविक जीवन में निरन्तर कष्ट भोगता रहा है। यह जीवन की कोई आधारभूत कमी की वजह से ही हो रहा है। प्रस्तुत प्रबन्ध में उपरोक्त सभी तथ्यों एवं समस्याओं का निदान ढूँढने का प्रयास किया जायेगा जिसे सुस्थिर विकास के वैकल्पिक नमूने (Model) के रूप में प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. उमास्वामि, परस्परोग्रहोजीवानाम्, तत्त्वार्थ सूत्र 5.21
2. इंटरनेशनल इनवायर्नमेन्टल एज्युकेशन, वर्कशॉप (अक्टू) यूनेस्को न्यूज लेटर-I (जनवरी 1976)।
3. दी वर्ल्ड चार्टर ऑफ नेचर, एडप्टेड बाइ जनरल असेम्बली ऑफ दी यूनाइटेड नेशन ऑन, अक्टू, 1982
4. Sustainable development is development that lasts, World Development Report, 1992, p. 34.
5. "Sustainable development is best understood as a process of change in which the use of resources, the direction of investments, the orientation of technological development and institutional change all enhance the potential to meet human needs both today and tommorrow". The Report of the World Coomission on Environment and Development : A guide to our Common Future, 1987, p. 3.
6. दी वर्ल्ड चार्टर ऑफ नेचर, एडप्टेड बाई जनरल असेम्बली ऑफ दी यूनाइटेड नेशन ऑन,

डॉ. राजेश मीना
पोस्ट डॉक्ट्रल फ़ैलो, संस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

प्राचीन भारतीय नाट्य साहित्य में नायिका

भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि को नाट्यवेद का ज्ञान ब्रह्मा से प्राप्त हुआ, उन्होंने अपने सौ पुत्रों को नाट्य वेद की शिक्षा दी एवं देवसमर में महेन्द्र विजयोत्सव "त्रिपुरदाह" एवं अमृत मन्थन आदि नाट्यों का सफल प्रयोजन किया। इस प्रकार आचार्य भरतनाट्य प्रयोक्ता एवं नाट्यशास्त्र के रूप में प्रसिद्ध हुये। अंग्रेजी में जिस अर्थ में ड्रामा शब्द का प्रयोग होता है। उसी अर्थ में संस्कृत साहित्य में रूपक शब्द पाया जाता है जब हम काव्य की विवेचना करने बैठते हैं तो देखते हैं कि काव्य दो प्रकार का होता है – श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य। पहला काव्य देखने या सुनने की वस्तु है जबकि दूसरा काव्य देखने की वस्तु है, यह रंगमंच की वस्तु है, यही दृश्यकाव्य रूपक है, अवस्था के अनुकरण को ही नाट्य कहा जाता है।¹ जहां काव्य में निबद्ध या वर्णित धीरोद्धात धीरोद्धत धीरललित धीरप्रशान्त प्रकृति के नायकों तथा तत्प्रकृतिगत नायिकाओं तथा अन्य पात्रों का आंगिक, वाचिक सात्विक ओर आहार्य इन चार ढंग के अभिनयों के द्वारा अवस्था का अनुकरण किया जाता है। वह नाट्य है, वही नाट्य रूप भी कहलाता है। वैसे ही नाट्य में नट रामादि पात्रों की अवस्था का आरोप किया जाता है। अतः यह रूपक कहलाता है। इसलिए एक ही अर्थ में नाट्य, रूप, रूपक तीनों शब्दों का प्रयोग होता है क्योंकि नाट्य में नायक की प्रधानता रहती है। अतः नायक के साथ नायिका की कल्पना की जाती है। इन नाट्यों में स्त्री पात्रों की भूमिका भी पुरुष पात्रों के द्वारा सम्पन्न की गई है। इन नाट्यों को अधिक रस युक्त बनाने के लिए नारी पात्रों को नाट्य सम्मिलित किया गया। आचार्य भरत ने नारी को सुख का मूल, कमभाव का आलम्बन एवं काम को सब भावों का स्रोत मानकर प्रस्तुत विषय पर विचार किया। नायिका कवि की सुकुमार कल्पना है। काव्य कला की उत्कृष्ट सौन्दर्य की चरम परिणिति है। नायिका नाट्य की प्राणवर्हनी धारा है, नाट्य में उसका प्रवेश जीवन में रस का मधुर संचार करता है। इसी जीवन रसपान के लिए नायक अपना सर्वस्व विसर्जन करने को तत्पर रहता है।²

नायिका शब्द नी धातु से ण्वुल प्रत्यय तथा सत्रीलिंग में 'टाप्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। वस्तुतः नाट्य में सिद्धि का प्रमुख अधिकारी नायक होता है। अतः उसी के अनुरूप नायिका की कल्पना की गई है।^३ नायिका नाटक की मुख्य पात्र होती है क्योंकि वह नायक के फल प्राप्ति हेतु बराबर का सहयोग करती है। इसके अतिरिक्त अन्य जो नारी पात्र होते हैं उनकी भी नाटक में उचित एवं उपयोगी स्थिति होती है। नाटकादि रूपक में नायिका का ठीक उतना है जितना की नायक का नायिका का वर्गीकरण तीन प्रकार का होता है— नायक के साथ सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर, अवस्था के आधार पर, दशा के आधार पर।

सामान्यता नायिका को तीन प्रकार का माना गया है— स्वकीया, परकीया, साधारण स्त्री (अन्या)^४ अवस्था के अनुसार भी नायिका के तीन भेद है— मध्या, मुग्धा, प्रौढा (प्रगल्भा)^५ मध्या और प्रौढा के पुनः तीन—तीन आवस्थिक भेद बनते हैं— धीरा, अधीरा, धीरा—धीरा मध्या और प्रौढा (प्रगल्भा) के फिर ये ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा के रूप में भी वर्गीकृत किया जाता है। दशा के आधार पर नायिका के आठ भेद बनते हैं— स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डित। कलहान्तरित। विप्रलब्ध। प्रोषितपतिका, अभिसारिका। इसी प्रकार अन्य स्त्री पात्रों का स्वभाव एवं दशा के आधार पर वर्गीकरण किया है।

सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर नायिका

सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर भूत ने नायिका का त्रिभिद विभाजन किया है। वेश्या, कुलजा, कृतशौचा।^६ उनमें से कुछ आचार्यों ने भूत के मत को स्वीकार किया परन्तु कुछ ने भूत से भिन्न स्वमत प्रकट किया। इस परम्परा में सर्वप्रथम धनंजय है जिन्होंने नायिका को स्वकीया परकीया एवं गणिका के रूप में विभाजित किया भोज, शारदातनय विश्वनाथ आदि आचार्यों ने धनंजय द्वारा वर्गीकृत नायिका भेद परम्परा का निर्वाह किया।

स्वकीया — स्वकीया नायिका शील एवं आर्जव (सरलता) आदि गुणों से युक्त होती है एवं मुग्धा मध्या प्रगल्भा रूप से तीन प्रकार की होती है।^७ आचार्य भोज ने धनंजय के समान ही नायिका के भेद किये किन्तु भोज ने पुनर्भू नामक एक और भेद किया।^८ भोज के अनुसार स्वकीया नायिका वह होती है जिसका अन्य किसी से विवाह नहीं हुआ है अर्थात् स्वयं की विवाहित पत्नी स्वकीया होती है।^९ आचार्य विश्वनाथ के अनुसार स्वकीया नायिका विनय एवं आर्जव गुणों से युक्त ग्रहकार्य में तत्पर रहने वाली पतिव्रता स्त्री स्वीया होती है।^{१०} तात्पर्य यह है कि स्वकीया नायिका शील से युक्त पतिव्रता होती है। कुटिलता से सर्वथा विमुख लज्जा से युक्त नायक

की विवाहिता पत्नी सुख दुख में साथ रहने वाली तथा एकान्त में होने वाली रति क्रीडा को चाहने वाली होती है।

परकीया – जो किसी अन्य की हो अर्थात् जिस पर किसी अन्य का अधिकार होता है। वह परकीया नायिका कहलाती है। धनंजय आदि ने परकीया (अन्य स्त्री) दो तरह की हो सकती है। किसी की अविवाहिता पुत्री (कन्या) तथा दूसरे किसी व्यक्ति की परिणीता स्त्री¹¹ कन्या स्त्री अविवाहित होती है। वह पिता के अधीन होती है न तो नायक का इस कन्या पर कोई अधिकार होता है और न ही कन्या स्वयं स्वतन्त्र होती है। अन्योढा अन्य की विवाहिता पत्नी जो निश्चित रूप से परकीया होती है। वह अपनी इच्छा की स्वामिनी नहीं होती अपितु उस पर पति का अधिकार होता है। भोज के अनुसार अन्य की विवाहिता स्त्री¹² परकीया होती है। आचार्य विश्वनाथ ने परकीया के कन्या और परोढा दो भेद किये हैं¹³ पिता के अधीन रहने पर वह कन्या परकीया कहलाता है और जो स्त्री पति के अधीन रहे वह परोढा या परकीय कहलाता है।

साधारण स्त्री – आचार्य भरतमुनि ने नायिका का वेश्या नामक जो भेद किया है। परवर्ती आचार्यों ने उसे उसी रूप में स्वीकार करते हुये उसे साधारण या सामान्य नाम देकर सर्वज्ञ स्वीकार किया है। धनंजय ने साधारण स्त्री का लक्षण करते हुये कहा है कि यह गणिका होती है। जो कलाचातुर, प्रगल्भा तथा धूर्त होती है।¹⁴ शारदातनय ने कहा है कि साधारण स्त्री गणिका होती है जो वित्त की कामना करती है। निगुर्णी से द्वेष नहीं करती एवं गुणीजनों से अनुराग नहीं करती¹⁵ इन सभी लक्षणों में सामान्य बात यह है कि यह साधारण स्त्री कला, प्रगल्भा एवं धूर्तता से युक्त एवं अर्थकामा होती है।

अवस्था के आधार पर नायिका – आचार्य भरत के परवर्ती आचार्यों ने अवस्था के आधार पर नायिका के भेद प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः ये भेद अपने आप में स्वतन्त्र नहीं है। बल्कि नायक के सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर जो स्वकीया परकीया और साधारण स्त्री तीन भेद किये हैं। उनमें स्वकीया नायिका के भेद ही अंग स्वरूप है। अवस्था के आधार पर ही प्रत्येक स्त्री मुग्धा मध्या एवं प्रगल्या को प्राप्त होती है। धनंजय में सर्वप्रथम स्वकीय नायिका के मुग्धा, मध्या और प्रगल्या तीन भेद दसरूपक में प्रस्तुत किये हैं।

मुग्धा नायिका – धनंजय के अनुसार मुग्धा नायिका नवीन अवस्था वाली तथा जिसमें काम भावना से युक्त तथा रतिक्रीडा में प्रतिकूल एवं क्रोध करने पर भी कोमल स्वभाव वाली होती है।¹⁶ भोजदेव के अनुसार मुग्धा नायिका वय एवं एवं

कौशल से असम्भवपूर्ण है जिसमें न यौवन का प्रादर्भाव न हुआ हो तथा जिसका अवस्था भी नवीन है और उसमें रतिक्रीड़ा भी नवीन है।¹⁷ साहित्यदर्पण कार के अनुसार मुग्धा नायिका जिसमें यौवन तथा कामविकार का प्रथम उदय हुआ है। वह रतिक्रीड़ा में संकोच करती है। मान में मृदु हो तथा अधिक लज्जावान है। उपयुक्त लक्ष्यों से मुग्धा नायिका नवयौवना वाली होती है तथा उसमें प्रथम कामभाव भी जागृत होता है। रतिक्रीड़ा से कतराती है। अधिक लज्जावान होती है। क्रोध करने पर भी गुस्सा नहीं करती प्रिय के मनाने पर शीघ्र मान जाती है।

मध्या नायिका – मुग्धा नायिका यौवन से परिपूर्ण कामभावना की अधिकता रतिक्रीड़ा में प्रतीकूल न होकर चिरकाल तक रतिक्रीड़ा में समर्थ होती है। धनंजय के अनुसार मुग्धा जिसमें यौवन एवं काम का उदय हो रहा है तथा जो मोहावस्था तक रति में समर्थ हो¹⁸ भोज के अनुसार मध्या किञ्चित् चढ़ते यौवन से युक्त होती है।¹⁹ आचार्य विश्वनाथ मध्या नायिका का लक्षण देते हुये कहते हैं कि मध्या नायिका सुरत में विचित्र आरूढ़ होते हुये काम एवं यौवन से युक्त मन्द-मन्द चातुर्य वचन कहने वाली होती है। नाट्यशास्त्रियों की समालोचना से मध्या नायिका का स्वरूप समान सा प्रतीत होता है। वह काम यौवन में पूर्ण सामर्थ्य होती है तथा पूच्छर्षपर्यन्त रतिक्रीड़ा सहन कर सकती है।

प्रगल्भा नायिका – प्रगल्भा नायिका में यौवन का इतना संचार होता है कि वह यौवन में अन्धी हो जाती है, काम सम्बन्धी भाव की अधिकता में वह पागल सी हो जाती है, लोकलाज को त्याग देती है तथा प्रियतम के अंगों में ऐसे चिपक जाती है जैसे कि वह प्रियतम के अंगों में विलीन हो गई हो।²⁰ भोज देव के अनुसार प्रगल्भी नायिका रतिक्रीड़ा में पूर्ण निपुण होती है विश्वनाथ ने प्रगल्भा नायिका का लक्षण कुछ अधिक स्पष्ट किया है— काम में अन्धी सी, गाढयौवन से युक्त सभी प्रकार की रतिक्रीड़ाओं में निपुण भावप्रगल्भ हो स्वल्प लज्जा से युक्त हों एवं रतिक्रीड़ा में नायक का भी अतिक्रमण करने वाली हो।²¹ निष्कर्षतः प्रगल्भा नायिका गाढयौवन वाली कामोन्मत्त रतिक्रीड़ा में अत्यन्त निपुण व स्वल्पलज्जा से युक्त होती है। अवस्था के आधार पर नायिका के जो मध्या मुग्धा एवं प्रगल्भा भेद किये हैं, उनमें मुग्धा नायिका तो बड़ी ही सरल स्वभाव वाली होती है जबकि मध्या और प्रगल्भा प्रतिकूल चेष्टायें करती हैं। इन चेष्टाओं के कारण नाट्यशास्त्रियों के अनुसार धीरा, अधीरा, धीरा-धीरा भेद बनते हैं।

मध्याधीरा ताने के साथ अपराधी प्रियतम को फटकारती है। उसे वक्रोक्ति युक्त उलाहना देती है। भोजदेव के अनुसार मध्याधीरा काल को सहन न करने वाली होती है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार मध्याधीरा क्रोध से परिहासपूर्वक वक्रोक्ति

से प्रिय को पीड़ित करती है।²² आचार्य धनंजय के अनुसार कोप से युक्त होकर आंसू बहाते हुये कठोर शब्दबाणों के द्वारा प्रियतम को फटकारती है। वह मध्याधीरा नायिका होती है।²³ भोज के अनुसार काल में विलम्ब को सहन न करने वाली अधीरा नायिका कहलाती है।²⁴ विश्वनाथ ने मध्याधीरा को क्रोध को क्रोध से परिहास पूर्व वक्रोक्ति प्रिय को पीड़ित करने वाली बताया है।²⁵ मध्याधीरा धीरा व होती है जो अश्रु बहाते हुये एवं वक्रोक्ति युक्त तीनों से पति को प्रताड़ित करती रहती है। विश्वनाथ ने इसे थोड़ा अलग रूप में प्रस्तुत किया है – मध्याधीराधीरा रोदन से प्रिय को नाराज रखती है यह दशरूपककार से भी साम्य रखता है।

प्रगल्भा धीरा आकार के संवरण तथा आदर प्रदर्शित सहित व्यवहार करती है। रति में कोप के कारण उदासीन रहती है तात्पर्य है कि उसका पति यदि अपराध कर दे तो रति के प्रति उदासीन हो जाती है तथा अपने अन्दर के कोपादि भावों को छुपाकर पति के प्रति आदरभाव दिखाती है। विश्वनाथ के अनुसार प्रगल्भा धीरा अपने नाराज होने के भावों को प्रदर्शित न करते हुये अन्य बातों में आदर का भाव दिखाती है।²⁶ जबकि प्रगल्भा अधीरा की सभी क्रियायें प्रगल्भा धीरा के विपरीत होती है जो कि क्रोधपूर्वक पति को फटकारती है। यहाँ तक कि गुस्से में पति को पीट भी देती है। प्रगल्भा धीरा नायिका पति को डाँटती फटकारती है पीटती भी है।²⁷ प्रगल्भा धीरा-धीरा मध्याधीरा के समान लक्षणों वाली होती है तथा प्रगल्भा धीरा-धीरा की कोप चेष्टायें आदि मध्याधीरा के समान ही होती है तथा वह अपने पति को व्यंग्य भरे वचनों से खिजाती रहती है। अर्थात् प्रगल्भा धीरा-धीरा नायिका कभी प्रियतम को अपराध के समय कृत्रिम विनय के द्वारा कभी कोप के द्वारा कभी अश्रुपूर्वक ताने एवं कठोर वचनों से खिजाती रहती है।

इसके साथ ही मध्या तथा प्रगल्भा के तीन-तीन भेदों को फिर से ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा रूप में वर्गीकृत किया जाता है ज्येष्ठा नायिका नायक की पहली पत्नी तथा कनिष्ठा नायिका नायक की अभिनव प्रयेसी। इस प्रकार मध्या के 6 भेद प्रगल्भा के 6 भेद तथा मुग्धा नायिका केवल एक ही तरह की होती है।

दशा के आधार पर नायिका- आचार्य भरत ने अवस्था भेद से आठ प्रकार की नायिकाओं को उल्लेख किया है। प्रेम, विरही भाव, उपेक्षा, अनादर, त्यागना आदि के आधार पर इन भेदों की परिकल्पना की है। स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरोत्काष्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता विप्रलब्ध प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका।

स्व.अधीन अर्थात् जिसका पति अन्य किसी स्त्री के प्रति अधीन नहीं होकर स्वयं अधीन हो वह स्वाधीनपतिका नायिका कहलाती है।²⁸ स्वाधीनपतिका से थोड़ा अलग

परन्तु क्रीडा के प्रति स्वयं को एवं निवास को सुशोभित करने वाली वासकसज्जा है। विश्वनाथ ने इसे इस प्रकार कहा है। सुन्दर निवास में सखी जिसकी भूषित करती है प्रिय समागम को जिसे निश्चय हो²⁹ प्रिय समागम की तीव्र इच्छावाली कार्यो में व्यस्त प्रियतम के विलम्ब से अत्यधिक व्याकुल नायिका विरहोत्काष्ठिता कहलाती है। भरत के अनुसार अनेक कार्यो में व्यस्त रहने के कारण जिसका प्रिय नहीं आता उसके दुख से व्याकुल नायिका विरहोत्कारिता कहलाती है।³⁰ जिसका प्यार खण्डित हो गया है। वह नायिका खण्डिता कहलाती है। धनंजय ने खण्डिता के बारे में लिखा है। नायक को अन्य नायक के आसंग से चिन्हित जान लेने पर जो ईर्ष्या से चिढ़ती है।³¹ ईर्ष्या एवं कलह के कारण दूर गया हुआ जिसका प्रिय वापिस नहीं आता वह कलहान्तरिता होती है। विश्वनाथ ने इसके बारे में कहा है कि जो गुस्से के कारण पहले तो निवेदन करने वाले प्रियतम का अनादर कर दे और बाद में पश्चात करें।³²

प्रियतम के दिए हुए समय पर ना आने पर अपमानित होने वाली प्रिलबधा नायिका कहलाती है।³⁴ प्रिय संकेत करके भी उसके समीप ना आये वह नितान्त अपनामित नायिका विप्रलब्धित होती है।³⁴

प्रेषितपतिका : जिसका पति उससे दूर हो अर्थात् जिसका पति आवश्यक कार्य हेतु उससे दूर हो वह प्रेषितपतिका कहलाती है। धनंजय ने कहा है जो कामभावना से पीड़ित होकर अपने प्रियतम के पास स्वयं जाती है या उसे पास बुलाती है वह अभिसारिका कहलाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दशरूपक 1/7
2. वही
3. नाट्यशास्त्र 22/97
4. दशरूपक 2/15
5. वही 2/15
6. नाट्यशास्त्र 24/24-25
7. दशरूपक 2/15
8. शृंगारप्रकाश पृ. 613 भोज
9. वही पृ. 1170
10. साहित्यदर्पण 357
11. दशरूपक 2/20
12. शृंगारप्रकाश पृ 1167
13. साहित्यदर्पण 6/7

14. दशरूपक 2/21
15. भावप्रकाश 4/95, 17-18
16. दशरूपक 2/16
17. सरस्वतीकण्ठाभरणम् पृ. 315
18. दशरूपक 2/16
19. शृंगारप्रकाश पृ. 615
20. दशरूपक 2/18
21. साहित्यदर्पण 3/60
22. साहित्यदर्पण 3/61
23. दशरूपक 2/17
24. शृंगारप्रकाश पृ 169
25. साहित्यदर्पण 3/61
26. वही 3/62-63

उपभोक्ता संरक्षण व पर्यावरण संतुलन गांधी चिंतन में

एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था वाले देश का प्रत्येक व्यक्ति एक उपभोक्ता होता है तथा एक वस्तु का उत्पादक, वितरक और क्रेता भी किसी न किसी रूप में उपभोक्ता की श्रेणी में आता है। उपभोक्ता का स्थान सर्वोपरि व सार्वभौमिक होता है बाजार में माल उसी की मांग पर निर्मित होता है अर्थात् उपभोक्ता को राजा माना गया है यहाँ तक कि ग्राहक को देवता समान भी माना गया है किन्तु ये सिद्धांत मात्र व्यवसाय के मार्गदर्शक को देवता समान भी माना गया है किन्तु ये सिद्धांत मात्र व्यवसाय के मार्गदर्शक व सैद्धांतिक है जो एक अच्छे व्यापार के लिए आवश्यक तो है किन्तु व्यावहारिक नहीं, क्योंकि हर व्यक्ति कहीं न कहीं ठगी, धोखा-धड़ी, मिलावटी अमानक, अल्पगुणवत्ता वाली वस्तु खरीदने का शिकार होता है और अपनी किस्मत को कोसता है। समाज में इस स्थिति का कारण अधिकारों की जानकारी का अभाव व शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस नहीं होना है। उपभोक्ता संरक्षण उतना ही पुराना है जितना की व्यापार व वाणिज्य, क्योंकि अर्थशास्त्र के लेखक व मान् विचारक कौटिल्य ने भी अपने ग्रंथ में इसका उल्लेख किया है कि उद्योगपतियों द्वारा मिलावट, कम तोल, ठगी जैसी समस्याएँ उस समय भी विद्यमान थीं और उनके दण्ड का भी प्रावधान था। किन्तु आम अवधारणा में उपभोक्ता ही यह तय करता है क्या निर्माण हो, उसका मूल्य क्या हो, उसकी आपूर्ति किस प्रकार की जाए फिर भी उपभोक्ता जब भी ठगी व धोखे का शिकार होता है और वह कुछ नहीं कर पाता, कारण वह शक्तिशाली और साधन सम्पन्न व्यापारियों के सामने टिक नहीं पाता। या उस समय ठगी व धोखे का इतना प्रचलन नहीं था कुछ ही मामलों में यह स्थिति बनती थी जिनका निस्तारण तत्काल कर दिया जाता था।

आजकल मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण व निजीकरण का बोलबाला है तथा वह रोक व नियंत्रण से मुक्त है लाभ कमाने की दौड़ में वह कोई भी कार्य करने को तत्पर है। उपभोक्ताओं का ध्यान रखे बिना, आज बाजार उपभोक्ताओं के अनुसार नहीं अपितु उपभोक्ता बाजार के अनुसार चलते हैं अतः अनेक उपभोक्ताओं के

लिए अधिकारों का संरक्षण कोई महत्व नहीं रखता है वे उभरते बाजार का स्वागत करते हैं और उन्हें जो वस्तु दी जाती है उसे लेकर बिना विचारे उपयोग करते हैं। यद्यपि इसके अपवाद हो सकते हैं जिन्हें उपभोक्ता अधिकारों का पता नहीं इनमें अशिक्षित व उच्चतर शिक्षित लोग भी शामिल हैं।

उपभोक्ता संरक्षण विधेयक 1986 खास तौर पर उपभोक्ता अधिकारों और हितों के बेहतर संरक्षण के लिए भारतीय संसद द्वारा पारित सर्वाधिक प्रगतिशील व्यापक और अनूठे कानूनों में से एक है ओर अगर कुछ लोगों को इन अधिकारों का ज्ञान भी है तो भी कई लोग अनेक अंतर्निहित कारणों और सीमाओं के कारण उनका सही उपयोग करने से डरते हैं।¹ आज उपभोक्ता अधिकारों के संरक्षण की समस्याएं निरन्तर बढ़ती जा रही हैं और आर्थिक, सामाजिक राजनीति सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक व्यवधान के साथ स्वास्थ्य व पर्यावरण की दृष्टि से भी खतरा उठाने का हम बाध्य हैं बाजार में निपुण लोगों के माध्यम से उपभोक्ताओं के अधिकारों के हनन का पूरा प्रयास संरक्षण हेतु बने कानून को निष्क्रिय गैर जागरूक व निरर्थक बना देते हैं। ऐसे में लोकतांत्रिक कल्याणकारी सरकार भी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा के लिए उसे जमीनी स्तर पर सक्रिय ढंग से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। यह केवल मात्र घोषणा से बदलाव नहीं होने वाला और वास्तव में ऐसा कुछ नहीं हो रहा क्योंकि बाजार में आज इन अधिकारों का उल्लंघन आम हो गया है।

पाश्चात्य सभ्यता के दुष्प्रभाव, विज्ञान, अनैकितता एवं आदर्श मूल्यों के ह्रास के परिणामस्वरूप व्यापारी रातों रात अमीर बनने की लालसा रखता है भौतिक युग ने इसमें और अभिवृद्धि की है पाश्चात्य संगीत रहन-सहन, खान-पान, सभ्यता, संस्कृति व झूठी शान-शौकत की अभिवृद्धि के कारण मानव की आर्थिक आवश्यकताएँ असीमित रूप से बढ़ी हैं जिससे भ्रष्टाचार, ठगी मिलावट, धोखे को बढ़ावा मिला है आज मिलावट हर वस्तु का अनिवार्य भाग बन चुकी है और मिलावट करते-करते व्यक्ति भी अच्छे-बुरे का मिश्रण हो गया है। आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहाँ उपभोक्ता, प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष शोषण से मुक्त हो जैसे- शिक्षा, भवन निर्माण, डाक, चिकित्सा, भोजन। उपभोक्ता को विज्ञापन ने भ्रमित किया जिससे वे लालायित होते हैं- जैसे एक के साथ एक फ्री, पुरानी के बदले नई, बाई टू फॉर टू फ्री, नहाने के साबुन में सोने का सिक्का, चाय की पैकिंग में डायमण्ड, बाउल, गिलास, टी.वी, फ्रिज, ए.सी, कूलर, मोबाइल आदि कई इनामों का प्रलोभन दिया जाने लगा जिससे उपभोक्ता ठगे जाते रहे हैं। उदारीकरण, भौतिकवादी व सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में उपभोक्ताओं

को उनके अधिकारों की रक्षा व संरक्षण हेतु जागरूक बनाने के साथ समाज में ईमानदारी नैतिकता व मूल्य आधारित वातावरण सृजित करने की नितांत आवश्यक है। गांधीजी के उस कथन की वर्तमान परिस्थितियों में बाजार वालों को ध्यान देना प्रासंगिक है। गांधीजी ने कहा— “ग्राहक हमारी दुकान में आने वाले सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति है। वह हम पर निर्भर सही है हम उस पर निर्भर है। वह हमारे व्यापार से बाहर का व्यक्ति नहीं है। वह उसका हिस्सा है। उसकी सेवा करके हम उस पर कोढ़ एहसान नहीं कर रहें। ऐसा अवसर देकर वह हम पर एहसान कर रहा है।² किन्तु वर्तमान परिपेक्ष में आर्थिक नीति की गलत व्याख्या कर उसको विकृत बना दिया गया इसके लिए बाजार निर्माता उत्तरदायी है उससे कहीं ज्यादा स्वयं उपभोक्ता है क्योंकि यह सब कुछ उनकी गैर जागरूकता के कारण हुआ है यहां यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसा नहीं है हमारे यहाँ नियम कानून नहीं है लेकिन व्यवस्था की कमजोरियों और सीमाओं या निर्बल शासन के कारण इनको शायद ही कभी लागू किया जाता है। नियमकों की इसी कमजोर नीति के कारण व्यापारियों को पर्याप्त मिल जाता है और वे तमाम गलत व अन्यायपूर्ण कार्य और करोबार करते रहते हैं और बिना किसी दण्ड के आसानी से कानून से बच निकलते हैं।

यद्यपि उपभोक्ता संरक्षण अर्थव्यवस्था का सिद्धांत है किन्तु अर्थ व्यवस्था आज के युग में भोगवादी संस्कृति का दुष्परिणाम है और इसी भोगवादी नीति के कारण संपूर्ण विश्व को मानव वे विनाश की ओर अग्रसर बना दिया है। ऐसे में गांधीजी के आर्थिक सिद्धांत व मानव अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता स्वाभाविक है जिससे उपभोक्ता संरक्षण व पर्यावरण संतुलन की सम्भावनाएं प्रबल हो जाती है। गांधीजी के मूल आर्थिक सिद्धांत जिनसे उक्त समस्याएँ हल हो सकती है और एक स्वस्थ, सुव्यवस्थित व शोषण मुक्त समाज का निर्माण संभव हैं।

गांधी के आर्थिक दर्शन के मूल सिद्धांत

स्वराज्य— ‘स्वराज्य’ एक पवित्र शब्द है, वह एक वैदिक शब्द, जिसका अर्थ आत्म शासन और आत्मसंयम है। अंग्रेजी शब्द ‘इंडिपेन्डेन्स’ अकसर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी का या स्वच्छंदता का अर्थ देता है, वह अर्थ— स्वराज्य शब्द में नहीं है।³ स्वराज्य स्वतंत्रता का उद्देश्य था स्वराज्य में ऐसा समाज जहां सबसे निर्धन की सुनवाई हो, कोई उंचा नीचा ना हो, पूर्ण सोहार्द्र हो, अश्रुपृथ्यता और नशीले पदार्थों का कोई स्थान न हो, व महिला — पुरुष को समान अधिकार प्राप्त हो।

गांधीजी ने कहा “स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपभोग राजा और अमीर लोग करते हैं,

वही आपको भी सुलभ होनी चाहिए, इसमें किसी फर्क के लिए स्थान नहीं हो सकता। लेकिन इसका अर्थ नहीं कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नहीं। हमें महलों में रख दिया जाये तो हम घबड़ा जायें। लेकिन आपको जीवन की वे सभी सामान्य सुविधायें अवश्य मिलनी चाहिए, जिनका उपभोग अमीर आदमी करता है। मुझे इस बात में बिल्कुल संदेह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा, जब तक वह आपको ये सारी सुविधायें देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता।⁴ अतः जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति स्त्री व पुरुष सभी को समान रूप से उपलब्ध हों।

आज अधिकार व कर्तव्य का संघर्ष व्याप्त है हर कोई अधिकार पर बल देता है किन्तु कर्तव्य को सदैव भूला दिया जाता है। गांधी जी ने कहा – किसी राष्ट्रीय समाज के स्वराज्य का अर्थ उस समाज के विभिन्न व्यक्तियों के स्वराज्य (आत्म शासन) का योग ही है। ओर ऐसा स्वराज्य व्यक्तियों के द्वारा नागरिकों के रूप में अपने कर्तव्य पालन से ही आता है। उसमें कोई अपने अधिकारों की बात नहीं सोचना। जब उनकी आवश्यकता होती है, तब वे उन्हें अपने आप मिल जाते हैं और इसलिए मिलते हैं कि वे अपने कर्तव्य का संपादन ज्यादा अच्छी तरह कर सकें।⁵ अर्थात् स्वराज्य में कर्तव्य की धारणा व्यापारियों को और उपभोक्ताओं दोनों को आत्म संयम की प्रेरणा देगी जिससे दोनों का कल्याण व सामाजिक हित निहित है। अतः हमें कोई कार्य करने से पूर्व सबसे निर्धन और निर्बल व्यक्ति का ध्यान कर यह सोचना चाहिए कि हमारे इस कार्य से उसको कितना लाभ मिलेगा। भूखे और संतप्त लोगों को फायदा मिल पायेगा, यदि नहीं तो हमें यह कार्य नहीं करना चाहिए।

ग्राम स्वराज्य – ग्राम स्वराज्य के बारे में गांधीजी का कहना था कि यह ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोस पर भी निर्भर नहीं करेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले।⁶ सच तो यह है कि हमें गांववाला भारत और शहरों वाला भारत, दोनों में से एक को चुन लेना है। गांव उतने ही पुराने हैं जितना भारत। शहरों को विदेशी आधिपत्य ने बनाया है। जब यह आधिपत्य मिट जायेगा, तब शहरों को गांवों को विदेशी अधिपत्य ने बनाया है। जब यह अधिपत्य मिट जोयगा, तब शहरों को गांवों के मातहत होकर रहना पड़ेगा।⁷ आगे गांधीजी ने कहा जिंदली की ऐसी कोई चीज न होगी जो गांवों में न मिले। आज हमारे देहात उजड़े हुए और

कूड़े-कचरे के ढेरबन गये हैं। कल वहां सुन्दर बगीचे होंगे और ग्राम वासियों को ठगना या उनका शोषण करना असंभव हो जायेगा। इस तरह के गांवों की पुनर्चना का काम आज से ही शुरू हो जाना चाहिए और गांवों की पुनर्चना का यह काम कामचलाऊ नहीं, बल्कि स्थायी होना चाहिए।⁸ अतः शोषण व ठगी से निजात प्राप्त करने हेतु कुछ हद तक ग्राम स्वराज्य की नीति का प्रयोग किया जा सकता किन्तु इसके लिए लोगों की चेतन शक्ति का जाग्रत होना आवश्यक है।

शहरीकरण की शोषण नीति और गांवों के बाजारीकरण हेतु गांधीजी ने कहा— शहरों द्वारा ग्रामीणों का शोषण और उनकी संपत्ति का हरण हो रहा है मेरी योजना के अंतर्गत ऐसी कोई चीज शहरों द्वारा नहीं बनाने दी जायेगी जो उतनी ही अच्छी तरह गांवों में बनायी जा सकती हो। शहरों का सही उपयोग यह है कि वे गांवों में बनी हुई चीजों के निकास के केन्द्र हों। गांवों को निश्चित रूप से स्वावलंबी बनना चाहिए। अगर हमें अहिंसा की दृष्टि से काम करना हो, तो इसके सिवा मैं उसका कोई हल नहीं देखता।⁹ अतः उपभोक्ता संरक्षण तभी संभव है जब व्यापारी द्वारा व्यापार नीति का नैतिक व आध्यात्मिक सोच से संचालन हो, लाभ का उद्देश्य कम हो।

उद्योगवाद— यदि आवश्यकतानुसार उद्योगों की स्थापना हो तो उपभोक्ता के अनुकूल है किन्तु यदि अनावश्यक रूप से उद्योगों की निरन्तर वृद्धि हो तो विकास से अधिक विनाश और शोषण की संभावना अधिक प्रबल होती है जैसा कि गांधी ने कहा — “जब उत्पादन और उपभोग, दोनों किसी सीमित क्षेत्र में होते हैं, तो उत्पादन को अनिश्चित हद तक और किसी भी मूल्य पर बढ़ाने का लोभ फिर नहीं रह जाता। उस हालात में हमारी मौजूदा अर्थ व्यवस्था से जो अनेक कठिनाइयां और समस्याएं पैदा होती हैं वे भी नहीं रह जायेगी।¹⁰ उन्होंने और स्पष्ट बताया कि बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि ज्यों-ज्यों प्रतिस्पर्धा और बाजार की समस्याएं खड़ी होगी त्यों-त्यों गांवों का प्रगट या अप्रगट शोषण होगा। इसलिए हमें अपनी सारी शक्ति इसी प्रयत्न पर केन्द्रित करनी चाहिए कि गांव स्वयंपूर्ण बने और वस्तुओं का निर्माण और उत्पादन अपने उपयोग के लिए करें। यदि उत्पादन की यह पद्धति स्वीकार कर ली जाये तो फिर गांव वाले ऐसे आधुनिक यंत्रों और औजारों का, जिन्हें वे बना सकते हो और जिनका उपयोग उन्हें आर्थिक दृष्टि से पुसा सकता हो, उपभोग खुशी से करें। उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती अलबत्ता उनका उपयोग दूसरों का शोषण करने के लिए नहीं होना चाहिए।¹¹ गांधीजी ने मशीनों का इस शर्त पर समर्थन किया कि वे समाज

के श्रम व समय की बचत करें, किन्तु वे लोगों के हाथों का काम छीने और उन्हें बेरोजगार बना दे और उनके शोषण का आधार बने इस अर्थ में मशीनों के विरोधी थे वे मशीनों को शोषण व धन संचय का साधन नहीं बनने देना चाहते थे इसलिए उन्होंने कहा— पैसा आदमी को दीन (लाचार) बना देता है ऐसी दूसरी चीज दुनिया में विषयभोग है ये दोनों विषय विषमय है। उनका डंक सांप के डंक से ज्यादा जहरीला है। जब सांप काटता है तो हमारा शरीर लेकर हमें छोड़ देता है। जब पैसा या विषय काटता है तब वह शरीर, ज्ञान, मन सब कुछ ले लेता है तो भी हमारा छुटकारा नहीं होता। इसलिए हमारे देश में मिले कायम हों, इसमें खुश होने जैसा कुछ नहीं है।¹² अतः गांधीजी ने उद्योगवाद को एक अभिशाप बताया जो धन संचय की अनंत लालसा का आधार होता है, और अंधता की दौड़ में मानव मानव नहीं पशु से भी निम्न हो जाता है जिसे केवल अधिकाधिक लाभ कमाना अपना उद्देश्य दिखाई पड़ता है और इसके लिए साधन कोई भी हो, चाहे मानवता का विनाश हो या इस लोक के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह निरन्तर विवेक हीन असीम उद्देश्य की और दौड़ता रहता है जिसका कोई अंत नहीं होता।

शरीर श्रम — गांधीजी ने बताया— कि रोटी के लिए हर एक मनुष्य को मजदूरी करनी चाहिए, शरीर को झुकना चाहिए, यह ईश्वर का कानून है। अधिकारों की उत्पत्ति का सच्चा स्रोत कर्तव्यों का पालन है। यदि हम सब अपने कर्तव्यों का पालन करें, तो अधिकारों को ज्यादा ढूँढने की जरूरत नहीं रहेगी। लेकिन यदि हम कर्तव्यों को पूरा किये बिना अधिकारों के पीछे दौड़ें, तो यह मृग-मरीचिका के पीछे पड़ने जैसा ही व्यर्थसिद्ध होगा। जितने हम उनके पीछे जायेंगे उतने ही वे हमसे दूर हटते जायेंगे। यही शिक्षा कृष्ण ने दी 'तुम्हारा अधिकार कर्म में ही है, फल में कदापि नहीं। यहां कर्म कर्तव्य है और फल अधिकार।'¹³ ठीक यही बात आज सर्वाधिक प्रासंगिक है कि कर्तव्य करने से पहले फल का अधिक ध्यान रखा जाता है और यही फल आज लोभ लालच का प्रतीक बन गया है और शरीर श्रम से ज्यादा मानसिक परिश्रम का उपयोग किया जाता है कि किस तरह उपभोक्ताओं को अपनी और आकर्षित करें इसमें उचित-अनुचित नहीं देखा जाता।

गांधी जी ने कहा कि "यदि समाज का हर एक सदस्य अपनी शक्तियों का उपयोग वैयक्तिक स्वार्थ साधन के लिए नहीं, बल्कि सबसे कल्याण के लिए करें, तो क्या इससे समाज की समृद्धि में वृद्धि नहीं होगी? हम ऐसी जड़ समानता का निर्माण नहीं करना चाहते, जिसमें कोई आदमी योग्यताओं का पूरा-पूरा उपयोग कर

ही न सके। ऐसा समाज अंत में नष्ट हुए बिना रह सकता। इसलिए मेरी यह सलाह बिलकुल ठीक है कि धनवान लोग चाहे करोड़ों रूपये कमायें (बेशक ईमानदारी से) लेकिन उनका उद्देश्य वह सारा पैसा सबके कल्याण में समर्पित कर देने का होना चाहिए। “तेन त्यक्तेन भुंजीथा”¹⁴ समसामयिक जीवन के स्थान पर जिसमें हर व्यक्ति अपने पड़ोसी की चिंता किए बगैर मात्र अपने लिए ही जीता है, यदि सभी के कल्याण की नयी राह का संचालन करना हो तो एक यही मार्ग सर्वोत्तम प्रतीत होता है। जिसमें व्यक्ति की इच्छा का दमन भी नहीं होगा और समाज का कल्याण भी होता रहेगा। गांधीजी ने अपने जीवन के अनुभवों से भावी विश्व की रूप रेखा प्रस्तुत करने का अथक प्रयास किया किन्तु विकास की गलत सोच व व्याख्या के कारण आज हम ऐसे मोड़ पर खड़े हैं जहां कोई मार्ग प्रशस्त नहीं हो रहा, और यही सोचते, व कहते हैं ये तो होना ही था।

गांधी जी ने कहा— आखिर साधन तो साधन ही हैं, मैं कहूंगा, आखिर तो साधन ही सब कुछ है। जैसे साधन होंगे वैसा ही साध्य होगा। साधन और साध्य को अलग करने वाली कोई दीवार नहीं है। वास्तव में सृष्टिकर्ता ने हमें साधनों पर बहुत ‘सीमित नियंत्रण दिया है; साध्य पर तो कुछ भी नहीं। लक्ष्य की सिद्धि ठीक उतनी ही शुद्ध होती है, जितने हमारे साधन शुद्ध होते हैं।¹⁵ अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आज मूल समस्या साधन व साध्य है। कर्तव्य व अधिकार है और व्यापार व लाभ की है जिनके बीच में उपभोक्ता को पीसा जा रहा है और उसके संरक्षण का प्रयास किया जा रहा है, यह उतना ही कटु है जितना यह कहना कि आप एक बार उपयोग कीजिए बाद में हम देखते हैं, और इसी बाद के डर से उपभोक्ता वापस नहीं मुड़ता।

आज उपभोक्ता संरक्षण हेतु स्वयं उपभोक्ता भी जिम्मेदार हैं क्योंकि एक के साथ एक फ्री सब लेना चाहते हैं। किन्तु यही सोच उसके शोषण, ठगी का कारण बनती है अतः आज उपभोक्ता केवल भोक्ता बनकर रह गया है और इसी भोक्ता के कारण भोगवादी संस्कृति की वृद्धि हो रही है, जागरूकता व विवेक सम्मत उपभोग के अभाव में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया जा रहा है जिससे न केवल उपभोग का क्षरण हो रहा है अपितु प्राकृतिक पर्यावरण का संतुलन भी बिगड़ रहा है, अतः उपभोक्ता संरक्षण व पर्यावरण संतुलित करने हेतु गांधी चिंतन में विकल्प तलाशें तो समस्या समाधान संभव है यद्यपि गांधी जी के समय ये समस्याएं प्रकट नहीं थी किन्तु फिर भी मार्ग प्रशस्ति में सहयोग से इंकार नहीं किया जा सकता।

संदर्भ

1. योजना, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, फरवरी 2009, पृ. 6
2. योजना, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, फरवरी 2009, पृ. 7
3. महात्मा गांधी ग्राम स्वराज्य, गांधीजी, संग्राहक हरिप्रसाद व्यास, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, 1963, पृ. 3
4. महात्मा गांधी ग्राम स्वराज्य, गांधीजी, संग्राहक हरिप्रसाद व्यास, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, 1963, पृ. 3
5. हरिजन, 25.03.139, पृ. 65
6. मेरे सपनों का भारत संपादक—सिद्धराज ढड्डा, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, 1995 पृ. 32
7. मेरे सपनों का भारत, संपादक—सिद्धराज ढड्डा, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, 1995, पृ. 32
8. मेरे सपनों का भारत, संपादक—सिद्धराज ढड्डा, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, 1995, पृ. 35
9. मेरे सपनों का भारत, संपादक—सिद्धराज ढड्डा, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, 1995, पृ. 35

ऐतिहासिक लोहार्गल पर्यटकों का सिरमौर (झुन्झुनू)

भारत की राजधानी दिल्ली से 172 किमी. दूर पश्चिमी ओर शेखावाटी में झुन्झुनू एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। पश्चिमोत्तर पहाड़ी की भाटों और चारणों के अनुसार झुन्झुनू क्षेत्र पर 12वीं शताब्दी तलहटी में बसा यह नगर आज भी अपनी ऐतिहासिकता के लिये प्रसिद्ध है। झुन्झुनू में जोड़ राजपूतों का आधिपत्य था तथा उस समय इस स्थान को 'जोड़ी झुन्झुनू' कहते थे। सन् 1451 ई.पूर्व मुहम्मद खाँ ने झुन्झुनू नगर को सुव्यवस्थित ढंग से बसाया और वहीं अपनी नवाबी की स्थापना कर झुन्झुनू में अपनी राजधानी कायम की। मुहम्मद खाँ के पश्चात् झुन्झुनू में समस खाँ, फतह खाँ, मुबारक खाँ, कमाल खाँ, भीखन खाँ, मुहब्बत खाँ, बहारदुर खाँ, समसखाँ द्वितीय, सुलतान खाँ, वाहिद खाँ, सहादत खाँ, फाजिल खाँ और सहेल खाँ आदि तेरह नवाब हुये। रुहेल खाँ की मृत्यु के पश्चात् 1730 ई. में शार्दुलसिंह झुन्झुनू के शासक बने। झुन्झुनू की प्राचीनता का उल्लेख जैन ग्रन्थों से भी मिलता है।

यहाँ रूपगढ़, जोरावरगढ़ तथा अखैगढ़ व बादलगढ़ के प्रसिद्ध किले हैं। खेतड़ी महल, बहादुर सिंह की छतरी, नेहरु उद्यान, माँजी समसताला, बेमाजी मेडतानी जी की बावड़ी, शक्तिपीठ, सेठ मोतीलाल महाविद्यालय आदि दर्शनीक स्थान हैं। राजपूताना राइफल्स के प्रशिक्षण केन्द्र की जन्मभूमि झुन्झुनू शहर ही है। शेखावत काल में 200 वर्षों में झुन्झुनू तथा उसके आसपास बड़ी संख्या में मंदिरों का निर्माण हुआ। झुन्झुनू में 155 मंदिर और देवरे हैं जिनमें आधे से अधिक हनुमानजी के मंदिर हैं। जिस स्थान पर कुंआ है वहाँ हनुमान जी का देवरा अवश्य है। झुन्झुनू शहर के विशेष उल्लेखनीय मंदिरों में गोपीनाथजी मंदिर, जैन बिहारीजी का मंदिर, बड़ा मंदिर, नेपालियों का मंदिर, लक्ष्मी जी का मंदिर, राधाकृष्ण जी का मंदिर, कल्याण जी का मंदिर, राणी सती का मंदिर, मनसा देवी का मंदिर, बालाजी का मंदिर, पंचदेव का मंदिर, रूपा सती का मंदिर और लाखटा शिव जी आदि के मंदिर हैं। स्वामी वैक्टेस और गिरी श्रृंखला पर अवस्थित मनसा देवी का मंदिर है जिसका स्थापत्य, निर्माण शैली के विकासमान स्तर का प्रतिनिधित्व करता है। समस तालाब पर शेखावतों की ईष्टदेवी दुर्गा माता

का मंदिर है जो जम्वाई माता के नाम से प्रसिद्ध है। हकीम युसुफ झुन्झुनूवी से प्राप्त जानकारी के आधार पर नवाबों के काल में बनी मस्जिदों में झुन्झुनू में स्थापत्य की दृष्टि से एलेहअदीसो की मस्जिद, तारकीन की मस्जिद, रजिया मस्जिद एवं मस्जिद नाराशाह प्रमुख है। साथ ही यहाँ कमरुद्दीन शाह की दरगाह भी प्रसिद्ध है।

शेखावाटी प्रदेश के झुन्झुनू नगर से 70 किमी. दूर उदयपुरवाटी से ठीक दक्षिण से 16 किमी. दूर व झुन्झुनू के चिराना गाँव से 5 किमी. पर नवलगढ़ पंचायत समिति का लोहार्गल ग्राम महाभारत कालीन संदर्भों से जुड़ा है। प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण इस लोकतीर्थ का धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्व है। 'स्कन्द पुराण' एवं 'वराह पुराण' में भी इस स्थली का तीर्थ रूप में उल्लेख मिलता है। साथ ही इसके सम्बन्ध में अनेक अर्न्तकथाएँ एवं किवंदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि महर्षि परशुराम जी ने अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये यहाँ पर वैष्णव यज्ञ कराया था जिसमें इन्द्रादि देवता और ऋषिमुनिजन वशिष्ठादि आये थे और इस तीर्थ की रमणीयता तथा यहाँ के शांत, स्निग्ध परिवेश से प्रभावित होकर माल क्षेत्र पर्वत के शिखरों पर चिरकाल पर्यन्त तपस्या करते रहे। किवंदन्ति है कि अरावली पर्वत श्रेणियों के मध्य अवस्थित इस लोकतीर्थ में महाभारत काल में पांडव भी आये थे और उन्होंने यहाँ पवित्र जल में स्नान किया था जिससे उनके लोहे के शस्त्र गल गये थे। शायद यही कारण है कि इस तीर्थ को लोहार्गल कहा गया है। यह भी कहावत प्रचलित है कि यहाँ किये गये स्नान में पांडवों को महाभारत युद्ध में की गई हत्याओं से मुक्ति मिली थी। 'वराह-पुराण' में कहा गया है कि लोहे की अर्गला की भाँति पर्वत श्रेणी इस तीर्थ को रोके हुये है। इस तीर्थस्थल के लोहार्गल शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में बताया जाता है कि लोह का आर्गला की भाँति यह तीर्थ हृदय में पापों को नहीं पनपने देता है 'हेमाद्रि संकल्प' में भी चतुर्दस गुप्त तीर्था में इस तीर्थ को स्थान दिया गया है। तीर्थ के प्रवेश द्वार की ओर चेतनदास की बावड़ी और राधारमण का विशाल मंदिर है। प्रचलित है कि चेतनदास जी के आने से पूर्व वनखंडी साधुओं का यहाँ निवास था और उन्हें ईश्वरोपासना के कारण भैरव की सिद्धि प्राप्त थी। यह भी कहा जाता है कि चेतनदास ने बावड़ी खुदवाने से पूर्व उनसे अनुमति प्राप्त नहीं कि जिसके कारण दिन में जैसे-जैसे बावड़ी की खुदाई की जाती, रात को वैसे-वैसे भूमि से मिट्टी भरती जाती और यह क्रम कई दिनों तक चला। बाद में चेतनदास जी को भूल का अहसास हुआ और उन्होंने शिखर पर वनखण्डी के नाम से छतरी का निर्माण करवाया और फिर बावड़ी में रुकावट नहीं आई।

लोहार्गल में तानवाणी का रमणीय स्थल भी है जहाँ ब्रह्मकुण्ड है और जिसकी महिमा लोहार्गल महात्म्य से जुड़ी है। इस जलाशय का ऊपर का पेड़ न केवल प्राचीन

है, बल्कि गुफाओं के कारण दर्शनीय भी।

तीर्थ क्षेत्र में 'मालखेत' एवं 'वनखंडी स्थल' यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र है। 'चार सम्प्रदाय जी का मंदिर', 'वराह मंदिर', 'सूर्य मंदिर एवं सूर्यकुण्ड', 'वशिष्ठ कुण्ड' आदि ऐसे स्थल है जिनसे यहाँ के ऋषियों का कोई न कोई सम्बन्ध अथवा प्रसंग जुड़ा हुआ है।

लोहार्गल तीर्थ में चारों ओर चौबीस कोसी परिक्रमा का भी विशेष महत्व है। पैदल यात्रा के दौरान यात्री 'शाकम्भरी', 'किरोड़ी', 'रघुनाथगढ़', 'खोरी कुण्ड', 'नीमड़ी की घाटी', 'कालाचारी' और 'कोट' आदि स्थलो को भी देखते हैं। लोहार्गल कुण्ड के पार्श्व में भरोड़ ग्राम और दूसरी ओर 'मालखेत पर्वत का मंदिर' है। कुण्ड पर दो छोटे मंदिर बने हैं और दोनों ओर से ही जल प्रवाहित है किन्तु अभी तक जल के स्रोत का पता नहीं चला है।²

'चिराना ग्राम' अपनी प्राचीनता के कारण झुन्डुनूं जिले में पहचान रखता है। यहाँ प्रचलित किंवदन्ति के अनुसार इसे चिमन ऋषि ने बसाया था और उसी के नाम पर कालान्तर में इस ग्राम को चिराना कहा गया।

इस ऐतिहासिक ग्राम में पहाड़ी पर गढ़ बना हुआ है जिसमें पानी के दो टांके हैं। कहा जाता है कि इन टांकों के पानी से पेट की पथरी कट जाती है। पहाड़ी पर एक शिवालय और हनुमान जी का मंदिर है। ग्राम के आस-पास के आध्यात्मिक परिवेश के कारण यहाँ पदयात्रियों और इन तीर्थों के मेलों पर मेलार्थियों का ताता सा लगा रहता है।

चिराना ग्राम से 2 किमी. पर 'किरोड़ी ग्राम' है। यहाँ पानी के तीन कुण्ड है जिनमें एक कुण्ड का पानी सदैव गर्म रहता है। इस वनस्थली में पर्वत की सर्वाधि तक ऊँची स्थली को वनखण्डी के नाम से प्रसिद्धि मिली है। वनखण्डी में देवालय व पांडव गुफा भी है। कहा जाता है कि जब पांडव इस तीर्थ स्थान पर आये तो पाण्डव गुफा में रहे थे। गुफा के पास ही 400 सीढ़ियों की चढ़ाई के बाद 'मालकेतू देवालय' भी स्थित है।

लोहार्गल में प्रतिवर्ष भाद्रपद अमावस्या को एक विशाल मेला भरता है जिसमें हजारों पर्यटन, दर्शनार्थी एवं श्रद्धालु स्नान कर पुण्य कमाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मास की पूर्णिमा, चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण के समय में भक्तजन आते हैं और पवित्र कुण्ड में स्नान करते हैं।

वर्तमान में यह शक्तिपीठ नाथ सम्प्रदाय (गोरखनाथ) की गद्दी है। यहाँ का महन्त आजीवन अविवाहित रहता है। मध्यकाल में, महाराज हर्षवर्धन के राज्य

काल में यहाँ वाम मार्गियों का प्रभुत्व रहा है। परन्तु अब पशुबलि मांस व मदिरा का सेवन निषिद्ध है। मंदिर में प्रातःकाल व सांयकाल आरती होती है; भक्तजन सीरा-पूड़ी व सूसबा का भोग लगाते हैं।

चैत्र व आसोज की नवरात्री के समय यहाँ विशाल लक्खी मेला भरता है। पौष शुक्ला की पूर्णिमा को सकराय जयन्ती भी मनाई जाती है। गोगा नवमी को लोहार्गल सूर्य कुण्ड में स्नान करने के बाद यह शुरु होती है जो अमावस्या को वापस लोहार्गल में पूरी होती है। पहला पड़ाव चिराना गाँव में होता है। अगली सुबह किरोड़ी में स्नान कर शाकम्भरी पहुँचते हैं जहाँ दूसरा पड़ाव होता है।

यहाँ के नागकुण्ड, भगोवा होते हुये 12 तिबारा पहुँचते हैं और यहीं तीसरा पड़ाव होता है। यहाँ से टपकेश्वर, खाटवी अखाड़ा होते हुये नीमड़ी की घाटी चढ़ने के बाद रघुनाथगढ़ की नदी में चौथा पड़ाव करते हैं, यहाँ से श्रद्धालु लोहार्गल के लिये प्रस्थान करते हैं जहाँ परिक्रमा सम्पन्न होती है।³ इस प्रकार लोहार्गल पर्यटकों का सिरमौर है।⁴

संदर्भ

1. टी.सी. प्रकाश; शेखावाटी वैभव, झुन्झुनू, 1993, पृ.44
2. राम पाण्डे; राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, जयपुर, 2000, पृ. 24
3. तारादत्त निर्विरोध; शेखावाटी (सांस्कृतिक इतिहास के विविध आयाम), जयपुर, 1988

लोक सृजित चित्रपट्ट: कावड़

लोक स्पन्दन जब तक स्मृति में है तब तक तो लोक तत्व की क्रियाशीलता और तज्जन्य आनन्द से सराबोर हुआ जा सकता है। लेकिन स्मृति से ये चीजें उतर जायेंगी तो उनका अनुभव दूधर हो जाएगा।¹ लोक कला जन मानस विशेषतः ग्रामीण जनों की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है।² यह भी कह सकते हैं कि जन साधारण ने परम्परागत रीति से स्थानीय सामग्री के द्वारा, देशी औजारों की सहायता से अपने खुद हाथों से जो सुन्दर, सौन्दर्यपूर्ण वस्तुएं तथा सामग्रियां लोकोपयोग के लिए बनायी है, उस सबका समावेश लोक कलाओं में होता है।³ लोक मानस कला को जिस रूप में देखना चाहता है। वही लोक कला रूपों का विकसित और परिष्कृत स्वरूप है।

मेवाड़ में छोटे-छोटे कपाट चित्रित कर उन्हें इस प्रकार से सृजित किया गया है कि एक मन्दिर की भांति निर्मित हो जाता है। कई चित्र पट्ट (किवाड़ों) से बनाया जाने के कारण इसे कावड़ कहा जाता है।⁴

ऐसा काष्ठ का बना मन्दिर जो स्थापत्य, चित्र और काव्य की तीनों ही कलाओं का समन्वय स्वरूप लिये हुए एक सुन्दर कृति के रूप में स्थापित है उसे “कावड़” कहते हैं।⁵ कावड़ एक चलित देवल (मन्दिर) है, इसका निर्माण कोटा रोड़ पर चित्तौड़ से 24 किलोमीटर दूरी पर स्थित बस्सी ग्राम में खेरादी परिवार करते हैं।

यह सम्पूर्ण लकड़ी की बनी होती है। इसके निर्माण हेतु मुख्यतः दखणी नीम, सेमल और सालर वृक्ष की ही लकड़ी का प्रयोग करते हैं। क्योंकि ये लकड़ियां वजन में हल्की होती हैं ताकि कावड़ को इधर- उधर लाने-ले जाने में, उठाने रखने में किसी प्रकार की कोई समस्या न हो*, सालर वृक्ष की लकड़ी सर्वाधिक उपयोगी होती

है, लेकिन उस वृक्ष को मात्र भील प्रजाति ही पहचानती है और वो ही लाकर खोरादियों तक पहुँचाते हैं। कई खोरादी आम की लकड़ी का भी प्रयोग करते हैं। लेकिन समय के साथ-साथ वह लकड़ी काली पड़ जाती है और चित्रण कला की चटखता में मटमैलापन आ जाता है।

श्रवण कुमार द्वारा माता पिता को तीर्थ स्थान पर ले जाने का साधन कावड़⁶ ही था। कावड़ (सृजित चित्रपट्ट) भी घर बैठे ही ला. 'गों को तीर्थ करा देता है, इसी लिये इसे कावड़ नाम से सम्बोधित किया गया है।⁷ कावड़िया भाटों, कावड़ काष्टकारों और अन्य जनप्रवादों से ज्ञात होता है कि कावड़ की परम्परा का प्रारम्भ श्रवण कुमार के बाद से शुरू हुआ है। कावड़िया भाट अपने आप को श्रवण के वंशज मानते हैं। पूर्व जन्म में श्रवण कुमार माता पिता की मनोकामना पूर्ण ना कर पाए फलतः इस जन्म में (कावड़िया भाट) घर-घर जाकर कावड़ दर्शन कराते हैं। ताकि पूर्व जन्म की अधूरी आकांक्षा इस जन्म में पूरी हो सके। ना जाने किस घर में किस रूप में माता-पिता ने जन्म लिया हो उन्हीं की याद में लोक जन को तीर्थ स्थानों पर जाने के बजाए घर बैठे ही भगवान के दर्शन कराते हैं।⁷ इस प्रकार से सबके लिए सुलभ सर्वेश्वर से साक्षात्कार कराते हैं।⁸ यह परम्परा उसी समय (श्रवण कुमार काल से) से लेकर आज तक चली आ रही है।

जन समूह की आस्था व श्रद्धा आदि काल से ही देवताओं में रही है। सभी पाप और पुण्य की सोच कर सद्प्रवृत्ति की ओर प्रवृत्त होते हैं। उसी श्रद्धा से भाव प्रेरित हो भाट कावड़ लेकर घर-घर पहुँचाते हैं। इन देवल का वजन में हल्का होने का कारण, बिल्कुल भित्ति चित्रों के पश्चात् पोथी चित्रों के निर्माण जैसा प्रतीत होता है। सम्भवतः मन्दिर, आक्रान्ताओं के कारण नष्ट हो जाते थे तो कलाकारों ने छोटे मन्दिर लकड़ी पर सृजित करने आरम्भ किये। यही सम्प्रति चलते फिरते “टिटोरी टेम्पल” (कावड़) है।

राणा कुम्भा के समय में नागौर क्षेत्र में यवनों से प्रजा आतंकित थी और पशुधन को भी बन्दी बना रखा था। तब राणा कुम्भा ने वहाँ युद्ध कर विजयश्री प्राप्त की और गौ संवर्धन हेतु कार्य किए। समस्त बन्दी गायों को (पशु धन को) यवनों से मुक्त कराया।⁹ बस्सी

के खोरादी स्वयं को मूलतः नागौर वासी मानते हैं।[#] हमारे समाज में गौ सेवा के महत्व, उपयोगिता और लाभ को समझाने तथा गौ संवर्द्धन के प्रचार प्रसार में कावड़ के माध्यम से कावड़िया भाटों को पुण्य और धन दोनों ही अर्जित होता है।¹⁰

वस्तुतः महाराणा सांगा (संग्राम सिंह) के राज्यान्तर्गत चित्तौड़ के समीपवर्ती शासकों में बिजैपुर, बस्सी, मंगरोप, हमीरगढ़ बडलियावास आदि ठिकानों के जागीरदारों का दायित्व था कि वे विस्तृत सम्पूर्ण साम्राज्य की व्यवस्था को सुचारू बनाए रखें। उस व्यवस्था में आन्तरिक विद्रोह को बाह्य आक्रमण सम्बन्धी आशंका की भली बुरी अफवाह का सत्य निष्कर्ष निकाल कर सूचना शासक तक पहुंचाएँ। अर्थ व्यय भी स्वयं वहन करे और समय से पूर्व महाराणा को सार संकेत प्रदान करें।

मेवाड़ के कई ठिकानों के राव, राजा और जागीरदारों ने अपने गांवों में नट, कटपुतली प्रदर्शनकारियों, भाण्डों और कावड़िया भाटों को प्रलोभन, प्रोत्साहन देकर समुचित प्रश्रय प्रदान किया। कावड़िये भाट अनन्त दूर क्षेत्रों में जाते, घूम फिर कर सही-सच्ची खबरें लाते और गोपनीयता भी बनाए रखते। उदाहरणतः ईडर के इलाके में भाट ने ही निजामुल्मुल्क को सांगा के बारे में बताया और फिर लड़ाई के समय जब वह किले से भाग रहा था, त्यों ही भाट ने पुरानी सारी घटना कह दोहराई। इस पर लज्जित होकर वह नदी के दूसरे किनारे पर महाराणा की सेना का मुकाबला करने के लिए ठहरा।¹¹ उसका पता लगते ही महाराणा उस पर टूट पड़े और सारे मुसलमान सरदार मारे गए। सुल्तान की सारी सेना तितर-बितर हो गई।¹² ईडर पर महाराणा का शासन हुआ। इस प्रकार से इन कावड़िया भाटों के द्वारा भी मेवाड़ राज्य का संवर्धन व सुरक्षा हुई।

महाराणा जगतसिंह ने लाखों रूपये व्यय कर जगदीश का भव्य विष्णु मंदिर बनवाया। यह सूत्रधार (सुथार)भाणा और उसके पुत्र मुकुन्द की अध्यक्षता में बना।¹³ मन्दिर बनाने वाले सूत्रधार को चित्तौड़ के पास एक गांव मिला।¹⁴ और वे लोग यहां छोट-छोटे मन्दिर निर्मित करने लगे। यही टिटोरी टेम्पल हुए। इससे पूर्व नागौर, खवालिया, सेमूलिया, रतनगढ़ की खोड़ी में भी खोरादी चित्रण व कावड़ बनाते थे किन्तु स्वरूप यह नहीं था। सर्व प्रथम कावड़ गंगरार में

निर्मित हुई तब यह मात्र एक पाट की ही बनती थी।¹⁵

महाराणा राजसिंह के काल में मेवाड़ के कबुतर खानों और गौ शालाओं को राजकीय संरक्षण था और उनका व्यय भार राज्य वहन करता था। महाराणा के स्वर्गारोहण पश्चात् पशु पक्षियों (गौ-कपोत) आदि के चित्ताकर्षक रूप बनाए जाते रहे हैं। कालान्तर में कावड़ स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत है, व्यवस्था में स्वावलम्बन हेतु, अब कावड़िया भाट के रोजगार का साधन बना।

बस्सी के चित्रकारों ने पुरातन इतिहास के समाज सेवी, भगवद भक्त, परोपकारी, कर्तव्य परायण और लौकिक पुरूषोत्तम पात्रों को शाश्वत् बनाए रखा।¹⁶

कावड़ का आकार-प्रकार उपभोक्ता के अनुसार होता है। सृजित चित्रित कावड़ कपाट दर कपाट खुलने के कारण तिलस्मी डिब्बा लगता है। शीर्ष पर सूर्य बनाते हैं क्योंकि मेवाड़ नरेश स्वयं को सूर्य वंशी मानते रहे हैं। लेकिन कावड़ वैष्णव धर्म को प्रतिबिम्बित करती है। एक ओर राम गाथा तो दूसरी ओर कृष्ण लीला चित्रित होती है। इसके माध्यम से चन्द्रवंशी और सूर्य वंशी (दा. 'नों' वैष्णव जन) दोनों ही नरेशों को सूत्रबद्ध किया है। राम कृष्ण की यशोगाथा के साथ सनातनी धर्मावलम्बियों से सम्पर्क सूत्र साधना कावड़ का मुख्य उद्देश्य रहा है।

कावड़ के निचले भाग में कृष्ण तथा गौ माता को चित्रित करते हैं। वहीं दान पेट्टी बनी होती है, जिसे गुप्त बाड़ी कहते हैं। यहां पशु पक्षियों के भरण पोषण या गौ रक्षार्थ दान दक्षिण ा रखी जाती है।

कावड़िया भाट कावड़ को लपेट कर रखते हैं, सिर पर रखकर गांव-गांव शहर-शहर घूमते हुए धार्मिक कथा वाचन करते हैं। कथा वाचन करते वक्त सर्वप्रथम अपने नाम ठिकाने का परिचय देते हैं, बाद में कावड़ का। कपाटों पर चित्रित संयोजन को मोरपंख से स्पर्श करते हुए लयबद्ध वर्णन (वाचन) करते हैं। सभी कपाट वर्णित करने के पश्चात् अन्दर तीन प्रतिमाएं होती है। उनके दर्शन कराकर आरती करते हैं।¹⁷ चन्द्र वंशियों को कृष्ण, बलदाऊ और सुभद्रा के दर्शन कराते हैं और सूर्य वंशी को राम, लक्ष्मण और सीता के दर्शन करा देते हैं, तत्पश्चात् जीवन यापन हेतु दान दक्षिणा ग्रहण करते हैं।

जिस जाति समाज कावड़िये प्रायः अधिक विचरण करते रहे उन्हीं की लोक कथाओं या लोक गाथाओं से सम्बन्धित देवी देवताओं के चित्रों पर विशेष बल दिया गया।

कावड़िये भाट अपनी मौजूदगी में ऐसे चित्र तैयार करवाता है जिनमें कावड़ के प्रचलित तीर्थाटन तथा कावड़ दर्शनार्थियों की नामावली भी अंकित होती है। इससे जनमानस में कावड़ की लोकप्रियता में वृद्धि होती है। जहां कावड़िया भाट कावड़ बांच कर पुण्य प्रताप प्रसारित करते हैं, वहीं श्रोता-भक्तगण घर बैठे ही उसे सुनकर पुण्य अर्जित करते हैं।¹⁸

कावड़ में एक तरफ कृष्ण लीला और दूसरी तरफ राम लीला का चित्रण किया जाता है। कपाटों के आगे पीछे दोनों तरफ चित्रांकन होता है। इनमें विविध कलात्मक मानवाकृतियाँ, पशु में हाथी, घोड़ा, गाय, हिरण, कुत्ता, शेर, सांप, मकर, मछली, पक्षी में मोर, तोता, चिड़िया, वृक्ष में केला, अशोक, आम आदि तो चित्रित किये जाते हैं साथ ही चांद-सूरज, जलाशय, बादल आदि भी चित्रित किये जाते हैं। कावड़ काष्ट कला का सृजनात्मक स्वरूप है। वहीं चटख रंगों के संयोजन में धार्मिक कथाओं के चरित्रों का अंकन भी दर्शनीय है।

भारतीय चित्रकारों ने सामान्य आकार के पात्र विधान को स्थापित कर आकृतियों का निर्माण किया। आयु तथा व्यवसाय के अनुसार पात्र का आकार रूप एवं पोशाक निर्धारण किया। चित्र के आकार व अनुपात निर्धारण के अनुसार ही रचना की गई है। पात्र के काम को निर्धारित करने वाले विशेष पहचान चिन्ह बनाये जाने का प्रचलन रहा है।

प्रत्येक देवी-देवताओं की भी कावड़ में प्रतीकात्मक पहचान बनी है। जैसे शिव के सिर पर फहराती लम्बी चोटी व हाथों में करताल व बाण आदि सिर के पीछे आभामण्डल देवत्व का प्रतीक है। इन प्रतीकात्मक पहचान में कतिपय प्रतीक आकृति पर आरोपित होते हैं। जैसे शिवलिंग, मोर, मुकुट आदि। इस प्रकार चक्र, कमल, शंख, स्वास्तिक एवं ज्यामितिक आकृतियाँ आदि इन भाव प्रधान वस्तुओं का भी अपना विशेष महत्व है। इसी क्रम में क्षीर सागर में शेष शैय्या पर बैठे विष्णु और उनके चरणों के पास लक्ष्मी। इस परिदृश्य के मूल में क्षीर सागर निस्सीम एवं अनन्त के सूचक है तो शेष सहत्र फणों के द्वारा अनन्त (शेष) का संकेत करता है। अपने कर्णों के

कारण सहस्रधा सृष्टि का भी प्रतीक है। विष्णु और लक्ष्मी नर-नारी के प्रतीक हैं। विष्णु का नाभी के निकला कमल और उस पर बैठे ब्रह्मा निहित सृष्टि के बीज और सृष्टि के चतुर्दिक विकास के संकेतकर्ता हैं। रंगों के प्रतीकात्मक स्वरूप से ताजगी, प्रसन्नता, नाराजगी और देव दानव का परिचय कराया है। देवों को गौर वर्ण तथा दानव, मानव व पशु को हरे रंग से चित्रांकित करने की परम्परा रही है।

रंगों और तूलिका का प्रयोग आश्चर्यजनक रूप में किया गया है, फलस्वरूप संयोजन में एक विशिष्ट आकर्षण है। संयोजन - चित्रण इतनी कारीगरी से किया गया है कि स्क्रीन प्रिन्ट या किसी ठप्पे से विनिर्मित प्रतीत होता है। लेकिन कला कौशल के परिणामस्वरूप रक्तिम जड़ कावड़ पर चित्रित एक चश्मी गतिहीन रूपाकृतियाँ भी चटख रंग योजना और अलंकरण के कारण सजीव रूप ग्रहण कर भाव प्रधान हो जाती हैं। समस्त संयोजन सन्तुलित, लावण्ययुक्त, प्रवाहमयी (सिल सिलेवार) और प्रभाविता लिए हुये हैं। समस्त रूपाकृतियाँ सरस ग्राह्य भाव प्रधान हैं। कावड़ का कला कौशल, कलम शैली को दर्शाता है जो कलाकार का नाम बोलता है। जैसे शंकरलाल, रामप्रसाद और देवीलाल की कलम की अपनी निजता है।

पारम्परिक कलाकार नित्य कावड़ निर्मित चित्रित करते हैं और उपा. र्जन कर जीविका चलाते हैं। लोक दस्तकारी एवं अन्य कलाओं की तरह ये प्रदर्शनकारी लोककला आज भी हमारे देश में लोकप्रिय हैं। यह एक शुभलक्षण है। यह मात्र लोक व्यवस्था और लोक मूल्यों को सुरक्षित रखने का कलात्मक प्रयास मात्र है।

सम्प्रति कावड़ मात्र गृह साज सज्जा और संग्रहालय प्रदर्शनार्थ होती है। बड़े शहरों में मन्दिर दूर होने पर वैष्णव जन घरों में इसे रखकर पूजार्थ उपयोग करते हैं। यह लोकधर्म, चित्रण और वाचन का अनूठा संगम है। कावड़ के माध्यम से सबके लिए सर्वेश्वर से साक्षात्कार कराना सम्भव है। तभी इस लोक सृजित चित्रपट्ट-“कावड़” के लिए मेवाड़ में एक उक्ति है-

“बन्द कावड़ खोलावे, ज्यांरो नाम अमर हो जावे।”¹⁹

सम्प्रति ईसा मसीह, साईं बाबा, महावीर स्वर्ग-नरक, साक्षरता, दहेज प्रथा, प्रौढ़ शिक्षा, वृक्ष पूजन, पल्स पोलियो, अल्प बचत, परिवार नियोजन और बाल श्रमिक जैसे विषयों पर भी कावड़ चित्रण हो रहा है।

रोहतक स्थित रुड़की के शिव मंदिर के भित्ति चित्र

चित्रकला में भित्ति चित्रण वह शाखा है जिससे चित्र संयोजन और अलंकरण के माध्यम से तानों की भित्तियों तथा छतों को सुसज्जित किया जाता था। इसी प्रकार भित्ति चित्रों का संयोजन भवन पर आधारित है। प्राचीन वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से एक आधार भौतिक सिद्धान्त में कहा गया है कि कोई भी वास्तु आलेय के बिना पूर्ण नहीं माना जा सकता।

हरियाणा के रोहतक जिले में मंदिरों में बहुत से चित्र उपलब्ध हैं जिनके विषय पौराणिक हैं। इन चित्रों में उपदेशात्मक अभिव्यक्ति अधिक मात्रा में पाई गई है। यहां पौराणिक कथाओं पर आधारित चित्र टेपरा आलागीला और सूखे प्लास्टर पर बने हैं। जो लोक कला, मुगल कला एवं राजस्थानी शैली से प्रभावित हैं।

मंदिर -1

यह मंदिर रुड़की गांव में स्थित है। मंदिर में सुन्दर आलागीला पद्धति से बने चित्र मिलते हैं। यह मंदिर 'मागे राम मिस्त्री' ने बनाया था। मंदिर की छत पर किया गया अलंकरण दर्शित है। छत के बीचों-बीच जंजीर में मंदिर की घंटी लटकी है। छत के मध्य की गोलाई में फूल-पत्तियों के बेल-बूटों का सुन्दर अलंकरण है, छत की डिजाइन व रूपरेखा को बड़ी-बड़ी गोल पत्तियों का आकार दिया गया है जो पूरी छत के फैलाव के अनुसार है। इन फूलनुमा बॉर्डर के बीच-बीच में फूल-पत्तियों का लंबाई में अलंकरण है जिसकी प्रत्येक आकार में पुनरुक्ति की गई है। भूरे, हरे, नारंगी, काला, लाल रंग का सुन्दर सामंजस्य है। छत के ठीक नीचे महाराबदार आठ आकारों में कृष्णलीला एवं विष्णु के अवतारों से संबंधित चित्र हैं।

धार्मिक विषयों से संबंधित इन चित्रों को महाराबदार डिजाइन युक्त आकारों के

अन्दर संजोया है। इनमें कालियादमन; गोवर्धनधारण; समुद्रमंथन है। विष्णु अवतारों में वराह व नरसिंह अवतार; शिव परिवार प्रमुख है। अन्य चित्र अस्पष्ट हैं।

ग्रामीण क्षेत्र में स्थित मंदिर -2

इस गांव में भी अति प्राचीन शिव मंदिर है। यह मंदिर सेठ चन्दन लाल मुतबन्ना, श्री रामसरणा ने अपने पिता लाला कन्हैयालाल की याद में संवत् 2020 (1963 ई.) को बनवाया। इसका निर्माण मागे राम मिस्त्री ने ही किया था, जो गांव उल्हाणा का रहने वाला था। इस मिस्त्री ने एक अन्य मंदिर निडाना, जिला जिन्द में भी बनाया है। रुड़की में बना शिव मंदिर 100 फुट ऊँचा है और मंदिर तीन मंजिला है। एक मंजिल के बाहरी हिस्से में मूर्तियाँ बनाई गई है। मंदिर के दूसरी मंजिल के बाहरी हिस्से पर कुछ चित्र बने हुये हैं साथ ही अलंकरण भी बहुतायत में हुआ है। मंदिर के पास जोहड़ (तालाब) है। रोहतक जिले के प्राचीन मंदिरों में ये सबसे ऊंचा मंदिर है। अन्दर लोहे की सीढ़ियाँ हैं जिनसे मंदिर की विभिन्न मंजिलों पर जाया जा सकता है।

मंदिर की छत का अलंकरण - मंदिर की छत पर मध्य में गोलाकृति में नीली बड़ी पट्टियों के बीच हरी पट्टी युक्त टहनी का फैलाव है और उसके चारों ओर छत के फैलाव के साथ-साथ सात खण्डों में ऋषियों के खड़े हुये, और आठवें खण्ड में विष्णु और लक्ष्मी को चित्रित किया गया है। ऋषियों के नाम काली स्याही से लिखे गये हैं जैसे : अत्रि; पुलस्त्य; क्रतु; पुलह; मरीचि; वसिष्ठ; अङ्गिरा। स भी सन्त दाड़ी व ऊपर की ओर जाती हुई मूँछ युक्त है। कुछ ऋषियों के केश ऊपर जूड़े में बंधे हुये हैं व कुछ सन्तों के दोनों तरफ कन्धों पर लटके हुये हैं। सभी ने एक हाथ में हरे रंग की पुस्तक में विभिन्न प्रकार (आकारों) के कमण्डल ले रखे हैं जो लाल व काले रंग में चित्रित हैं। सन्तों ने दोनों हाथों की बाजू में रूद्राक्ष की माला, कमर से नीचे धोती पहिनी हुई है व ऊपर के शरीर पर केवल दुशाला ओढ़ा है जो एक कन्धे से घूमकर हाथ पर लटका है। पैर अनुपात से लंबे बनाये गये हैं चित्र में सन्तों के दोनों ओर नीचे की तरफ फूलों की झाडियाँ हैं जिन्हें विभिन्न रंगों के धातुओं द्वारा (पट्टियों के साथ) चित्रित किया है। आठवें खण्ड में 'विष्णु सर्पों की शैया पर लेटे' है, पास में पार्वती उनके पैर दबा रही है। विष्णु के एक

हाथ में ल बी टहनी का कमल है जिसके ऊपर चार हाथों वाले ब्रह्मा चित्रित है। विष्णु, पीली धोती, हरा कमरबन्ध पहिने है। गले में माला और पीला मुकुट धारण किये है। लक्ष्मी के केश खुले हुये भूरे रंग से चित्रित है। यहाँ कलाकार ने अपनी कल्पना से चित्रों में रंग भरा है। चित्र में ऊपर की तरफ लक्ष्मी, ब्रह्मा व विष्णु के नाम काली स्याही से अंकित है। अष्टकोण आयातों के नीचे ज्यामीतिय प्रारूपों में फूल पञ्जी के अलंकरण है। चारों कोनों पर त्रिभुज में हरे रंग में तीन पञ्जी का फूल है जिसके अन्दर सफेद फूल-पञ्जी का अलंकरण व बाहरी रेखांकन भूरे रंग से किया है। नीचे आयातों में 'लाला-भगत' है। लाला हाथ जोड़े रूद्राक्ष की माला लिये, कॉलर युक्त कमीज पहिने वक्ष तक चित्रित है भगत हाथ जोड़े, लंगोटी पहिने ल बे केश दोनों कंधो पर फैले हुये आंखे बड़ी-बड़ी आदम कद रूप में चित्रित है। दोनों ओर व बीच में पेड़ चित्रित है।

अन्य चित्र 'भगत-भगत' का है, जिसमें एक भगत पद्मासन में हाथ जोड़े बैठे है उनके हाथों में रूद्राक्ष की माला है। वे केवल लंगोटी पहिने चित्रित है। अन्य भगत उनकी तरफ मुंह किये रूद्राक्ष की माला हाथ में लिये उकडू बैठा है। नीचे के शरीर में उसने धोती पहिने रखी है। दोनों तरफ छोटे-छोटे झाड़ीनुमा पेड़ है। दो व्यक्तियों का प्रारूप एक सा है, वे हाथ जोड़े रूद्राक्ष की माला लिये पूरी आसतीन व कॉलर युक्त कमीज पहिने वक्ष तक चित्रित है। बीच में व दोनों ओर झाड़ीनुमा पेड़ अंकित है। 'लाला-लाला' भी भगत-भगत चित्र की तरह चित्रित है 'स्वामी-लाला' का है। स्वामी पद्मासन में केवल लंगोटी धारण किये बैठे है। पास में लाला, एक हाथ से स्वामी की तरफ कुछ इंगित कर रहा है व अन्य हाथ में रूद्राक्ष की माला लिये है। वे पूरी आसतीन की कॉलर युक्त कमीज पहिने है चित्र के दोनों ओर पेड़ चित्रित है।

'कुञ्जा-सरप' चित्रित है। कुञ्जा एवं सर्प दोनों एक दूसरे की तरफ मुंह किये बैठे है। पृष्ठभूमि में नीले, भूरे, ऊँचे व छोटे-छोटे पेड़ चित्रित है।

'स्वामी-स्वामी' चित्र में दो स्वामी चित्रित है। बांये ओर चित्रित स्वामी के ल बे केश है व दोनों हाथों की बाजूओं में रूद्राक्ष की माला है व दुशाला ओढे है। दांयी ओर चित्रित स्वामी गंजा है वे दुशाला ओढे गले में रूद्राक्ष की माला पहिने

खड़े हैं। दोनों ओर व बीच में एक पेड़ चित्रित है।

‘स्वामी-भगत’ जो माला से जाप कर रहे हैं। स्वामी, जूड़ा बांधे, कन्धों तक लंबे केश, हाथ में रूद्राक्ष की माला व लंगौटी पहिने पद्मासन में बैठे चित्रित हैं। भगत केवल धोती पहिने हाथ में रूद्राक्ष की माला लिये उनके सामने मुख किये बैठे हैं। सभी चित्र भूरे रंग के पतले बॉर्डर से बंधे हैं। इसके ठीक नीचे महाराबदार आलों के ऊपर चित्रांकन है जिसमें नीले व सिन्दूरी रंग पर सफेद रंग से फूल-पत्तियों की बेल का अलंकरण किया है। इसके नीचे आले बने हैं जिनमें कही-कही चित्रांकन किया है। जैसे में स्वामी को एक हाथ में पुस्तक व दूसरे हाथ में कमण्डल लिये धोती पहिने केश रहित (गंजा) खडा चित्रित किया है।

मंदिर के बाहरी द्वार का अलंकरण : मंदिर की बाहरी दिवार पर द्वार के चारों ओर (ज्यामितिय) आयतों को काले रंग में चित्रित किया है। दोनों तरफ आलों के ऊपर पक्षी व हरे रंग की पृष्ठभूमि पर फूल-पत्तियों का अलंकरण किया है। में दरवाजे के ऊपर मठोत से लेकर छत तक लंबी-लंबी पट्टियों में अलंकरण की पुनरावृत्ति की है। जिन्हें काले रंग से रेखांकित किया गया है। छत पर पुनः फूल-पत्तियों को सफेद रंग में लाल धरातल पर उकेरा है। जिनके बीच-बीच में गोल आकार के डिजाइन उकेरे हैं।

वर्तमान में रोहतक शहर जो अनेकानेक बड़े गांवों में अपनी चित्रित हवेलियों, मंदिरों की पर परागत स्थापत्य और अलंकृत सजावटी तत्वों के लिये शेखी मारता था अब नष्ट होने की कगार पर है। देख-रेख के अभाव में कुछ इमारतें अब

राजस्थान की प्रसिद्ध महिला चित्रकार डॉ. वीरबाला भवसार का व्यक्तित्व व कृतित्व

वीरबाला भवसार के सम्पूर्ण चित्रण का सार दो पंक्तियों में है। वे रेत या मिट्टी से कभी अलग नहीं हुईं। कभी रंगों में काम करने की इच्छा नहीं हुई? ऐसा पूछने पर बताती हैं— कभी ऐसी लगा नहीं कि रेत में कुछ कमी है जो रंगों से पूरी की जाए। रेत उनका निजी प्रयोग है।

वीरबाला लिखती हैं—

“माटी ही ललित रूप है, जिसकी उपज रस है
और सौन्दर्य है— जिसे सुना जा सकता है,
देखा जा सकता है, जहाँ स्वर्गीय आनन्द है
जो न लगे खेती में, कवि उगाए रेती में।”

जीवन परिचय:—

वीरबाला भावसार का जन्म 10 अक्टूबर 1941 को गुजरात के अहमदाबाद शहर में हुआ। मूल निवास बांसवाड़ा होने से उनका बचपन वहीं पर बीता। पिता धूलजी भाई भावसार व माता विजयादेवी दोनों स्वतन्त्रता सेनानी और गांधीवादी विचार के पोषक थे। वीरबाला ने अहमदाबाद जाकर कला शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने कई लेख भी प्रकाशित किये। वीरबाला की कला में सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक दोनों पक्ष समान रूप से चलते रहे हैं। उनके कार्य और कथन में विरोधाभास नहीं है। उनका मानना है कि जीवन में बहुत सी समस्याएं होती हैं, परन्तु अपने में आत्मविश्वास रखकर आगे बढ़ना चाहिए। वीरबाला राजस्थान में चित्रकला की प्रथम महिला प्रोफेसर रही।

कला शिक्षा:—

वीरबाला ने कला शिक्षा अहमदाबाद जाकर प्रारम्भ की। ललित कला में डिप्लोमा (डिप्लोमा इन फाइन आर्ट्स) 1966 गुजरात से प्राप्त किया। सन् 1967 में आर्ट मास्टर, गुजरात से, 1970 में एम.ए. चित्रकला, उज्जैन से व 1986 में पीएच.डी. की

उपाधि प्राप्त की। बांसवाड़ा और जूंगरपुर की आदिवासी कला को लेकर 1996 में राजस्थान विश्वविद्यालय से आदिवासी कला में शोध कार्य किया तथा ग्रामीण और लोक कलाओं को समझा। यही कारण है कि उनके चित्र आदिवासी, लोककला और प्रकृति प्रेरणा का स्रोत बने, जिसके लिए रेत का टेक्चर अनुकूल लगा।

कला यात्रा:—

वीरबालाजी ने शुरू-शुरू में छोटे-छोटे हैंड-मेड शीट के कार्डों में रेत से चित्र बनाये। यह बात 1965 की है फिर 1971 में कैनवास पर रेत से चित्र बनाये। यहीं से निरन्तर प्रयोगशील रहकर वीरबाला भावसार ने एकल और सामूहिक प्रदर्शनियों के माध्यम से अपनी निजी कला शैली का परिचय दिया है तथा प्रांत और देश की प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में सुर्खियां प्राप्त की।

दिल्ली की रवीन्द्र भवन की कला-दीर्घा में आपके चित्रों की प्रथम प्रदर्शनी का आयोजन हुआ।²

प्रदर्शनियाँ:—

वीरबाला ने रेट्रोस्पेक्टिव सहित 25 एकल प्रदर्शनियाँ 1971 से 2012 तक भारत के विभिन्न शहरों में कर चुकी है जैसे अहमदाबाद, नई दिल्ली, जयपुर, मुम्बई, कोलकत्ता, भोपाल, उदयपुर, लखनऊ। यही नहीं आपने 8 राज्य और 6 राष्ट्रीय कला शिविरों में भी भागीदारी निभाई है। साथ ही 9 राज्य और 8 राष्ट्रीय कला मेलों में भी भाग ले चुकी हैं।

चयन:—

आपके चित्र राष्ट्रीय कला प्रदर्शनियों में 1983, 1988, 1989 और 2000 में चयनित हुये। गुजरात ललित कला अकादमी में 1963 से 1971 तक कुल 3 बार; राजस्थान ललित कला अकादमी में 1977 से 82 से 2001, 2010 तक कुल 21 बार; राज्य व अखिल भारतीय प्रदर्शनियों 1992, 1994 में चयन; अन्य अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में 1967 से 2000 तक कुल 26 बार चयनित, अन्य अनेक अखिल भारतीय एवं राज्य कला प्रदर्शनियों में चयनित।³

सेमिनार/कॉन्फ्रेंस:—

आप ललित कला अकादमी, लखनऊ में राधा कमल मुखर्जी व्याख्यान माला, 2008 की मुख्यवक्ता रही, राज्य ललित कला अकादमी, राजस्थान विश्वविद्यालय एवं ऑल इण्डिया कॉन्फ्रेंस सहित कुल ग्यारह पत्र वाचन किये।

अध्यापन:—

वीरबाला भावसार ने गुजरात की कला संस्थाओं में अध्यापन (2 वर्ष व्याख्याता, 2 वर्ष प्राचार्य)— 1971 से 1974 तक कार्य किया साथ ही राजस्थान विश्वविद्यालय के चित्रकला विभाग में सहायक प्रोफेसर से प्रोफेसर— 1974 से 2001 तक रही। 1998 से 2001 तक विभागाध्यक्ष, 12 शोधार्थियों को शोध कार्य में मार्गदर्शन किया।

पुरस्कार:—

वीरबालाजी को अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया। जैसे:— राज्य ललित कला, जयपुर द्वारा, राज्य पुरस्कार—1982; अखिल भारतीय पुरस्कार—1992; महाराणा सज्ज जनसिंह सम्मान, मेवाड़ा फाउन्डेशन, उदयपुर—2000;⁴ श्री द्वारका साहित्यकार एवं चित्रकार सम्मान, जयपुर—2011; महाकौशल कला परिषद पुरस्कार, रायपुर—1988; टि. आस पुरस्कार, होशियारपुर—1987; कालिदास समारोह प्रदर्शनी पुरस्कार, उज्जैन—1987; प्रथम राष्ट्रीय महिला कला रत्न पुरस्कार, टोंक—2007; समाज रत्न, जयपुर—2008, छात्र कला पुरस्कार; ललित कला अकादमी, गुजरात—1964 एवं अन्य अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

प्रकाशन:—

उनकी पुस्तक 'आदिवासी कला', प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली से 1993 में प्रकाशित हुई। ये पुस्तक काफी चर्चित रही है। इसके अतिरिक्त सन् 2001 से लेकर सन् 2012 तक उनके द्वारा लिखी गई कविताओं व लघु-कथाओं की 12 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता संग्रह—10, 2007; बागड़ी (राजस्थानी) कविता संग्रह—1; लघुकथा संग्रह—1; सौन्दर्य दर्शन, जवाहर कला केन्द्र द्वारा—2012; कला एवं सौन्दर्य पर 44 एवं अन्य विषयों पर 24 लेख प्रकाशित; उनके द्वारा लिखे गये लेख विभिन्न कला पत्र-पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में प्रकाशित।

चित्र निर्माण प्रक्रिया:—

वीरबालाजी के चित्र आदिवासी, लोककला और प्रकृति प्रेरणा का स्रोत बने, जिसके लिए रेत का टेक्स्चर अनुकूल लगने लगा। प्राचीनत्व और लोक शैली के चरित्र को लाने के लिए भी वीरबालाजी को रेत का माध्यम उपयोगी लगा। इस प्रकार वे पूरी तरह रेत को ही समर्पित हो गईं। वे रेत या मिट्टी से कभी अलग नहीं हुईं। उनके अनुसार मिट्टी एक सुधाट्य माध्यम है। उल्लेखनीय है कि वे अपने चित्रों में रेत से ही तरलता, गहराई, दूरी, धनत्व, रेखीय सघनता, पारदर्शिता, परिप्रेक्ष्य, विभिन्न प्रकार के तान, टेक्स्चर, स्पेस का आभास, आकाश व पृथ्वी के बीच झूलते आकार आदि सभी कुछ दर्शाती है। वे अपने चित्रों में फेविकोल अथवा अन्य किसी ऐडेसिव को कैनवास के धरातल पर पहले लगाती है फिर छलनी अथवा हथेली या

उंगलियों की सहायता से उस पर रेत बिछाती चलती है और नया संसार सृजित होने लगता है। बाद में आस-पास पड़ी रेत को कैनवास से हटा देती है। जिस जगह को उन्हें नजदीक व गहरा दिखाना होता है वहां वे रेत की दूसरी परत को चडा देती है। वीरबालाजी अपने इस कार्य को इतने अच्छे से करती है कि जिस जगह जितनी रेत चाहिए उतनी ही गिराती है।⁵

वीरबालाजी के 'गाँव' नाम चित्र में उन्होंने पांच दरवाजे दिखाए हैं। झोपड़ियों के और उनके बीच में से निकलता हुआ एक रास्ता दिखाया गया है। पेड़ भी बनाए हैं। इस चित्र में वीरबालाजी ने छाया और प्रकाश को बड़े ध्यानपूर्वक दिखाया। पेड़ की पत्तियों को भी दर्शाया गया है। एक सूखा पेड़ भी है और इस चित्र का आकार 36"X24" है और ये कैनवास व रेत द्वारा बनाया गया है। (चित्र नं. 1)



“प्राचीन संसार” नामक पेन्टिंग भी रेत से खादी पर बनाई गई है। इसका आकार 36"X24" है और इसमें सात जानवर व चार मानव आकृतियाँ दिखाई गई हैं। जानवर दौड़ रहे हैं। एक जानवर सीड़ियां चढ़ रहा है। दो मानव आकृतियां हाथ पकड़े खड़ी हैं। मानो उनको देख रही है और दौड़ते हुए पांच जानवर है और दो मानव आकृतियां उनके पीछे है जिसमें से एक स्त्री और एक पुरुष है। स्त्री का बायां हाथ ऊपर है और दायां नीचे। पुरुष स्त्री के पीछे है। दोनों के बाल गरदन तक दिखाए गए हैं। रेतीले पहाड़ भी हैं और कुछ झाड़ियों को भी दर्शाया गया है। दो जानवर को पेन्टिंग के आएं और ऊपर की ओर दिखाया गया है। (चित्र नं. 2)



‘गांव की ओर’ ये चित्र 1997 में बीरबालाजी ने बनाया। इसका आकार 36’’x24’’ है और ये कैनवास पर रेत द्वारा बनाया गया। इसमें वीरबालाजी ने सोलह मानव आकृतियां दर्शायी हैं। जिसमें से एक सबसे आगे है फिर दो उसके पीछे हैं और फिर दस मानव आकृतियां उनके पीछे हैं जिसमें से एक को नृत्य करते दिखाया गया है। तीन फिर उनके पीछे उनके ऊपरी हिस्से में दिखाई गई है। रेत के टीले व पेड़-पौधों को भी चित्रित किया गया है। सूखे पेड़ भी दर्शाये हैं। कुछ पत्ते नीचे गिरे हुए हैं और झाड़ियों को भी बनाया गया है। (चित्र नं. 3)



संदर्भ ग्रन्थ

1. वेबसाईट : www.dr.veerbalabhavsar.com
2. सुमन जनकावत, मीनाक्षी कासलीवाल ‘भारती’ का व्यक्तित्व व कृतित्व, 2008, पृ. 11
3. वेबसाईट : www.dr.veerbalabhavsar.com
4. डॉ. मीनाक्षी कासलीवास ‘भारती’, वीरबाला भावसार, 2013, पृ. 5, 6, 8, 26, 27
5. डॉ. आर.के.वशिष्ठ, डॉ. भवानी शंकर शर्मा : राजस्थान की महिला चित्रकार, 1990-91, पृ. 14
6. वेबसाईट : www.dr.veerbalabhavsar.com

डॉ. नम्रता स्वर्णकार
सहायक आचार्य,
डिपार्टमेंट ऑफ फाइन आर्ट एण्ड पेंटिंग,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

“मारवाड़ महाराजा मानसिंह कालीन नाथ संप्रदाय की कला का विशिष्ट स्वरूप – तंत्र चित्र”

मारवाड़ महाराजा मानसिंह (1803–1843ई.) महाराजा विजयसिंह (1752–1793 ई.) के पांचवे पुत्र ‘गुमानसिंह’ के पुत्र थे।¹ महाराजा मानसिंह नाथ संप्रदाय के परम अनुयायी रहे हैं। इनके गुरु नाथपंथी आयस देवनाथ थे।² आयस देवनाथ की भविष्यवाणी से महाराजा मानसिंह को मारवाड़ का राज्य मिला था।³ शासक बनने पर महाराजा मानसिंह ने मारवाड़ क्षेत्र में अनेक नाथ-मन्दिरों व मठों का निर्माण करवाया। तत्कालीन मन्दिरों का उल्लेख विभिन्न ग्रंथों में मिलता है।⁴

महाराजा मानसिंह जी ने जोधपुर मेहरानगढ़ दुर्ग में 2 जनवरी 1805 ई. में पुस्तक प्रकाश की स्थापना की।⁵ जो कि वर्तमान में महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र के रूप में जाना जाता है। जहाँ नाथ साहित्य का विशाल संग्रह है।

स्वयं महाराजा उच्चकोटि के विद्वान थे। उन्होंने छोटे-बड़े कई ग्रंथों की रचना की है। वर्तमान में सभी महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में संगृहीत हैं। महाराजा मानसिंह के 40 वर्ष के शासन काल में मारवाड़ में साहित्य, चित्रकला, संगीत-कला, धर्म के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ।⁶ वस्तुतः महाराजा मानसिंह जी का काल नाथ-संप्रदाय के सर्वांगीण विकास का काल रहा है। इसी काल में नाथ संप्रदाय की कला का एक विशिष्ट स्वरूप है ‘तंत्र चित्र’।

तंत्र की उत्पत्ति का मूल संस्कृत के ‘तन्’ शब्द से है जिसका अर्थ होता है फैलना एवं विस्तार लेना अथवा व्यापक होना, अतः तंत्र से तात्पर्य है किसी भी रूप अथवा वस्तु में विस्तार लेने की कला (दक्षता)।⁷

अतः तांत्रिक अभिव्यक्ति, संस्कारों व शास्त्रोक्त विधियों (पद्धतियों अथवा कर्मकाण्डों) का एक प्रकार का धृष्ट (सच्चा) विज्ञान है जिसमें वेदों की उच्चता एवं उपनिषदों का ज्ञान समाहित है।⁸

वर्तमान नाथ योगी ‘योगेन्द्रनाथ योगी’ अपने ब्लॉग (इन्टरनेट पर) तंत्र व यंत्र की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि ‘तंत्र’ सोचने (चिन्तन व विचारों का) की शक्ति का विकसित रूप है जिसमें समूचा ब्रह्माण्ड अपने में समाहित हो जाना।⁹ अतः इस

प्रकार तंत्र के तीन प्रकार हैं¹⁰ :- अतः इस प्रकार तंत्र के तीन प्रकार हैं।

- (1) ज्यामितीय आकारों द्वारा देवताओं (अथवा मंत्र) का प्रकटीकरण
- (2) मानव शरीर का ब्रह्माण्ड के स्वरूप में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति
- (3) मूर्तिवत् छवियां

इसी प्रकार मंत्र शब्द संस्कृत के मानस् और 'त्र' से मिलकर बना है जिसमें मानस् अर्थात् मन, बुद्धि व आत्मा एवं 'त्र' (त्रयात्) से अर्थ है मुक्त होना, अतः मंत्र का अर्थ है मन, बुद्धि, चित (चेतना), आत्मा एवं जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होना, परे होना।¹¹

इसी के साथ यंत्र शब्द भी जुड़ा है जो कि संस्कृत शब्द है जिसके अर्थ बनाए रखने (या पकड़ को बनाये रखने) के संदर्भ में हैं इसलिए आध्यात्मिक दृष्टि से एक यंत्र की उच्चतम आध्यात्मिक तत्त्व के गोदाम के रूप में कल्पना की है।¹²

अतः मंत्र-यंत्र व तंत्र जब शास्त्रोक्त विधि से मिलकर अभिव्यक्त होते हैं तो उसका प्रभाव भी उच्च अर्थ देने वाला सार्थकता लिये होता है।

नाथ संप्रदाय में कई ग्रंथ तंत्र से संबंधित हैं जिनमें मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा रचित कौलज्ञाननिर्णय, अकुलवीरतंत्र (ए)-(बी), कुलानन्द आदि हैं।¹³ मत्स्येन्द्रनाथ ने कौलाचार साधना की और बाद में अकुल मार्ग-शैव मार्ग में सन्निष्ट हो गए। इसी प्रकार जालन्धरनाथ जी ने भी हेवज्र के साधना गत सिद्धकापालिक मार्ग से प्रभावित रहे तथा बाद में नाथमत (सिद्धमत) का वरण कर लिया।¹⁴

योग का संबंध भी तंत्र और मंत्र से जुड़ा है। गोरक्षनाथ हठयोग साधना के मुख्य प्रवर्तक थे (अथवा) गोरक्षनाथ की साधना को हठयोग साधना कहा गया है।¹⁵

हठयोग में 'ह' (ॐ) 'थ' में दो बीज मंत्रों का संयोग है जिनमें 'ह' प्राण को दर्शाता है तथा 'थ' बुद्धि (उपदक) और ये दोनों मिलकर 'शक्ति' में परिणत होते हैं और परमपद अथवा अपने मूल से जुड़ जाते हैं।¹⁶ ब्रिग्स का मत है कि 12वीं शताब्दी के गोरक्ष रचित गोरक्षशतक के उपदेशों में योग और तंत्र का मिश्रण है।¹⁷

अतः नाथ सम्प्रदाय में योग, तंत्र-मंत्र व यंत्र का संयोग है। मारवाड़ में महाराजा मानसिंह के काल में नाथ सम्प्रदाय विषयक तंत्र-मंत्र से जुड़े चित्रों को निर्माण भी किया गया। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि महाराजा मानसिंह के आराध्य जालंधरनाथ जी थे और जालंधरनाथ जी की साधना सिद्धकापालिक मार्ग (जो कि तंत्र-मंत्र व कर्मकाण्डी) से प्रभावित भी रही थी एवं बौद्ध वज्रयानियों व अन्य कापालिक मतों का प्रभाव की भी विद्वानों ने विशद विवेचना की है।¹⁸

तंत्र कला में ज्यामितीय आकारों में तंत्र चित्र व शिल्प की रचनाएँ की जाती है। तांत्रिक अर्थों में त्रिभुजाकार आकृति का तिकोना भाग ऊपर की तरफ अंकित किया जाए तो वह ‘शिव’ का प्रतीक है। इसी प्रकार नीचे की तरफ तिकोना भाग ‘शक्ति’ को प्रदर्शित करता है।¹⁹ नाथ सम्प्रदाय में नवनाथों में आदिनाथ स्वयं भगवान शिव ही हैं एवं नाथ योगी का स्वरूप वेष—प्रतीक सभी शिव स्वरूपा ही हैं। वस्तुतः नाथ सम्प्रदाय की भित्ति चित्रकला एवं लघु चित्रकला में चित्रित सभी नाथ योगियों को तिकोनी टोपी पहने चित्रित किया है, जो कि संभवतः प्रतीकात्मक (तंत्र स्वरूप में) अंकन है। योग, तंत्र, मंत्र व चित्रों पर श्री अजीत मुखर्जी ने अपनी पुस्तक ‘तंत्र आर्ट’ इट्स फिलॉसॉफी एण्ड फीजिक्स’ में विस्तार से लिखा है। योग व तंत्र साधना से तुलना करते हुए लिखा है कि सृजन का मुख्य आधार बिन्दु है और यही सारे सृष्टि का मूल है। तंत्र के अनुसार मंत्र द्वारा उच्चारित प्रत्येक ध्वनि एक रूप व रंग से जुड़ी है। तंत्र—मंत्र—ध्वनि—रूप—रंग सभी अंतर्सम्बन्धित हैं।

उदाहरण के लिए अग्निमंत्र सही बोला जाए तो लाल रंग एवं ताप को बढ़ाता है अतः इस प्रकार तंत्र व मंत्रों का जीवन से सम्बन्ध व जगत से गहरा सम्बन्ध है।²⁰ नाथ सम्प्रदाय में भी मंत्र व तंत्र की कलात्मक प्रस्तुति दिखाई देती है जिनमें आकार, रंग व मंत्र सभी अपना विशेष प्रयोजन सिद्ध करते हैं।

महाराजा मानसिंह कालीन नाथ संप्रदाय के तंत्र—मंत्र के चित्र मुख्यतः बड़े—छोटे कागज व कपड़े पर बनाये गए हैं। ये सभी महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश केन्द्र में संगृहीत हैं।²¹ ये चित्र प्रमुख हैं—

1. नाथ मण्डल पूजा चक्र :-

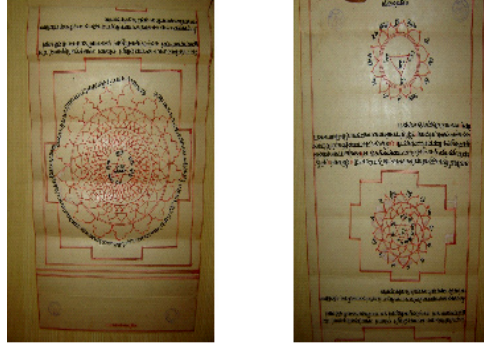
इसमें कुल 81 खानों में बीज मंत्र लिखे गए हैं। समचौरस कागज पर (लगभग 18—18” का) लाल, पीले व काले रंग को प्रयोग किया गया है। चित्र सं.— 1



नाथ मंडल पूजा चक्र 19वीं शताब्दी संगृहीत महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश केन्द्र मेहरानगढ़ जोधपुर

2. (श्री) नाथजी के तीन यंत्र—

यह बड़े कागज पर (9ग24") स्कॉलनुमा बनाया है। इस बड़े कागज पर तीन यंत्र बनाए हैं जिनमें पहला सबसे बड़ा क्रमशः छोटे बनाए हैं। मध्य में (तीन यंत्र के) त्रिभुजाकार व ज्यामितीय आकृति एवं उसके चारों ओर गोलाई में पुष्पाकार पंखुड़ियां चित्रित की हैं तथा उनमें बीज मंत्र लिखे हैं साथ ही पूरे स्कॉल में व्याख्या भी दी है। इसमें भी मुख्यतः दो ही रंग—लाल व काला प्रयुक्त किये हैं।²² चित्र सं.—2-3



चित्र सं.—2-3

नाथ जी के तीन यंत्र 19वीं शताब्दी संगृहित महाराज मानसिंह पुस्तक प्रकाश केन्द्र, मेहरानगढ़, जोधपुर

(3) कर्म विपाक यंत्र :-

इसमें कागज पर लाल रंग के गोलाकार घेरे में काले रंग से (मंत्र) लिखा गया है। इसमें कुल 12 घेरे चित्रित किए हैं।²³ चित्र सं.—4



चित्र सं.—4

कर्म विपाक यंत्र, 19वीं शताब्दी संगृहित महाराज मानसिंह पुस्तक प्रकाश केन्द्र, मेहरानगढ़, जोधपुर

(4) नाथजी के दोहे²⁴ -

यह भी 16/16" के कागज पर बना अत्यन्त रोचक यंत्र है। यंत्र खण्डित अवस्था में है। वस्तुतः इसमें जालंधरनाथ जी के दोहे चित्रकार रूप में (Calligraphic Style) लिखे गए हैं, जो देखने में वर्तमान रेण्डरिंग (त्मदकमतपदह) रूप में एक चित्र का आभास देते हैं। इस यंत्र को बहुरंगी चित्रित किया गया है। चित्र सं.—5



चित्र सं— 5

नाथ जी के दोहें, 19वीं शताब्दी, संगृहित महाराज मानसिंह पुस्तक प्रकाश केन्द्र,
मेहरानगढ़, जोधपुर

(5) देवी यंत्र—

इसी क्रम में मुझे एक चित्र 'देवी' का (तंत्र चित्र) नाथ मन्दिर गुलाब सागर, जोधपुर में मिला है जो कि कागज पर बना जीर्ण—शीर्ण अवस्था में है। इसमें मध्य में त्रिशूल, दो बड़े नेत्र देवी (शक्ति के) एवं दायीं तरफ (संभवतः) नाथ योगी भैरव रूप में बनाया है। गृहस्थ नाथ मठाधीश लक्ष्मणनाथ जी ने बताया कि यह चित्र लगभग 150 वर्ष से अधिक प्राचीन है।²⁵ चित्र सं.—6



चित्र सं—6

देवी यंत्र, 19वीं शताब्दी, नाथ मंदिर, गुलाब सागर, जोधपुर

किसी भी देश—राज्य की सांस्कृतिक विशेषताओं में कला व धर्म अपना विशेष

स्थान रखते हैं। आदिकाल से कलाएँ धर्म की संवाहक एवं पोषक रही हैं। 'कलाएँ' अभिव्यक्ति का परिष्कृत स्वरूप हैं। ये अभिव्यक्ति व्यक्तिगत, वस्तुगत, विषयगत एवं धार्मिकता की विशेषताओं के विभिन्न रूपों को प्रकट करती रही हैं। इसी का एक स्वरूप हमें नाथ संप्रदाय विषयक इन तंत्र चित्रों में दिखाई देता है जो कि कलाकारों द्वारा संप्रदायगत आस्था के स्वरूप की कलात्मक प्रस्तुति हैं। जिसमें प्रत्येक रेखा, रंग व आकार का अपना विशिष्ट लौकिक व अलौकिक महत्त्व व दृष्टिकोण है। वर्तमान में तंत्र-मंत्र-यंत्र पर अनेक विद्वानों ने अपनी विशद व्याख्या प्रस्तुत की है।²⁶ जो कि तंत्र कला के सौन्दर्यमूलक कलात्मक स्वरूप को समझने में सहायक है।

सन्दर्भ

1. डॉ. नारायण सिंह भाटी (सं.) – महाराजा मानसिंह दी मिस्टीक मोनार्क ऑफ मारवाड़, पृ.-39
2. डॉ. रामप्रसाद दाधीच – महाराजा मानसिंह जोधपुर :- व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.-32
3. वही पृ.-32
4. डॉ. नम्रता स्वर्णकार – नाथ सम्प्रदाय के भित्तिचित्रों का सर्वेक्षण व समीक्षात्मक अध्ययन (मेवाड़ व मारवाड़), (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) पृ.-162
5. (1) डॉ. पद्मजा शर्मा :- जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल, पृ.-249
(2) डॉ. जहूर खां मेहर डॉ. महेन्द्रसिंह नगर, – जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पृ.-99
6. डॉ. जहूर खां मेहर, डॉ. महेन्द्रसिंह नगर – जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पृ.-99
7. आर.एस. बजपाल : दी स्लैण्डर एण्ड डाइमेन्शनस् ऑफ योगा, वॉल्यूम-1, पृ. 239
8. आर.एस. बजपाल : दी स्लैण्डर एण्ड डाइमेन्शनस् ऑफ योगा, वॉल्यूम-1, पृ. 239
9. योगेन्द्रनाथ योगी ब्लॉग स्पॉट (इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी अनुसार)
10. वहीं
11. वीकीपेडिया एनसाइक्लोपेडिया (इन्टरनेट से प्राप्त विवरण अनुसार)
12. योगेन्द्रनाथ योगी ब्लॉग स्पॉट (इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी अनुसार)
13. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी – ग्रंथावली – 6 – नाथ संप्रदाय, पृ. 53
14. रामलाल श्रीवास्तव : नाथसिद्धचरितामृत, पृ. 93
15. डॉ. कोमलसिंह सोलंकी : नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य, पृ. 190
16. डॉ. आर.एस. बजपाल : दी स्लैण्डर एण्ड डाइमेन्शनस् ऑफ योगा, वॉल्यूम-1, पृ. 5
17. ब्रिग्स : गोरखनाथ एण्ड कनफटायोगीज, पृ. 327-257
18. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी – ग्रंथावली – 6 – नाथ संप्रदाय, पृ. 53
19. डॉ. मदन मीणा – 'आर्ट ऑफ मीना कम्प्यूनिटी', पृ. 303 (अप्रकाशित शोध ग्रंथ – राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर – 2005)
20. अजीत मुखर्जी – लेख 'तंत्र आर्ट : इन सर्च ऑफ लाइफ डिवाइन' – योगा मेगजीन – अक्टूबर 1997, बिहार योगा भारती, बिहार स्कूल ऑफ योगा ,सन्दर्भ- अजीत मुखर्जी- तंत्र

आर्ट इट्स फिलोसॉफी एंड फिजिक्स)

- 21 महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश के सौजन्य से
हस्तलिखित प्रकीर्ण बंध, अलमारी-15, बंध-5, क्र.सं. 6 ग्रंथांक-1611
- 22 (महाराजा मानसिंह साहित्य (फुटकर) नाथ विषयक संग्रह)
प्रकीर्ण बंध (फुटकर) (चित्र और यंत्र) – सं. 1-23, पंजिका पृ. 59, बंध-5, महाराजा मानसिंह
पुस्तक प्रकाश केन्द्र, जोधपुर
- 23 वही
- 24 प्रकीर्ण बंध (फुटकर) – चित्र और यंत्र – सं. 1-23, पंजिका-पृ. 59 क्र.सं. 4
- 25 गृहस्थ नाथ योगी लक्ष्मणनाथ जी (नाथ मन्दिर गुलाब सागर, जोधपुर) द्वारा दी जानकारी
अनुसार
- 26 डॉ. नम्रता स्वर्णकार – नाथ संप्रदाय के भित्तिचित्रों का सर्वेक्षण व समीक्षात्मक अध्ययन
(मेवाड़ व मारवाड़); (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) पृ.-217-219



तमघ पंवार
सहायक प्रोफेसर
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

संस्कृतियों का समन्वय— रामदेवरा(रूणीचा)

रामदेवरा जैसलमेर जिले में पोकरण तहसील में पोकरण से 10 किलोमीटर उत्तर दिशा की ओर स्थित है। संत श्री बाबा रामदेवजी ने स्वयं इस नगर की स्थापना की थी और बाद में यहां पर जीवित समाधि ले ली थी। आज यह पश्चिमी राजस्थान का सबसे बड़ा धार्मिक स्थल है। लाखों लोग यहां दर्शनार्थी के रूप में आते हैं। यहां पर हर दिन नवीन संस्कृतियों का मिलन होता है। संत श्री बाबा रामदेवजी एक सिद्ध पुरुष थे जिन्होंने इस नगर को आबाद किया एवं आमजन को भाईचारें व सद्भावना का संदेश दिया।

भारत में अधर्म का नाश करने व धर्म की स्थापना करने के लिए समय—समय पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया है। इसी प्रकार पश्चिमी राजस्थान में भी मुस्लिम धर्म का प्रचार—प्रसार एवं अत्याचार बढ़ने लगा तथा भैरव राक्षस की अत्याचारी प्रवृत्ति से पिडीत आमजन मानों किसी एक पराक्रमी, एक महान सिद्ध पुरुष के इन्तजार में थी और इसी समय एक महान सिद्ध पुरुष का आविर्भाव हुआ और वे थे संत श्री बाबा रामदेवजी।

पाबू हड़बु रामदेव,मांगलिया मेहा।

पांचों परी पधारजों, गागादे जेहा।

संत श्री बाबा रामदेव जी के जन्म स्थान एवं जन्म तिथि के बारे में काफी विवाद है। इनका जन्म रणसी जी के पुत्र अजमाल जी एवं उनकी पत्नी मैणादे के घर हुआ था। श्री लक्ष्मीदत्त जी बाहरठ ने रामदेवजी की जन्म तिथि सं. 1462 भादवा सूदी दूज (शनिवार) बताई है। एक प्राचीन हस्त लिखित छन्द से यह सिद्ध होता है कि रामदेव जी का जन्म चैत्र श्शुक्ला पंचमी(सोमवार) को हुआ था—

तिथि पंचम सुध मुहरत ते दिन सोम वनातसरतली।

खट रित सिरोमण रित महासुभ, फूल अनेक वसंतफली।।

स्वयं रामदेवजी के एक पद में भी इसी तिथि का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—

समत चतुरदस साल नवमें श्री मुख आप जगायो।

भणै रामदेव चेत सुद पांचे अजमल घर में आयो।²

संत श्री बाबा रामदेवजी के जन्म से संबंधित अनेक कथाओं का जिक्र अनेक ग्रन्थों में आता है। बाबा श्री रामदेवजी के जन्म के पीछे अनेक कारण बताये गये हैं। अनेक लोग यह मानते हैं कि पश्चिम में मुस्लिम धर्म के बढ़ते प्रचार— प्रसार को रोकने एवं वैष्णव धर्म की स्थापना करने के लिए उनका जन्म हुआ। इसी प्रकार अनेक लोग यह मानते हैं कि पोकरण क्षेत्र में भैरव राक्षस के बढ़ते अत्याचारों को रोकने के लिए भगवान द्वारिकाधीश ने स्वयं जन्म लिया। कई लोग यह भी मानते हैं कि पश्चिमी राजस्थान में बढ़ते भेदभाव छुआछुत की प्रवृत्ति को रोकने के लिए भगवान ने जन्म लिया। डॉ. सोनाराम विश्नोई अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि “ बाबा रामदेव सम्बन्धी लोक काव्य, कथाओं के अनुसार अपनी वृद्धावस्था तक अजमाल जी सन्तान— हीन रहे। एक दिन अजमाल जी प्रातः कालीन भ्रमण के लिए वन की ओर जा रहे थे तब उन्हें देख कुछ किसान लोग जो खेत जोतने जा रहे थे, अपने अपने घरों की ओर वापस लौटने लगे। अजमालजी द्वारा पुछे जाने पर उन्होंने बताया कि ‘निपुत्र’ का मुंह देखना अपशकुन होता है, इसलिए वे वापस जा रहे हैं। इस घटना से ही पुत्रहीन अजमालजी को गहरी ठेस पहुंची और वे ग्लानि तथा क्षोभ के मारे पुत्र प्राप्ति के वरदान हेतु वहीं से द्वारका चले गये।

संगवी आय सहर में बसिया, सपने में रिणछोड़ कहे।

पिंडत अजेसिंह द्वारका पधारो, बिन लिखिया बाबो पुतर देवे।।

कहा जाता है कि अजमालजी अपनी व्यग्रता के कारण जूते पहिने हुए ही मंदिर में प्रविष्ट होने लगे तब पुजारी लोगों द्वारा मना किये जाने पर वे उनके प्रति क्रुद्ध हो गये और उनको ललकारते हुए उन्होंने एक पत्थर का गोला मूर्ति के सिर पर दे मारा और कहा कि यदि ये भगवान होते तो इनमें से कोई न कोई प्रतिक्रिया अवश्य होती। उनकी इस प्रकार की क्रिया से उन्हें पागल समझ कर पुजारी लोग भयभीत हो गए और अपनी प्राण रक्षा के लिए वहां से भाग खड़े हुए। अजमालजी ने दौड़कर उन्हें पकड़ लिया और भगवान के सम्बन्ध में पूछा। पूजारियों ने शीघ्र मुक्ति की इच्छा से उनसे कह दिया कि भगवान का निवास सागर में है और उन्होंने अपने भक्त पीपाजी को वहीं दर्शन दिया था। अजमालजी इतना सुनते ही सागर में कुद पड़े और आश्चर्य की बात है कि पानी में उन्हें मार्ग दे दिया और वे सागर के नीचे पहुंचे तो उन्हें भगवान द्वारकाधीश के दर्शन हुए।

वहां भगवान के सिर पर बंधी पट्टी को देखकर अजमाल जी ने उसका कारण

पूछा तो ज्ञात हुआ कि उन्होंने मूर्ति पर जो पत्थर का गोला दे मारा था उसी से मस्तक पर चोट लग गई है। अपने अपराध का पता लगने पर अजमाल जी ने क्षमायाचना की। द्वारकाधीश प्रसन्न हो गए और अजमालजी से समस्त विवरण जानने के पश्चात् आदेश दिया कि वे अपने बड़े पुत्र का नाम 'वीरमदेव' रखें।

पुत्र के पहले 'बड़े' शब्द के प्रयोग में अजमालजी को कुछ रहस्य दिखाई दिया और साथ ही उनकी जिज्ञासा भी तीव्र हो उठी कि यदि बड़ा पुत्र वीरमदेव होगा तो छोटा भी कोई अवश्य होगा, तभी तो बड़े शब्द की सार्थकता होगी। उनके कुछ पूछने के पूर्व ही द्वारकाधीश ने उनका संशय निवारण करते हुए उनको यह वचन दिया कि वे स्वयं उनके पुत्र के रूप में प्रकट होंगे। कहा जाता है कि वे पौ फटने से पूर्व ही सीधे अपने गांव पहुंच गये।

बैस विमाण घरां ने परूटां साचे सायब सूं सीख करै।

पौ उगै रो भयो परगलौ, पिंडत पोकरण में पांव धरै।

घर आकर अजमाल जी ने अपनी रानी 'मैणादे' को प्रभु मिलन का शुभ सन्देश सुनाया। यथा समय उन्हें एक पुत्र की प्राप्त हुई, जिसका नाम उन्होंने भगवान के आदेशानुसार 'वीरमदेव' रखा। इसी के कुछ मास पश्चात् चैत्र मास की शुक्ल पक्षीय पंचमी, वि.सं. 1409 में बाबा रामदेवजी अवतरित हुए।³

सोवणी द्वारका सूं आयो गिरधारी, तुंवरां रो विड़द बधायों हद भारी।

हर सरणे भाटी हरजी बोले, धोली धजा रो धणी है गिरधारी।।

आमजन में संत श्री बाबा रामदेवजी एक अवतारी पुरुष के रूप में विख्यात है। जन्म के कुछ समय बाद ही उन्होंने अनेक चमत्कारी कार्य करने प्रारम्भ कर दिये। उनके द्वारा किये गये चमत्कारी कार्य 'पर्चा' के नाम से जाने जाते हैं। उनके 13 पर्चे अलौकिक माने जाते हैं। पहला पर्चा उन्होंने अपनी माता मैणादे को दिया। माता मैणादे चूल्हे पर दूध गर्म कर रही थी कि अचानक दूध उफान ले आया। माता भागती जब तक पालने से ही उन्होंने हाथ लम्बा किया और इतने गर्म दूध को अपने नन्हें हाथों से रोक लिया, माता आश्चर्यचकित रह गयी।

पहलो— पहलो पर्चा माता मैणादे ने दिनों, उफनतों रे दूध ठम्भायों झटके।।

दूसरा पर्चा उन्होंने उनके लिये बनाकर लाया एक कपड़े का घोड़ा उस दर्जी को दिखाया क्योंकि वो नकली घोड़ा बनाकर लाया था परन्तु रामदेवजी के उपर बैठते ही घोड़ा आकाश में उड़ गया। अजमाल जी एवं माता मैणादे ने दर्जी को जैल में डाल दिया क्योंकि उनको लगा कि यह कोई जादू वाला घोड़ा बनाकर लाया था—

चमत्कार अवतार का व्याप रहा ब्रह्मण्ड।
 भुजा पसारी पालने राख्यों दूध अखण्ड।।
 मेरे जो अपराध हो क्षमा करो महाराज
 काल कोठरी बन्ध को काटो मेरे आज।।⁴

इसी प्रकार अनेक अलौकिक कार्यों में भैरव राक्षस का वध, सारथीया खाती को पुनर्जीवित करना, बोयता महाजन के डुबते हुए जहाज को बचाना, लखी बनजारा को चमत्कार दिखाना, पूगलगढ़ के पड़िहारों का गर्व नाश करना, नेतलदे की पंगुता दूर करना, रानी नेतलदे की सखियों को चमत्कार दिखाना, सुगना बाई के बालक को पुनर्जीवित करना, रानी नेतलदे को चमत्कार दिखाना आदि है।

यद्यपि रामदेवजी का व्यक्तित्व अलौकिकता से मण्डित है तथापि मानवरूप में अवतरित होने के कारण बहुत से लौकिक कार्य भी उनके द्वारा सम्पन्न हुए जो आदर्शों से रंजित और लोकमंगल की भावना से परिपूर्ण है।⁵ इसमें उन्होंने स्वयं अपने हाथों से एक नगर की स्थापना की जो आज 'रामदेवरा'या 'रूणीचा' के नाम से विख्यात है। उन्होंने वहां पर एक पर्चा बावड़ी का निर्माण करवाया जिससे रामदेवरा में पहले जल की सम्पूर्ण आपूर्ति होती थी। ऐसा माना जाता है कि इस बावड़ी में गंगा, यमुना एवं सरस्वती की धारा बहती थी। उनकी आरती में आता है कि—

गंगा यमुना बहे सरस्वती, रामदेवजी बाबा स्नान करें।।

इसके अलावा उन्होंने वहां पर एक तालाब का निर्माण करवाया जो आज रामसागर या रामसरोवर के नाम से विख्यात है।

बाबा रामदेवजी का विवाह "नैतलदे", अमरकोट के राजा दलजी सोढ़ा की पुत्री से हुआ। लोकमान्यता के अनुसार वह रूक्मणी का अवतार मानी जाती है। कहा जाता है कि नैतलदे पैर से अपाहिज थी, लेकिन विवाह में फेरों के वक्त रामदेवजी के प्रभाव से उनकी पंगुता दूर हो गई।⁶

संत श्री बाबा रामदेवजी का एक उच्च कुलीन वर्ग में जन्म लेने के बावजूद भी उन्होंने छुआछुत एवं भेदभाव को त्याग कर अछुतों का संग किया। उन्होंने निम्न वर्ग की कन्या डाली बाई को अपनी बहन बनाया और स्वयं के घर रखा।⁷ उन्होंने अनेक बार निम्न वर्ग के लोगों के साथ भोजन किया। इनको कई बार सामाजिक अपमान एवं जातिय भ्रष्टता का आरोप भी सहना पड़ा परन्तु उन्होंने भेदभाव और छुआछुत को त्याग कर समाज में मानवीयता पर बल दिया। उनके अनुसार भारत की महान संस्कृति और गौरव की रक्षा तभी होगी जब जाति—पाति ऊंच—नीच, छुआछुत

आदि का भेद समाप्त होगा।⁸

सबसू पैलां म्हे इक हूतौ, पछै ह्यो है बखेडों।

सगल्ला समेट एक में करलौ, औ सगल्लौ रूप हमारो।⁹

संत श्री बाबा रामदेवजी का साहित्य विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उनका सा. हित्य उनके रात्रि जागरण में गाया जाता है जिसे 'जम्मा' कहा जाता है। उनका साहित्य गाने का अधिकार उन्होंने केवल निम्न जाति के लोग मेघवाल जाति को ही दिया था जिसे आम भाषा में 'रिखिया' कहा जाता है। इन रिखियों के माध्यम से रामदेवजी के भजन रात्रि जागरण(जम्मा) में गाये जाते हैं। प्रमुख भजन गाने वालों को 'भजनी' कहा जाता है। रामदेवजी स्वयं ने अपने मुख से जो भजन गाये उन्हें 24 प्रमाण कहा जाता है। इन प्रमाणों में गुरु की महता, आत्मा-परमात्मा का मिलन, निर्गुण-निराकार परब्रह्म की माया, मोक्ष मार्ग, भक्ति की अनेक पद्धतियां, योग साधना, आत्म ज्ञान, आत्म धर्म, जगत के नियम, भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी आदि के बारे में बताया है। ये सभी प्रमाण उन्होंने स्वयं गाये थे-

बाजे साध करणी बिना कुड़ा, वह मुक्ति नहीं पावे।

कहे 'रामदेव' सुणों भाई साधों, आप श्री मुख गावें।¹⁰

संत श्री रामदेवजी ने गुरु की महता को सबसे अधिक महत्व दिया है। उनका मानना है कि गुरु के बिना ज्ञान संभव ही नहीं है। गुरु ही है जो जीव को मोक्ष के द्वार तक ले जाता है, बिना गुरु के ज्ञान निरर्थक है। गुरु ही मोक्ष संभव करवा सकता है। गुरु प्रमाण में उन्होंने बताया है कि-

ज्ञानी गुरुजी भव दुःख मेटे, अज्ञानी उलझावें।

मंगता हो चेला ने मांगे, भूल्या औरां ने भुलावै।।

समरथ गुरु शांसों सब मेटे, निजमन हो कोई ध्यावे।

लट भंवरा ज्यू गति हो जावे, होय भृग्ड़ उड़ जावे।¹¹

श्री रामदेवजी ने 1515 ई. में भादवा सूदी 11 के दिन रूणीचा गांव के पास रामसरोवर तालाब पर सब रूणिचे वासियों के सामने जीवित समाधि ली।¹² कहा जाता है कि समाधि के बाद ही उन्होंने अपने मामा के लड़के को दर्शन दिये। वहां के लोगों को विश्वास नहीं हुआ कि वो कैसे दर्शन दे सकते हैं। अविश्वासी लोगों ने उनकी समाधि को वापस खोदा परन्तु वहां पर कुछ फूलों के सिवा उनको कुछ भी नहीं मिला।

अपनी समाधि के लगभग 300 साल बाद रामदेवजी के अनन्य भक्त हरजी भ. ाटी को उन्होंने दर्शन दिये। हरजी भाटी का जन्म रूणीचे के पास एक मामूली ढाण

पी में हुआ था। ये भाटी राजपूत थे। इनके पिता उगमसिंह जो रामदेवजी के प्रिय भक्त थे। इनके पिता की छाप इन पर पड़ी। हरजी जब 14 वर्ष के हुये तब इनके पिताजी का देहान्त हो गया। ये दीन हालत में थे और बकरियां चराते थे। वहीं पर श्री रामदेवजी ने इनको साधु के वेश में दर्शन दिये।¹³

वन खण्ड अजिया चारता, मन में नई डरिया।

अविनाशी मिलिया अवसरां, सिर पर कर धरिया।।

संत श्री बाबा रामदेवजी के चमत्कारी पर्वों से प्रभावित होकर उनकी परीक्षा लेने के लिए मक्के से पांच पीर रूणीचा पधारें। इनको भी बाबा रामदेवजी ने अद्भूत चमत्कार दिखाये जिससे प्रभावित होकर उन्होंने कि “हम तो पीर है आप तो पीरों के भी पीर है”, इस कारण रामदेवजी पीर भी कहलाते हैं। पीर शब्द मुस्लिम परम्परा का है जिसका अर्थ है — सिद्ध महात्मा। रामदेवजी की यह विशिष्टता है कि उन्हें हिन्दू एवं मुसलमान दोनों मान्यता देते हैं। हिन्दुओं ने उन्हें देव तथा मुसलमानों ने उन्हें पीर कहा है।¹⁴

बाबा रामदेवजी साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रतीक हैं। रूणीचा में हर जाति के लोग जाति-पांति, भेदभाव को छोड़कर दर्शन करने आते हैं। राजस्थान के अलावा गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा आदि राज्यों के लोग पैदल यात्रियों (जातरू) के रूप में बाबा के दर्शन करने आते हैं। साम्प्रदायिक सद्भाव का यह मंदिर हर दिन दर्शनार्थियों से भरा रहता है। विशेष रूप से यहां पर साल में भादवा के महीने में सबसे बड़ा मैला लगता है। अनेक यात्री दण्डवत् यात्रा करते हुए यहां पहुंचते हैं। हर धर्म एवं हर जाति के लिए बाबा श्री रामदेवजी का द्वार खुला है। माना जाता है कि साम्प्रदायिक भावना के लिए ही परमेश्वर ने स्वयं अवतार लिया था।

“बापजी हो पीर कहूं पर हो परमेश्वर, जती सति जूना जोगीसर।

आसण धार आबू अचलेसर, केई-केई कथग्या थाने जूना कवेसर।।”

राजस्थान में यह लोकदेवता पश्चिम में पश्चिमाधीश के नाम से विख्यात है। इस साम्प्रदायिक सद्भावना के प्रतीक लोकनायक बाबा श्री रामदेवजी में देवत्व एवं पीरत्व का अनुपम समन्वय हुआ है। उन्हें देव और पीर दोनों के रूप में पूजा जाता है। फलस्वरूप यहां पर हमें हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

“अला आदम अलष तूं राम रहीम करीम

गोसांई गोरख तूं तोरई नाम तसलीम।।

तसलीम नाम साहिब तौरा, वखत मोरा अब खुल्यां
हजरति पाया ध्यान ध्याया, अल्लाहु अल्ला इल्ला।।¹⁵

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कि पश्चिमी राजस्थान का यह स्थल(रामदेवरा) संस्कृतियों के समन्वय का एक खजाना है। जहां हर समय हर दिन नई-नई संस्कृतियों का मिलन होता है। यह स्थल धर्म के साथ-साथ हमें रूढ़िवादिता की वास्तविकता से अवगत करवाता है। बाबा रामदेवजी के प्रति आस्था हर भक्त को रूणीचा की ओर खींच लाती है। पश्चिमी राजस्थान में श्री रामदेवजी कुल देवता के रूप में पूजे जाते हैं इनके प्रतीक चिन्ह को 'पगलिया'(पद्चिन्ह) कहा जाता है। माना जाता है कि जो इनका श्रद्धा से नाम लेता है उसकी मनोकामना पूर्ण होती है। तत्कालीन मुस्लिम धर्म के बढ़ते अत्याचार को रोक कर इन्होंने भारतीय संस्कृति को स्थायी बनाये रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भेदभाव, जांपि-पांति, ऊंच-नीच, छुआछुत आदि सामाजिक मिथकों को तोड़कर इन्होंने आमजन में भ्रातृत्व व सद्भावना का संदेश हमारे सामने प्रस्तुत किया है।¹⁶

संदर्भ ग्रन्थ

1. जोगीदन बाहरठ— तंवर वंश का इतिहास, पृ. 16
2. विश्नाई, डॉ. सोनाराम—बाबा रामदेव इतिहास एवं साहित्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008, पृ. 27
3. वही, पृ. 25
4. स्वामी, रामप्रकाशजी— श्री रामदेव ब्रह्मपुराण, श्री सरस्वती प्रकाशन, अजमेर, पृ. 66
5. विश्नाई, डॉ. सोनाराम— पूर्वोक्त, पृ.80
6. शर्मा, डॉ. कुमुद—लोक नायक बाबा रामदेव— लोक धर्म एवं लोक परम्परा, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ. 47
7. वही, पृ. 41
8. वही, पृ. 123
9. विश्नाई, डॉ. सोनाराम—पूर्वोक्त, पृ. 260
10. स्वामी, गोकुलदास— बाबा रामदेवपुराण, श्री सरस्वती प्रकाशन, अजमेर, पृ. 23
11. वही. पृ. 28
12. बाहरठ, लक्ष्मीदत्त— श्री रामदेव लीलामृत, लक्ष्मीनारायण रणछोड़दास, जोधपुर, पृ. 42

हर्षवर्धन शर्मा
सीनियर रिसर्च फ़ैलो
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

राजस्थान में शैव परम्परा का विकास: मूर्तिकला एवं अभिलेखों से प्राप्त साक्ष्यों का तुलनात्मक अध्ययन

‘शिव’ से सम्बद्ध धर्म को ‘शैव’ कहा जाता है, जिसमें शिव को इष्टदेव मानकर उनकी उपासना किए जाने का विधान है। शिव के उपासक ‘शैव’ कहे जाते हैं। शिव तथा उनसे संबंधित धर्म की प्राचीनता प्रागैतिहासिक युग तक जाती है। शैव पूजा के आविर्भाव के स्रोत सिन्धु घाटी की आद्यैतिहासिक सभ्यता से प्राप्त होते हैं, जहां लिंग तथा मानव-दोनों प्रतीक रूपों में शिव पूजा का विषय था। सैन्धव सभ्यता की खुदाई में मोहनजोदड़ों से एक मुद्रा पर पद्मासन में विराजमान एक योगी का चित्र मिलता है, जिसके सिर पर त्रिशूल जैसा आभूषण तथा तीन मुख हैं। सर जॉन मार्शल ने इस देवता की पहचान ऐतिहासिक काल के शिव से स्थापित की है।¹ अनेक स्थलों से कई शिवलिंग भी प्राप्त होते हैं। इससे सूचित होता है कि यह भारत का प्राचीनतम धर्म था।

शिव की उपासना अनेक साहित्यिक एवं पुरातात्विक प्रमाणों से सिद्ध होती है। वैदिक साहित्य में ‘शिव’ के विविध रूपों एवं उनकी पूजा के कई उल्लेख मिलते हैं। भारत की प्राचीनतम आहत मुद्राओं, जिनमें से कुछ की तिथि ईसा पूर्व छठी-पांचवीं शती तक जाती है, के ऊपर भी शिव उपासना के प्रतीक वृषभ, नन्दिपद आदि चिन्ह मिलते हैं। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज डायनोसस² के नाम से शिव पूजा का उल्लेख करता है। अर्थशास्त्र से भी पता चलता है कि मौर्य युग में भी शिव की मूर्ति बनाकर पूजा किए जाने का उल्लेख मिलता है।

गुप्त राजाओं के समय में वैष्णव धर्म के साथ ही साथ शैव धर्म की भी महती उन्नति हुई। शिव की उपासना में मंदिर तथा मूर्तियां स्थापित की गईं। गुप्तकाल के पश्चात् भी शैवधर्म की उन्नति होती रही। वर्धनकाल में इसका समाज में काफी प्रचार था। बाणभट्ट तथा हेव्न्सांग दोनों ही इसका उल्लेख करते हैं। राजपूतकाल (700-1200ई.) में भी शैव धर्म समाज में अत्यधिक लोकप्रिय था। साहित्य तथा पुरातत्व, दोनों इसकी पुष्टि करते हैं। कई राजपूत शासक शिव के अनन्य उपासक थे तथा उन्होंने अनेक विशाल तथा भव्य मंदिरों का निर्माण करवाया। राजस्थान,

गुजरात, मध्य भारत, बंगाल, असम आदि सर्वत्र शिव मंदिर एवं मूर्तियां निर्मित की गईं। शैव धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त होने के पश्चात् भी शिवोपासना की निरन्तरता बाधित नहीं हो सकी।

राजस्थान में शैव धर्म का विकास:-

राजस्थान में शिव की देव के रूप में अर्चना बड़ी प्राचीन रही है। यहां प्र. गैतिहासिक काल से ही शिव-पूजा के साक्ष्य प्राप्त होने लगते हैं। कालीबंगा से प्राप्त सींगवाले मानव की आकृति के अवशेष सिन्धु घाटी की शिव मूर्ति के समान है। इसी तरह यहां का तांबे का बैल तथा घड़ों पर चित्रित सर्प, वृक्ष एवं शंकु, वर्तुल तथा छिद्रित पत्थर, शिवलिंग तथा स्त्री-योनि शिव और मातृदेवी की अराधना के प्रतीक हैं। इन्हीं प्रतीकों की देवत्व संज्ञा आने वाले युगों में स्पष्ट उभरती है।³ सिन्धु सभ्यता तथा सरस्वती, दृषद्वती एवं आहड़ सभ्यता के अवशेषों, ताबीजों, शंकु एवं वर्तुलाकार पत्थरों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि अनार्य शिव और आर्य शिव का सामंजस्य पशुपति, त्रिशूलधारी एवं त्रिनेत्र शिव में प्रचलित हुआ। शिव की आकृति के साथ सर्प, बैल, लिंग, जटा, भस्म का संयोग आर्य और अनार्य का सम्मिश्रण है। सम्भवतः राजस्थानी आदिवासियों से संबंधित होने से शिव का परिधान चर्म से जोड़ा गया है।

7वीं शताब्दी से शिव- पूजा और शिव- मूर्ति मंदिरों में स्थापित करने की परिपाटी राजस्थान में बड़ी प्राचीन रही है। प्रतिहार, सिसोदिया, राठौड़ वंशीय शासकों ने तथा समृद्ध परिवारों ने यहां अनेक शिवालय बनाये तथा उनकी अर्चना की सुव्यवस्था की। एकलिंग, गिरिपति, समाधीश्वर, चन्द्रचूडामणि, भवानीपति, अचलेश्वर, शम्भु, पिनाकिन, स्वयम्भु आदि विविध नामों से शिवपूजा राजस्थान में प्रचलित रही है। इन विविध रूपों में शिव सर्वदृष्टा और कर्तारूप में भी है। उनके स्वरूप में सृष्टि के पालन, संहार तिरोभाव, प्रसाद एवं अनुग्रह की अपेक्षा निहित है।⁴ एकलिंग भगवान की प्रतिमा और शिवालय स्थापित करने का श्रेय बापा रावल को है। इनकी पूजा का प्रचलन मेवाड़ में प्राचीनकाल से आज तक देखा जाता है। शिव को अर्द्धनारीश्वर के रूप में भी पूजा जाता था जैसा कि आबानेरी, ओसियां आदि की मूर्तियों से प्रमाणित है।⁵

राजस्थान में शैव मूर्तियां:-

हिन्दू त्रिमूर्ति में विष्णु के बाद दूसरे महत्वपूर्ण देव शिव है। सभ्यता एवं संस्कृति के आरम्भिक काल से ही शिव पूजा के दो रूपों में प्रचलन के साक्ष्य प्राप्त होते हैं— (1) लिंग रूप में तथा (2) मानव रूप में। राजस्थान में शिव के इन दोनों प्रचलित रूपों की मूर्तियां प्राप्त होती हैं। प्रारंभिक लिंग रूप पर शिव की आकृति सामान्यतः

यक्षाकृति के समान ही अंकित की जाती थी। शिव को यक्ष रूप में शिवलिंगों पर अंकित करने की परम्परा राजस्थान में उत्तर गुप्तकालीन शिवलिंगों तक निरंतर प्राप्त होती है। गामड़ी⁶(भरतपुर) में एक शिवलिंग पर दो बृहदोदर यक्ष अंकित है। यह द्वि मुख लिंग का उदाहरण है। इस प्रकार के शिवलिंग अत्यन्त विरल है। राजस्थान में एक अत्यन्त सुन्दर, चतुर्मुख शिवलिंग कन्सुआ(कोटा) में है। इस मंदिर की तिथि 8वीं शताब्दी के एक अभिलेख के आधार पर निश्चित है, जो मंदिर के निर्माण के समय यहां लगाया गया था। शिवलिंग पर उत्कीर्ण मुख शिव की प्रकृति के विभिन्न पक्षों के प्रतीक है, उनकी मुखाकृति भी परस्पर भिन्न तथा नाम के अनुरूप विशेष प्रकृति की द्योतक होती है।⁸

मानव रूप में शिव की मूर्तियों को सौम्य तथा उग्र दो पक्षों में चित्रित किया गया है। शिव की सौम्य मूर्तियों में पौराणिक कथाओं पर आधारित विषयों में से केवल रावण-अनुग्रह विषय ही राजस्थान की मूर्तिकला में प्रचुरता से प्राप्त होता है। जिन मूर्तियों का कोई पौराणिक आधार नहीं है, उनमें उमा-माहेश्वर तथा कल्याण-सुन्दर विषय राजस्थान में प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं। राजस्थान में उमा-माहेश्वर मूर्तियां नागदा (उदयपुर), झालरापाटन (झालावाड़) बाडोली (कोटा), कामां (भरतपुर) तथा अन्य भागों से जहां शैव धर्म लोकप्रिय था, प्राप्त हुई है। वैष्णव मंदिरों⁹ एवं शाक्त मंदिरों¹⁰ में भी पंचायतन पूजा की परम्परा के अनुसार उमा- माहेश्वर मूर्तियां भी उत्कीर्ण की गई थी।

शिव के भयंकर रूप को प्रस्तुत करने वाली मूर्तियां अधिक प्रचलि नहीं थी जैसा कि साहित्य एवं मूर्तिकला में अत्यन्त कम उदाहरणों से अनुमान किया जा सकता है। राजस्थान के शैव मंदिरों में शिव के त्रिपुरान्तक तथा भैरव रूप को प्रस्तुत करती हुई मूर्तियां अवश्य उत्कीर्ण की गई हैं। त्रिपुरान्तक मूर्ति के उदाहरण नीलकंठ (अलवर), बाडोली (कोटा) तथा रामगढ़ (कोटा) के शैव मंदिरों से प्राप्त होते हैं। राजस्थान में चन्द्रभागा (7-8 वीं शताब्दी ई.) के समीप नवदुर्गा के मंदिर में संरक्षित नटराज शिव की मूर्ति भी इस क्षेत्र में शैव धर्म के प्रभाव को इंगित करती है। शिव के एक अन्य अवतार लकुलीश, जो पाशुपत शैव धर्म के संस्थापक थे, की मूर्तियां राजस्थान के विभिन्न भागों से प्राप्त हुई हैं, जो शैव धर्म की निरंतरता को प्रदर्शित करती हैं। लकुलीश के मंदिर का सबसे प्राचीन उदाहरण चन्द्रभागा(झालरापाटन) 7 वीं शताब्दी ई. के शीतलेश्वर मंदिर के¹¹ ललाटबिम्ब पर उत्कीर्ण लकुलीश मूर्ति में मिलता है। इसके आधार पर यह कहा जा सकेगा कि लकुलीश की मूर्तियों का अंकन एवं पूजन 7वीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था तथा लकुलीश शैव मंदिरों में प्रमुख देव के रूप में अधिष्ठित होने लगे थे। यद्यपि गर्भगृह का प्रमुख पूजा प्रतीक अभी भी

लिंग था। राजस्थान में लकुलीश पूजा के प्रमुख केन्द्र एकलिंग(उदयपुर), बाडोली(कोटा) तथा चन्द्रभागा(झालरापाटन) थे परन्तु पश्चिमी राजस्थान के अन्य भागों में भी लकुलीश मूर्तियां प्राप्त हुई है।

इस प्रकार राजस्थान के भिन्न-भिन्न भागों से शिव के विविध रूपों की मूर्तियां प्राप्त होती हैं, जो इन क्षेत्रों में शैव परम्परा के प्रचलन की ओर इशारा करती है। इन मूर्तियों के प्राप्ति स्थल यह दर्शाते हैं कि जनसामान्य में शिव की पूजा अत्यन्त लोकप्रिय थी। किंतु इन मूर्तियों के समीप प्राप्त होने वाली अन्य प्रतिमाएं जैसे वैष्णव, शाक्त इत्यादि यह भी प्रकट करती है कि अन्य धर्म तथा सम्प्रदाय भी शैव धर्म के साथ-साथ प्रचलन में थे। उत्तरी भारत के अन्य भागों के समान ही राजस्थान में वैष्णव मंदिरों की अपेक्षा शैव मंदिरों की संख्या कम है। इसका कारण शैव धर्म का राजधर्म के रूप में कम प्रचलित होना ही था।¹²

आभिलेखिक साक्ष्यों में शैव धर्म:-

आभिलेखिक साक्ष्यों के अन्तर्गत पूर्व मध्यकालीन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि राजस्थान में शिव की अर्चना एकलिंग, गिरिपति, समाधीश्वर, चन्द्रचूडामणि, भवानीपति, अचलेश्वर, शम्भू आदि विविध नामों से की जाती थी और आज भी की जा रही है। मंडोर के शिलालेख¹³ (685ई.) का आरंभ ही 'ॐ नमः शिवाय' से होता है, जो शैव धर्म की तत्कालीन समाज में उपस्थिति का द्योतक है।

शंकरघटा के लेख के प्रारंभ में भी शिव की वन्दना की गई है।¹⁴ यह भी शैव धर्म पर प्रकाश डालता है। कल्याणपुर का लेख (7-8वीं शताब्दी), बुचकला शिलालेख (815ई.), प्रतापगढ़ शिलालेख (946ई.) आदि से भी शैव धर्म की समाज में प्रगति का पता चलता है। उदयपुर में एकलिंग जी के मंदिर से कुछ ऊंचे स्थान पर लकुलीश के मंदिर में लगा हुआ शिलालेख, जिसे नाथ प्रशस्ति (971 ई.) भी कहते हैं, से पाशुपात योग-साधना करने वाले कुशिक योगियों तथा उस सम्प्रदाय के अन्य साधुओं का भी हमें परिचय मिलता है, जो एकलिंगजी की पूजा करने वाले तथा उक्त मंदिर के निर्माता कहे गए हैं। यह प्रशस्ति लकुलीश सम्प्रदाय की स्थिति को स्पष्ट करती है।

बाद के समय में कई शिलालेखों, ताम्रपत्रों, दान-पत्रों आदि से भी शिव की उपासना किए जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन आभिलेखिक साक्ष्यों के माध्यम से राजस्थान के अलग-अलग क्षेत्रों में शैव परम्परा के विकास का जानने में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है, जिसकी पुष्टि साहित्यिक साक्ष्य भी करते हैं। यद्यपि इन अभिलेखों में केवल शैव धर्म का ही वर्णन नहीं मिलता अपितु वैष्णव, शाक्त, जैन

आदि परम्पराओं के प्रचलन के साक्ष्य भी प्राप्त होते हैं किन्तु फिर भी इनके द्वारा शैव धर्म की प्रगति का आंकलन करने में अत्यधिक मदद मिलती है।

ऊपर किए गए विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान में शैव परम्परा की उत्पत्ति एवं विकास का निरूपण करने में राजस्थान की शैव मूर्तियाँ एवं आभिलेखिक साक्ष्य महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन मूर्तियों एवं आभिलेखिक साक्ष्यों को पृथक-पृथक करके नहीं अपितु एक साथ लेकर ही हम शैव धर्म के विकास को समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ एकलिंग मंदिर के 971 ई. तथा 1274-1296 ई.¹⁵ के अभिलेख, पालड़ी(उदयपुर) के वामेश्वर मंदिर का 1116 ई. का अभिलेख¹⁶ तथा एकलिंग, चित्तौड़गढ़¹⁷ से प्राप्त आठवीं शताब्दी की लकुलीश प्रतिमाएं यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि आठवीं शताब्दी में लकुलीश की पूजा प्रचलित एवं लोकप्रिय थी तथा दसवीं शताब्दी तक रही।

साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से यह भी ज्ञात होता है कि प्रागैतिहासिक काल से शिव-पूजा की परंपरा आरंभ होकर ऐतिहासिक काल के विभिन्न सोपानों से होती हुई आज भी निर्बाध रूप से राजस्थान की मरुभूमि पर जारी है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मार्शल, मोहनजोदड़ों एण्ड दि इन्डस सिविलाइजेशन, लंदन, 1931, पृ 52-53
2. सुधाकर चटोपाध्याय, इवोल्यूशन ऑफ थीइस्टिक सेक्ट्स इन एनशियंट इण्डिया, पृ.4
3. इंडस सिविलिजेशन, पृ. 65-97
4. भावनगर इन्स. भाग-2, जी.एन. शर्मा, राजस्थान का इतिहास, भाग1 पृ. 498-499
5. राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ. 387-390
6. रतनचन्द्र अग्रवाल, 'गामड़ी'(भरतपुर)का अद्वितीय शिवलिंग, शोध-पत्रिका12, (1) 1972, पृ67-70
7. एफ. कीलहार्न, "कन्सवा स्टोन इन्सक्रिपशन ऑफ शिवगण"दि मालव ईयर 795 एक्सपायर्ड (738-739ई.) इण्डियन एण्टीकवेरी, 12, 1890, पृ. 55-62
8. कैमरिश, " दि इमेज ऑफ महादेव इन दि केव टेम्पल ऑन एलीफेन्टा आईलेण्ड", एन्शेंट इंडिया, 4, 1946, चित्र 1-4
9. आहड़ तथा नागदा के वैष्णव मंदिरों के गर्भगृहों की प्रधान ताखों में तथा चित्तौड़गढ़ के सूर्य मंदिरों में उमा-माहेश्वर की प्रतिमाएं अद्यतन अपने पूर्व स्थान पर हैं।
10. ओसिया के सचिया माता मंदिर के एक गौण मंदिर में उमा-माहेश्वर की प्रतिमा अपने स्थान प्रतिष्ठित है।
11. जेम्स फर्ग्यूसन एण्ड जेज बर्जेस, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर, पृ. 449
12. सुधाकर चटोपाध्याय, इ.थी.से.ए.इ., पृ. 1-2

कोटा की कला में शाक्त मूर्तियाँ का वैभव

मनुष्य के उदय के साथ ही शक्ति की पूजा हुई। चाहे वह प्राकृतिक शक्ति हो या प्रकृति। मानव की सभ्यता के प्रारंभ से ही मातृ देवी की मूर्त कल्पना को मानवीय व प्रतीकात्मक रूप में मान्यता मिली। क्योंकि प्रकृति आश्रयदाता रही उसी का संरक्षण

मानव को मिला। इसी आश्रयदात्री को किसी ना किसी रूप में प्राप्त हुआ। सिन्धुघाटी के अवशेषों से प्राप्त विभिन्न आकार के गोलाकार पत्थर, पकाई हुई मूर्तियों के ठीकरों पर अंकित आकृतियाँ तथा छोटी-छोटी स्त्री मूर्तियाँ सभ्यता के आदिकाल में भी पूजा सृष्टि के स्त्री तत्व की ओर संकेत करती हैं। मिश्र, ईरान, मेसोपोटामिया में मातृ देवी की कुरूपाकृति बनाई जाती थी। शक्ति (शिव की पत्नि) के उग्र व सौम्य दोनों भावों को मूर्तिकला में उत्कीर्ण किया गया है। वैदों से स्त्री तत्व की कल्पना कई रूपों में की गई है जैसे वाक्, अदिति, उषा, सरस्वती, अम्बिका, दुर्गा, कात्यायनी, लक्ष्मी आदि देवीयों का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की शक्तियों के विविध रूप मातृ पूजा के प्रमुख बिन्दु हैं। त्रैतिरीय आरण्यक में तो रुद्र का अम्बिकापति के रूप में उल्लेख है। गुप्तकालीन कृति देवी महात्म्य विविध शक्ति रूपों तथा अन्य देवीयों का महिषमर्दिनी रूप में समन्वय करता है। उत्तर गुप्तकाल में शक्ति की पूजा विविध रूपों में प्रचलित थी। पहला रूप भयानक था जिसमें महिषमर्दिनी चामुण्डा तथा सप्तमातृका के रूपों से संयुक्त थी। दूसरा रूप शान्त था जिसमें क्षेमंकरी, सरस्वती, लक्ष्मी (गज-लक्ष्मी), शृंगार दुर्गा तथा तपस्यारत पार्वती आदि शक्ति की उपासना के रूप थे। तीसरा रूप अभयदान का जिसमें महिषमर्दिनी, सरस्वती और लक्ष्मी के रूप में देवी क्रमशः कल्याण, ज्ञान तथा धन का दान करने वाली थी। इन स्वरूपों में देवी की पूजा सभी धर्मों व संप्रदायों द्वारा होती थी।

देवी का महिषमर्दिनी रूप :- महिषमर्दिनी का अर्थ महिष को मारकर विजय प्राप्त करने वाली देवी। महिषमर्दिनी देवी सभी देवताओं की उग्रता, शक्ति, क्रोध का

संयुक्त साकार रूप था। इनके स्वरूप का निर्माण देवताओं के क्रोध की अभिव्यक्ति की ज्वाला से हुआ और इस महाशक्ति स्वरूपों को अपने-अपने आयुध, शक्तियाँ, आभूषण, रत्नाभरण एवं वाहन प्रदान किए। हिमवान से सिंह का वाहन, शिव ने त्रिशूल, विष्णु ने चक्र तथा वरुण ने शंख व पाश, वायु ने धनुष बाण, इन्द्र ने वज्र तथा घण्टा एवं काल ने असि व ढाल प्रदान किए। सागर के विभिन्न रत्नाभरण एवं कमल पुष्पों की माला, कुबेर ने पानपात्र तथा शेषनाग ने नाग हार प्रदान किया।

देवी महिषासुर पर आक्रमण करते हुए अपना एक पैर उसके ऊपर रखकर एक हाथ से उसकी पूँछ मरोड़ती हुई उसकी गर्दन में त्रिशूल घुसाते हुए उत्कीर्ण है। कभी-कभी महिषमर्दिनी मूर्तियों के साथ तोते की भी उपस्थिति (जगत मन्दिर) रहती है जो उसके लीला शुकप्रिया स्वरूप का घोटक है। महिषमर्दिनी के तीन स्वरूप राजस्थान में अधिक लोकप्रिय हुए।

1. महिष रूप में असुर का अंकन
2. महिष की कटी गर्दन से मानव रूप में निकलता हुआ असुर
3. मानव रूप में असुर देवी से युद्ध करता हुआ।

प्रथम प्रकार का अंकन चन्द्रभांगा (झालरापाटन) एवं बाड़ौली के मन्दिरों में बनाया गया है। यहां के मूर्तिकारों ने महिष को एक अलग प्रकार से उत्कीर्ण किया। बाड़ौली के महिषमर्दिनी मन्दिर की मूर्ति में देवी प्रत्यालीढ मुद्रा में असुर पर पैर रखे खड़ी है। असुर महिष रूप में अंकित किया गया है तथा उसका सिर कटा हुआ है। महिष के पैरों को मुड़ा हुआ व गिरता हुआ बनाया गया है। यह मूर्ति मंदिर के गर्भगृह में प्रतिष्ठित है जिसकी प्रभावली पर अत्यन्त सुन्दरता से मातृकाओं तथा देवी की अनुचरियों को असुर से यु(करते हुए अंकित किया गया है। मूर्ति के दोनों ओर स्तंभ व आकृतिया बनी हुई है तथा दोनों पार्श्वों में दो स्त्री आकृतियां है जो संभवतः मातृकाएँ हैं जो अन्य असुरों से युद्ध कर रही है। राजकीय संग्रहालय कोटा में भी महिषमर्दिनी की मूर्तियों का विशिष्ट संकलन है, क्रमांक संख्या 293 पर 10वीं सदी की एक मूर्ति है जिसका आकार "28 15" है। इसमें देवी भैंसे पर सवार है। उनके दूसरे पैर के नीचे एक पशु है जिसे उन्होंने अपने दाएँ पैर से दबा रखा है। मूर्ति अक्रामक मुद्रा में है और कहीं-कहीं खण्डित हो गई है।

जैन मतानुयायी भी मातृदेवी के परम भक्त थे तथा उसकी पूजा सच्चिया के नाम से की जाती थी जो महिषमर्दिनी का ही दूसरा नाम था। उदाहरण स्वरूप ओसिया (जोधपुर) के प्रसिद्ध सच्चिया माता मन्दिर में जैन तथा हिन्दु भक्त आज भी पूजा उपासना के लिए समान रूप से एकत्रित होते हैं। कैम्बे के जैन भण्डार से उपलब्ध "उपदेश माला लघुवृत्ति" नामक जैन पाण्डुलिपि जिसकी अनुकृति 1352 वि.स.(1295

ई.) में हुई थी, में एक दस भुजाओं वाली महिषमर्दिनी देवी का लघु चित्र है।

अहिंसा में विश्वास करने वाले जैन धर्म में देवी पूजा को सम्मिलित करने का कारण शाक्त संप्रदाय में देवी पूजा की लोकप्रियता, जैन धर्म के धर्मान्तरित अनुयायियों में उसका प्रचलन तथा मातृ पूजा का अतीत तथा निरन्तर अस्तित्व था।

सप्तमातृका स्वरूप :- सप्तमातृ का स्वरूप का सर्वप्रथम ऋग्वेद में विचार प्राप्त होता है। अग्नि की सात माताओं का उल्लेख तथा सप्तमातृकाएँ सोम रस के निमाण की देखरेख करती हैं। पौराणिक आधार पर सात मातृकाएँ हैं। ब्रह्माणी, महेश्वरी, का. 'मारी, वैष्णवी, वराही, इन्द्राणी और चामूण्डा । ये मातृकाएँ कुषाणकाल में अपना स्वरूप ग्रहण करती हैं।

राजस्थान में गंगाधार (झालावाड़) में 423 ई. का अभिलेख केवल मातृकाओं के निर्माण का ही उल्लेख करता है परन्तु इसमें मातृकाओं की संख्या का ज्ञान नहीं होता।

मातृणां च प्रमुदितघनात्यर्थं निर्हादिनीनाम्.....

गतमिदं डाकिनि सम्प्रकीर्णाम् वैशैश्यात्युग्रं नृपति सचिवो आकारयत् पुण्यहेतेतौः।”

अधिकांश मातृका मूर्तियाँ समूह में लगी पट्टिका पर उत्कीर्ण की जाती हैं। खड़ी या बैठी दोनों मुद्राओं में उत्कीर्ण हुई हैं। कभी-कभी बालक भी उनके साथ अंकित हैं। उनके पैरों में उनके वाहन भी अंकित किए जाते थे। दोनों पार्श्वों में वीरभद्र या शिव और गणेश बनाए जाते हैं। मूर्ति के क्रम में पहले शिव या वीरभद्र उसके बाद ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, इन्द्राणी और काली तथा उसके बाद गणेश का अंकन मिलता है। यह अधिकतर मन्दिरों के प्रवेशद्वार के सिरदल तथा नौ ग्रहों के साथ चौखट पर अंकित की जाती हैं। बाड़ौली के महिषामर्दिनी मन्दिर की प्रभावली पर ब्रह्माणी, महेश्वरी, व वैष्णवी मातृकाओं की प्रतिमा उत्कीर्ण हैं।

ब्रह्माणी :- ब्रह्माणी की प्रमुख विशेषता है कि उनके हाथों में अक्षमाला, कमण्डलु सुवा तथा हंस वाहन के रूप में हैं तथा ब्रह्मा के समान तीन मुख अंकित हैं। कभी-कभी एक बालक अंकित भी दर्शाया जाता है। इसकी मूर्ति बाड़ौली में देखी जा सकती है।

माहेश्वरी :- माहेश्वरी व चन्द्रलेखा से विभूषित, सर्पों का आभूषण धारण व त्रिशूल के साथ वृषभारूढ़ अंकन है। कौमारी :- यह मयूर या मुर्गों पर वाहन स्वरूप अंकित की जाती है।

वैष्णवी :- विष्णु की शक्ति का अंकन गरूड़ पर आयुध तथा शंख, चक्र, गदा

शार्डधनुष तथा असि लिए हुए अंकन है। इसका मन्दिर कलामण्डी (झालावाड़) से प्राप्त होता है।

वराही :- वराहमुख युक्त है, हाथ में महाचक्र तथा दृष्टा पर भू-देवी उठाए तथा एक मछली भी हाथ में बनाई गई है। वैसे इनका कोई वाहन नहीं है फिर भी कहीं-कहीं भैंसे का अंकन मिलता है।

नृसिंही :- नृसिंह की शक्ति नृसिंही कहलाती है प्रायः इसका स्वतंत्र अंकन नहीं मिलता।

ऐन्द्री :- इन्द्र की शक्ति है। यह हाथी पर आयुध व वज्रयुक्त तथा सहस्र आँखों वाली अंकित की जाती है। इनका अंकन प्रायः कम मिलता है।

चामुण्डा :- चामुण्डा का दूसरा नाम काली या कलिका भी है। यह अम्बिका से निसृत स्वरूप ही है। देवी महात्मय के अनुसार चामुण्डा ने रक्त की प्रायः एक बूंद से नए असुर को जन्म देने वाले रक्तबीज असुर का दमन करने में अम्बिका तथा अन्य मातृ देवीयों की सहायता की थी। इनके मुख वीभत्य भाव से युक्त तथा शरीर कंकाल व हाथों में असि, पाश, कपालयुक्त दण्ड, बलिये व नरमुण्ड की माला व सिंहाजिन धारण किए हुए उत्कीर्ण किया जाना चाहिए। इनके अन्दर घुसे उदर पर वृच्छिक लाछन रहता है साथ में पान-पात्र में मत्स्य अंकन तांत्रिक प्रभाव को दर्शाता है।

चन्द्रभांगा (झालरापाटन) के नवदुर्गा मन्दिर में तथा बाड़ौली के घटेश्वर मन्दिर की चामुण्डा की मूर्ति में व मानव के शवों पर नृत्य करते हुए उत्कीर्ण किया गया है। बाड़ौली की मूर्ति का निचला भाग टूट गया है फिर भी उसके पैर के नीचे मानव शव की आकृतियाँ हैं। चामुण्डा के गले में मुण्डमाला तथा मुकुट भी नरमुण्डों द्वारा शोभित कोटा है। सम्पूर्ण मूर्ति में भय व क्रोध को प्रदर्शित किया गया है। यह घण्टेश्वर मन्दिर की गर्भग्रहों की बाहरी भित्ति की ताखों पर उत्कीर्ण है। यह 11वीं शती की मूर्ति है। इसका एक हाथ कपालधारी दूसरे में धनुष है। यह कंकालरूपा एवं कृशोद्री है। इस मूर्ति का मुख विक्रत, भयंकर नैत्र, शरीर मांसरहित, स्तन लटके हुए एवं कृश उदर है। देवी सुखासन मुद्रा में आसीन है।

कोटा राजकीय संग्राहलय में 10वीं शताब्दी की एक मूर्ति अम्बिका देवी की है जिसकी क्रम संख्या 532/5 है। यह आम्रलुम्बी युक्त अम्बिका है। इसका आकार 19 38 है। देवी सिंह पर विराजमान है तथा उनकी गोद में बालक है। मूर्ति में वात्सल्य भाव प्रदर्शित किया गया है। बालक का मुंह भग्न है। एक अम्बिका की मूर्ति बारां से प्राप्त है जो 9वीं शताब्दी की है जिसका क्रमांक 65/54 है।

चामुण्डा के काली स्वरूप की मूर्ति नीलकण्ठ के महादेव के मन्दिर में भी रखी हुई है। यह काले पत्थर की बनी सुन्दर व छोटी मूर्ति है।

सरस्वती :- विद्या, बुद्धि और संगीत की अधिष्ठात्री मां सरस्वती की प्रारंभ से ही पूजा की जाती है। प्रसिद्ध जैन मूर्ति मथुरा के कंकाली टीले में एवं बीकानेर के पल्लु ग्राम से 11वीं सदी की जैन सरस्वती मूर्ति विश्व प्रसिद्ध है। हंस देवी का वाहन तथा करों में अक्षमाला, पुस्तक, कमण्डल दर्शित है लेकिन बाद में उन्हें संगीत की देवी के रूप में प्रतिष्ठित करने के बाद उनके करो में वीणा तथा मयूर वाहन भी उत्कीर्ण हुआ है। 10वीं शताब्दी की विलास में एक सरस्वती की मूर्ति प्राप्त हुई है। अटरू से भी 10वीं शताब्दी की सरस्वती मूर्ति प्राप्त है जो गड़ेगंज में संग्रहित है। कोटा के क्षार बाग में 16-17 शताब्दी की बनी छतरियों में अलंकरणात्मक स्वरूप से सरस्वती का बहुत सुन्दर अंकन है। गणगंज से ही परिहारी मन्दिर में एक देवी मूर्ति मिली है जिसे दुर्गा की मूर्ति बताया जाता है अतः यह मूर्ति 15वीं सदी ही होगी।

लक्ष्मी :- धन एवं समृद्धि की अतिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है। श्री एवं लक्ष्मी शब्दों का प्रयोग सामान्य अर्थों में हुआ है। रूपमण्डन के अनुसार लक्ष्मी षटदल, पदम पर स्थित, सिंघासन पर विनायक के समान आसीन हो, वे समस्त आभूषणों से विभूषित हो और उनके उर्ध्व करों में पदम् और वाम व दक्षिण अघःकरों में क्रमशः अमृतघट और मातुलिंग धारण हो। कभी-कभी लक्ष्मी के पीछे करिद्धयम (घटधारी गज युगल) भी उत्कीर्ण हो। जैन साहित्य तथा कला में भी गज-लक्ष्मी तथा उसकी प्रतिमाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जैन कल्पसूत्र तीर्थकर माता के चौदह स्वप्नों के वर्णन में श्रीदेवी गज-लक्ष्मी का उल्लेख है। यहां श्रीदेवी दीनारमाला, स्वर्ण सिक्कों की माला पहले हुए हैं, जो समृद्धि का प्रतीक है। महावीर की माता ने स्वप्न में पदमा देवी को कमल पर आसीन हाथियों द्वारा अभिव्यक्त होते देखा था। श्रीदेवी दक्षिणी की जैन प्रतिमा हिन्दु देव परिवार की श्री लक्ष्मी की सत्य प्रतिलिपि दृष्टिगत होती है। उसके लक्षण भी इसी प्रकार चक्र, गदा, शव पदम है। कोटा संग्रहालय में क्रमांक 67/56 पर श्री लक्ष्मी की 9वीं शताब्दी की प्रतिमा है। इसका आकार "25x 21" है। लक्ष्मी बैठी हुई चतुर्हस्त मुद्रा में है। दो हाथ व एक पैर खण्डित हो गया है। हाथ में गदा व एक हाथ धन वर्षा करता हुआ अंकित है। पाषाण की बनी मूर्ति पर शान्त व सौम्य भाव का प्रदर्शन है। लक्ष्मी का मुख गोल आकार व भारी आभूषणों से सम्पूर्ण शरीर पर सुसज्जित किया गया है। लक्ष्मी के मुकुट पर कुछ अलंकरण हैं जो स्पष्ट नहीं हैं। एक अन्य प्रतिमा पाषाण की क्रमांक 198/123 पर लक्ष्मी की 9वीं शताब्दी की है, जिसे अटरू से प्राप्त किया गया है। इसका आकार 37 गुणा 22 है। क्रमांक 639 पर 11वीं शताब्दी की स्थानक गौरी की बहुत ही

सुन्दर प्रतीमा है। चर्तुहस्त गौरी खड़ी अवस्था में है। इनके दो हाथ भग्न है। एक हाथ में अक्षसूत्र है। इनके आस-पास कई अनुचरों व यक्षिणियों को बनाया गया है। मूर्ति का शारिरिक सौन्दर्य अनूठा है। सम्पूर्ण प्रतिमा आभूषणों से अलंकृत है। मुख के पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है। इनका मुकुट भी अलंकृत व भव्य बना है। चेहरे पर ममत्व व शान्त भाव प्रदर्शित है।

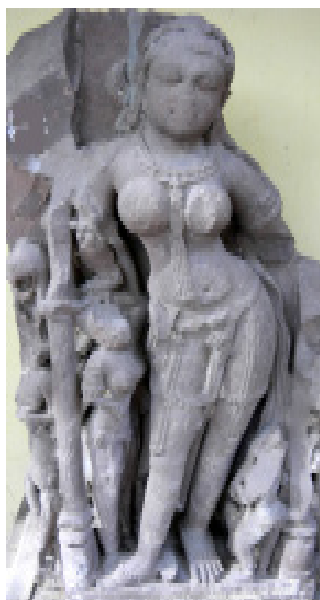
क्षार बाग की मूर्तियाँ :- छत्र विलास उद्यान व किशोर सागर तालाब के निकट क्षार बाग स्थित है। इस बाग में कोटा के प्रथम शासक माधोसिंह से लेकर बाद के शासकों की छतरियां बनाई गई है। यहां शासकों का दाहः संस्कार किया जाता था और उनकी स्मृति में ये छतरी रूपी स्मारकों का निर्माण किया जाता था। यह छतरियां हिन्दु स्थापत्यकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। राजपूत निर्माण कला के कारीगरीपूर्ण स्मारकों के सफेद संगमरमर और भूरे व लाल पत्थर का उपयोग कर शिवलिंग स्थापित किए गए है। छतरी की ब्राह्मी भित्ती पर फूल-पत्तियों के अलंकरण, लताएँ, पशु-पक्षी व देवी देवताओं को अंकित किया गया है। हाथियों का युद्ध शेर का शिकार, सवारियां बहुत ही सुन्दरतापूर्ण अंकित है। क्षार बाग की कलात्मक छतरियों की एक चौकी पर सरस्वती की अद्भुत मूर्ति है। यह मूर्ति पाषाण पट्टिका में ऊपर की ओर उत्कीर्ण है। सरस्वती अपने पारंपरिक स्वरूप के अनुसार श्वेत कमल पर आसीन है तथा वीणा वादन कर रही है किन्तु इसकी विशिष्ट बात यह है कि देवी एक बैलगाड़ी में रखे कमल पर बैठी है तथा बैलगाड़ी को दो हंस खींच रहे हैं। देवी के दिव्य शरीर पर आभूषण तथा दोनों ओर दो सेवक चँवर डाल रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थः

1. मोहनजोदड़ो एण्ड द इट्स सिविलाइजेशन, जे मार्शल; पृ.सं. 49-52
2. तैस्तरीय आख्यक, संपादित राजेन्द्रलाल मिश्रा, एशियाहिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता
3. देवी महात्म्य प्रस्तावना, वासुदेवशरण अग्रवाल; पृ.सं. 9-10 श्लोक 21-30
4. राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, नि.व.; पृ.सं. 101
5. देवी महात्म्य प्रस्तावना, वासुदेवशरण अग्रवाल ;पृ.सं. 45,श्लोक 19, 20, 29, 30
6. राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, नि.व. ;पृ.सं. 101
7. राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, नि.व. ;पृ.सं. 104
8. स्टडीज इन जैन आर्ट, यू.पी.शाह, वाराणासी ;पृ.सं. 33, 71
9. ऋग्वेद, 1-141, 2 तथा | 102, 4
10. राजकीय संग्रहालय कोटा
11. गंगधर स्टोन इन्सक्रिप्शन ऑफ विश्ववर्मन ;पृ.सं. 76-78
12. मत्स्य पुराण, अध्याय 261, श्लोक 24,25

13. देवी महात्म्य प्रस्तावना, अध्याय 8, श्लोक 15
14. देवी महात्म्य प्रस्तावना, अध्याय 8, श्लोक 14, 15
15. राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, नि.व. ;पृ.सं. 107
16. देवी महात्म्य प्रस्तावना, अध्याय 8, श्लोक 19
17. देवी महात्म्य प्रस्तावना, अध्याय 8, श्लोक 20
18. देवी महात्म्य प्रस्तावना, अध्याय 8, श्लोक 4-6
19. देवी महात्म्य प्रस्तावना, अध्याय 8, श्लोक 4-6
20. देवी महात्म्य प्रस्तावना, अध्याय 8, श्लोक 4-6
21. आइकनोग्राफी ऑफ माइनर हिन्दूज एण्ड बुदिस्ट, डीटीज भगवन्त सहाय ;पृ.सं. 141
22. मध्यकालीन प्रतिमा लक्षण, मारुतिनन्दन तिवारी, कमलगिरी ;पृ.सं. 143
23. झालावाड़ की मूर्तिकला परम्परा, ललित शर्मा ;पृ.सं. 74





“राजस्थान पर्यटन उद्योग का शहरी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव”

परिचय:— वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व पर्यटन उद्योग को विकसित करने हेतु प्रयत्नरत है। यही एक ऐसा उद्योग है, जिससे बिना कुछ निर्यात किये ही आमदनी प्राप्त की जा सकती है। जिस प्रकार धर्म, संस्कृति, और अध्यात्म के क्षेत्र में भारत विश्व का यथार्थ रहा है। उसी प्रकार राजस्थान वीरोचित कार्य, शौर्य गाथाओ, स्थापत्य कला, कारीगरी के बेजोड नमूने एवं अनुकरणीय आदर्शों में सदैव अगुवा रहा है। राजस्थान में इस उद्योग के विकास की इतनी अधिक सम्भावनाएँ हैं कि निर्णय शक्ति की दृढता, संबंधित विभागों के समन्वित प्रयासों, सीमित प्रोत्साहनों व दीर्घकालीन नीति के निर्माण के आधार पर शीघ्र ही सकारात्मक परिणाम निकाले जा सकते हैं। क्योंकि एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रवेश करने वाले एक तिहाई पर्यटक राजस्थान आते हैं।

पर्यटक उद्योग से केवल बहुमूल्य विदेशी मुद्रा ही प्राप्त नहीं होता है, बल्कि साथ ही होटल, परिवहन, हस्तकला, वस्त्र निर्माण, जवाहरात जैसे उद्योग, गाइड, बेकिंग, सूचना एवं संचार जैसी सेवाओं का विकास भी होता है। वर्तमान समय में पर्यटन आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विचारों के विनिमय का एक मात्र सुलभ उपादान है। साथ ही विभिन्न देशों के मध्य सद्भाव व सौहार्द उत्पन्न करने में पर्यटन उद्योग का कोई मुकाबला नहीं है। यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व में पर्यटन विकास को प्राथमिकता दी जाने लगी है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में बात करें तो पर्यटन के निरन्तर होते विकास में अब विशाल रूप धारण कर लिया है। इस उद्योग से बड़ी मात्रा में लोगों को रोजगार मिला है तो सुदूर देशों की दूरी को कम करने के अनेकानेक साधन भी इसी उद्योग में रात-दिन जुटे हुए हैं। पर्यटन अब हमारे जीवन से इतना कुछ जुड़ गया है कि हर आम और खास के लिए यह शब्द परिचित है। प्रतिदिन समाचार पत्रों, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आदि संचार माध्यमों में पर्यटन से संबद्ध समाचार, विशेष सामग्री या फिर विज्ञापन के अन्तर्गत किसी उत्पाद की विक्रय प्रोत्साहन योजना के उपहार के रूप

में पर्यटन स्थल की सैर के बारे में प्रचार अब आम बात है। समग्र रूप में कहा जाए तो पर्यटन ऐसी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक प्रक्रिया है जो आज के समय की सर्वाधिक आवश्यकता है। यह बिना चिमनी और धुएँ का ऐसा उद्योग भी है जो लोगों को उनके आगमन पर नियत स्थान की तरफ आकर्षित करने, उन्हें वहाँ पहुँचाने, खाने-पीने की सामग्री प्रदान करने, उनका मनोरंजन करने से संबंधित है। सांस्कृतिक पर्यटन, चिकित्सक पर्यटन, धार्मिक पर्यटन, पारिस्थितिकी पर्यटन, साहसिक पर्यटन, सम्मेलन पर्यटन, क्रीडा पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन आदि विभिन्न रूपों में पर्यटन ने आज वैश्विक रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है।

उद्योग का महत्व :-

राजस्थान में पर्यटन उद्योग की असीन सम्भावनाएँ हैं। राजस्थान का गौरवशाली इतिहास रहा है। यहाँ की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं पुरातत्व धरोहरे अपने आप में बेमिसाल हैं। राज्य में पुरातात्विक महल की चीजें हर जगह मिल जाएगी। यदि इन स्थानों को उचित संरक्षण देकर जहाँ एक ओर इनकी भव्यता को बनाए रखते हुए इन्हें खण्डर होने से बचाया जा सकता है। यदि इनका समयबद्ध विकास किया जाए तो बहुत कम समय में ही राजस्थान विश्व मानचित्र में एक महत्वपूर्ण पर्यटक स्थल के रूप में स्थापित हो सकता है।

पर्यटक क्षेत्रों का समुचित विकास होना चाहिए आज के भौतिक युग में लोगों में पर्यटन के प्रति रुचि बढ़ी है। पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि पर्यटन से सम्बन्धित सेवाओं के लिए लाइसेंस उदारतापूर्वक दिए जाए तथा हर पर्यटन स्थल पर पेइंग गेस्ट यात्री निवास एवं भोजन सुविधा उपलब्ध कराई जाए। महत्वपूर्ण पर्यटन स्थलों का तेंजी से विकास व प्रचार करना चाहिए। जिन पर्यटकों को स्थलों की जानकारी नहीं होती है, उन्हें उन स्थलों के बारे में जानकारी दी जाए।

अध्याय के उद्देश्य:-

1. देशी और विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए राज्य के पर्यटन स्थलों का अनुकूलतम उपयोग का विवेचना करना।
2. रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने के लिए राज्य के पर्यटन उद्योग के योगदान का अवलोकन करना।
3. राजस्थान में पर्यटन उद्योग की स्थिति का अवलोकन करना।
4. पर्यटन उद्योग का राजस्थान की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव का अवलोकन करना।

5. पर्यटन उद्योग में निजी क्षेत्र की सहभागिता को देखना।

साहित्य सर्वेक्षण :-

“भारतीय पर्यटन के नये आयाम”, सुभाष सेतिया , 2007 ने अपने लेख में लिखा है कि हमारे देश में पर्यटन परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना संस्कृति या समाज का इतिहास। धार्मिक उद्देश्य से की जाने वाली तीर्थ यात्राएँ हज उर्स आदि के लिए आना-जाना भी एक प्रकार का पर्यटन ही है। स्वास्थ्य पर्यटन, ग्रामिण पर्यटन, पर्यावरण पर्यटन, सम्मेलन पर्यटन आदि भारतीय पर्यटन के नवीनतम आयाम के रूप में उभर रहे हैं।

“राजस्थान का पर्यटन परिदृश्य तथ्य और चुनौतियाँ”, ओ.पी.शर्मा, 2002 ने अपने लेख में लिखा है कि शौर्य, साहस, और सौन्दर्य का अदभुत परिदृश्य प्रस्तुत करने वाले सीमान्त प्रदेश राजस्थान का प्रारम्भ से ही भारत के सुप्रसिद्ध पर्यटन स्थलों में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। निगम द्वारा भी पर्यटन को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही पर्यटन विभाग पेइंग गेस्ट योजना के संचालकों को ऋण उपलब्ध करा रहा है तथा राज्य में ग्रामिण पर्यटन अवधारणा विकसित करने का मुख्य उद्देश्य जयपुर, उदयपुर, जोधपुर जैसे सुस्थापित पर्यटन शहरों पर पर्यटकों के दबाव को कम करने के साथ-साथ ग्रामीण अंचलों में उपलब्ध प्राकृतिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण संवर्द्धन पर बल देना व ग्रामिण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का सृजन करना भी है।

राजस्थान के पर्यटन उद्योग से प्राप्त आय का शहरी विकास पर प्रभाव:-

अन्य आर्थिक क्रियाओं की तरह पर्यटन भी एक आर्थिक क्रिया है। पर्यटन के लाभ राष्ट्र की समस्त जनता को उपलब्ध होते हैं। वे सभी व्यक्ति जो पर्यटन स्थानों में निवास करते हैं, पर्यटन क्रिया में सक्रिय होते हैं। समस्त पर्यटन चाहे तो वह स्वदेशी हो या विदेशी, क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के लिए रोजगार प्रदान करने में सहायक होते हैं। तथा साथ ही अच्छी संस्कृति को कायम करने का अवसर प्रदान करते हैं। प्रत्येक नागरिक को अपने शहर, संस्कृति, रीतिरिवाज व इतिहास पर गर्व होता है। पर्यटन के अन्तर्गत आर्थिक स्रोत का विकास होता है। विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार पर्यटन आज विश्व का सबसे बड़ा उद्योग है।

पर्यटन विदेशी मुद्रा आय प्राप्ति, राष्ट्रीय आय वृद्धि, उत्पादन के साथ ही अन्तरराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण है। मेजवान देश की आर्थिक गतिविधियों का स्तर बढ़ाने का सबसे बड़ा साधन पर्यटन ही है। आज अधिकांश विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक विकास की अधिकतम दर प्राप्त करने

के लिए पर्यटन का ही सहारा लिया जाने लगा है। पर्यटन के आर्थिक महत्व को देखते हुए ही पर्यटन को उद्योग के रूप में स्वीकार किया गया है। जिसमें प्राकृतिक, मानव और तकनीकी परिसम्पतियाँ तथा संसाधनों की उत्पादकता बढ़ाने की क्षमता विद्यमान है। पर्यटन अप्रत्यक्ष निर्यात के माध्यम से विदेशी मुद्रा कमाने का देश का सबसे बड़ा उद्योग है साथ ही रोजगार को बढ़ाने में एक प्रमुख भूमिका अदा करता है। इसी कारण भारत सरकार ने सर्वप्रथम पर्यटन उद्योग का “निर्यात गृह” का दर्जा दिया है।

पर्यटन का रोजगार और आय प्रभाव एक दुसरे से गहरे रूप से सम्बद्ध है। पर्यटन से कई प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं की माँग होती है। जैसे – आवास, खाद्य और पेय, लम्बी दूरी के, और स्थानीय परिवहन, मनोरंजन, खरिददारी, स्थल दर्शन के लिए गाईड आदि पर्यटकों द्वारा किए गये खर्चों से इन होटलों, रेस्तरां, परिवहन संचालकों, और श्रमिकों, ट्रेवल एजेंटों और उनके कर्मचारियों, कलाकारों, शिल्पकारों और कला की वस्तुएँ बनाने वाले लोगों को भी रोजगार मिलता है इन सभी सेवाओं से सम्बंधित रोजगार व इनसे होने वाली आय निम्न पर निर्भर करती है— पर्यटकों की संख्या, पर्यटकों द्वारा किया गया खर्च तथा खर्च करने का तरीका।

पर्यटक जो खर्च करता है वह एक आदमी से दुसरे आदमी के हाथों में चला जाता है। परन्तु एक व्यक्ति से दुसरे व्यक्ति के पास जाने में राशी घटती चली जाती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपना हिस्सा अपने आस रखता है किन्तु पर्यटक सेवाओं और वस्तुओं के आपूर्तिकर्ताओं और इनसे बेहतर रोजगार की जरूरत प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को कितना मुनाफा होता है। पर्यटन से उत्पन्न माँग से और अधिक रोजगार की जरूरत होगी और आय में वृद्धि होगी। इसमें एक के बाद एक श्रंखलाबद्ध ढंग से वृद्धि होती जाती है।

पर्यटन उद्योग अपने स्थानीय बाजार क्षेत्रों से जितनी ज्यादा सेवाएँ और वस्तुएँ खरिदेगा आय पर उसका गुणित प्रभाव उतना ही अधिक होगा। साथ ही विभिन्न प्रकार के करो, चुँगी, और प्रवेश शुल्क आदि से केन्द्र व राज्य सरकार की भी आमदनी होती है। कुल मिलाकर पर्यटन का आर्थिक प्रभाव समग्र अर्थव्यवस्था पर पडता है। विदेशी मुद्रा आय अर्जन से लेकर अंतरराष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि उद्योगों को प्रोत्साहन, उद्योगविहिन क्षेत्रों में विकास के सभी स्तरों पर क्रियान्वयन को पर्यटन द्वारा सुनिश्चित किया जाता है।

सामान्य तौर पर पर्यटन द्वारा पैदा अधिकांश रोजगार मौसमी होता है। इसलिए

पर्यटन पर आश्रित रहने की मानसीकता कई स्तरो पर बेरोजगारी बढ़ाती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कारण पर्यटन से होने आय का विवरण वही तक सीमित होने लगा है। पर्यटन के इन नकारात्मक प्रभावो को दूर करने के लिए पर्यटन का प्रबंधन स्थानीय हितों के रूप में किया जाए पर्यटन उद्योग का विकास तभी संभव है जब इसकी प्रबन्धकीय प्रभाव शीलता में वृद्धि की जाए। पर्यटन को केवल सैद्धान्तिक रूप में नहीं बल्की व्यवहारिक रूप में समझा जाने के लिए भी इसमें प्रबन्ध की प्रभाव शीलता सभी स्तरो पर आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. व्यास, राजेश कुमार – “पर्यटन-उद्भव एवं विकास” राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर (2011)
2. व्यास, राजेश कुमार – “राजस्थान में पर्यटन प्रबन्ध” राजस्थान ग्रन्थागार जोधपुर (2009)
3. पवॉर, ललित के – “भारतीय रेगिस्तान में पर्यावरणीय पर्यटन” राजस्थान ग्रन्थागार जोधपुर (2003)
4. नाथूरामका, लक्ष्मीनारायण – “राजस्थान की अर्थव्यस्था” कॉलेज बुक डिपो जयपुर (2010)

डॉ. रीना जैन
2/एल/60, इंदिरागांधी नगर
जगतपुरा, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

जैन साहित्य में लेखन कला

जैन साहित्य के परिशीलन से विदित होता है कि जैन विद्वानों-श्रुतधरों ने जो विशाल साहित्य रचना की उन्हें वे पहले काष्ठपट्टिका पर लिख कर फिर ताड़पत्र, कागज आदि पर उतारते थे। श्री देवभद्राचार्य ने जिस काष्ठोत्कीर्ण पट्टिका पर महावीर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्रादि लिखे थे वे उन्होंने सोमचन्द्र मुनि (श्री जिनदक्षसूरिजी) को भेंट किए थे। अतः इन वस्तुओं का बड़ा महत्व था। ग्रन्थकार अपने महान् ग्रन्थों को स्वयं लिखते या अपने आज्ञांकित शिष्य वर्ग से प्रथमादर्श पुस्तिका लिखवाते, जिनका उल्लेख कितने ही ग्रन्थों की प्रशस्तियों में पाया जाता है। मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, स्थिरचन्द्र, ब्रह्मदक्ष आदि की लिखित प्रतियां आज भी उपलब्ध हैं। श्री जिनदक्षसूरि, कमलसंयमोपाध्याय, युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि, समयसुन्दरोपाध्याय, गुणविनयोपाध्याय, यशोविजय उपाध्याय, विनयविजय, नयविजय, कीर्तिविजय, जिनहर्षगणि, क्षमाकल्याणोपाध्याय, ज्ञानसार गणि आदि बहुसंयक विद्वानों के स्वयं हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जैन यति-मुनियों, साध्वियों आदि के अतिरिक्त श्रीमन्त श्रावकों द्वारा लहिया लोगों से लिखवाई हुई बहुत सी प्रतियां हैं। इस प्रकार जैन ज्ञान भण्डारों में लाखों प्राचीन ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं। पुस्तकों के लिपिक लहिए कायस्थ, ब्राह्मण, नागर, महात्मा, भोजक आदि जाति के होते थे, जिनका पेशा ही लिखने का था और उन सैंकड़ों परिवारों की आजीविका जैनाचार्यों व जैन श्रीमन्तों के आश्रय से चलती थी। वे जैन लिपि व लेखन पद्धति के पर परागत अभिज्ञ थे और जैन लहिया-जैन लेखक कहलाने में अपना गौरव समझते थे। महाराजा श्रीहर्ष, सिद्धराज जयसिंह, राजा भोज, महाराणा कु भा आदि विद्याविलासी नरेश्वरों को छोड़ कर एक जैन जाति ही ऐसी थी जिसके एक-एक व्यक्ति ने ज्ञान भण्डारों के लिए लाखों रुपये लगा कर अद्वितीय ज्ञानोपासना-श्रुतभक्ति की है। लाखों ग्रन्थों के नष्ट हो जाने व विदेश चले जाने पर भी आज जो ग्रन्थ भण्डार जैनों के पास हैं वे बड़े गौरव की वस्तु हैं। ज्ञान पंचमी का आराधन एवं सात क्षेत्रों में तथा स्वतंत्र ज्ञान द्रव्य की मान्यता से इस ओर पर्याप्त ज्ञान सेवा समृद्ध हुई। साधु-यतिजनों को स्वाध्याय करना अनिवार्य है। श्रुत-लेखन स्वाध्याय है और इसीलिए इतने ग्रन्थ मिलते हैं। आज मुद्रण युग में भी सुन्दर लिपि में ग्रन्थ

लिखवा कर रखने की परिपाटी कितने ही जैनाचार्य मुनिगण निभाते आ रहे हैं। तेरापंथी श्रमणों में आज भी लेखन कला उन्नत देखी जाती है □ क्योंकि उनमें हस्तलिखित ग्रन्थ लिखने और वर्ष में अमुक परिमाण में लेखन-स्वाध्याय की पूर्ति करना अनिवार्य है।

लेखक के गुण-दोष

लेख पद्धति के अनुसार लेखक सुन्दर अक्षर लिखने वाला, अनेक लिपियों का अभिज्ञ, शास्त्रज्ञ और सर्वभाषा विशारद होना चाहिए, ताकि वह ग्रन्थ को शुद्ध अविकल लिख सके। मेधावी, वा□पटु, धैर्यवान, जितेन्द्रिय, अव्यसनी, स्वरशास्त्रज्ञ और हलके हाथ से लिखने वाला सुलेखक है। जो लेखक स्याही गिरा देता हो, लेखनी तोड़ देता हो, आसपास की जमीन बिगाड़ता हो, दवात में कलम डुबोते समय उसकी नोक तोड़ देता हो वह अपलक्षणी और कूट लेखक बतलाया गया है।

लेखक की साधन सामग्री

ग्रन्थ लेखन के हेतु पीतल के कलमदान और एक विशिष्ट प्रकार के लकड़ी या कूटे के कलमदानों में लेखन सामग्री का संग्रह रहता था। हमारे संग्रह में ऐसा एक सचित्र कूटे का कलमदान है जिस पर दक्षिणी शैली से सुन्दर कृष्णलीला का चित्रांकन किया हुआ है। एक सादे कलमदान में पुरानी लेखन सामग्री का भी संग्रह है। यह लेखन सामग्री विविध प्रकार की होती थी जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। एक श्लोक में 'क' अक्षर वाली 17 वस्तुओं की सूची उल्लिखित है—

(1) कंपी (दवात), (2) काजल (स्याही), (3) केश (सिर के बाल या रेशम), (4) कुश-दर्भ, (5) क बल, (6) कांबी, (7) कलम, (8) कृपाणिका, (छुरी), (9) कतरनी (कैंची), (10) काष्ठपट्टिका, (11) कागज, (12) कीकी-आंखें, (13) कोटड़ी (कमरा) , (14) कलमदान, (15) क्रमण-पैर, (16) कटि-कमर, और (17) कंकड़।

इनमें आंख, पैर और कमर की मजबूती आवश्यक है। बैठने के लिए कंबल-दर्भासन व कोठरी-कमरा के अतिरिक्त अवशिष्ट स्टेशनरी-लेखन सामग्री है।

लहिये लोग विविध प्रकार के आसनों में व विविध प्रकार से कलम पकड़ कर या प्रतियां रख कर लिखने के अ यस्त होने से अपने लेखनानुकूल कलम को पेपर व्यक्ति को देने में हानि समझते थे। अतः पुस्तकों की पुष्पिका के साथ निम्न सुभाषित लिख दिया करते थे—

लेखिनी पुस्तिका रामा परहस्ते गता गता।

कदाचित् पुनरायाता लष्टा भ्रष्टा च घर्षित (या चुर्चिता) ॥

लेखन विराम

लिखते समय यदि छोड़ कर उठना पड़े तो वे अपने विश्वास के अनुसार 'घ झ ट ड़ त प ब ल व श' अक्षर लिखते छोड़ कर या अलग कागज पर लिख के उठते हैं। अवशिष्ट अक्षर लिखते उठ जाने पर उन्हें पुस्तक के कट जाने, जन्तु खा जाने तथा नष्ट हो जाने के विविध संदेह रहते थे। इन विश्वासों का वास्तविकता से □या स बन्ध है? कहा नहीं जा सकता।

लेखन की निर्दोषता

जिस प्रकार ग्रन्थकार अपनी रचना में हुईं स्खलना के लिए क्षमा प्रार्थी बनता है वैसे ही लेखक अपनी परिस्थिति और निर्दोषता प्रकट करने वाले श्लोक लिखता है—

यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया।

यदि शुद्ध वा मम दोषो न दीयते॥

भग्नपृष्ठ-कटिग्रीवा-वक्रदृष्टिरधोमुखम्।

कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत्।

बद्धमुष्टि-कटिग्रीवा-वक्रदृष्टिरधोमु।म्।

कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन प्रतिपालयेत्॥ इत्यादि।^१

भ्रांतिमूलक अशुद्धियां

प्राचीन प्रतियों की नकल करते समय लिपि अल्पाता से या भ्रांत पठन से, अक्षराकृति सामय या संयुक्ताक्षरों की दुरुहता से अनेकशः अशुद्ध पर परा चल पड़ती थी। एक श□द के अनेक अर्थ होते हैं, मिलते-जुलते अशुद्ध वा□यों को शुद्ध करने जाते नवीन पाठान्तरों की सृष्टि हो जाती, जिसका संशोधन किसी अनुभवी विद्वान् संशोधक के हाथों में पड़ने पर ही संभव होता। 'च्छ' का 'त्थ' का 'च्छ' हो जाना तो मामूली बात थी।

ग्रन्थ लेखनारंभ

भारतीय संस्कृति में न केवल ग्रन्थ रचना में ही किन्तु ग्रन्थ लेखन के समय लहिय लोग सर्वप्रथम मंगलाचरण करतेथे, वह चिरपरिपाटी है। जैन लेखक ॐ नमः, ऐं नमः, नमो जिनाय, नमः श्री गुरु यः, नमो वीतरागाय, जयत्यनेकान्तकण्ठीरवः ॐ नमः सरस्वत्यै, ॐ नमः सर्वज्ञाय, नमः श्रीसिद्धार्थसुताय' इत्यादि अपने देव, गुरु, धर्म, इष्टदेव के नाम मंगल के निमि□। लिखते थे। जैन मंगलाचरण का सार्वत्रिक प्रचार न केवल भारत में ही, चीन, ति□बत तक में लिखे ग्रन्थों में कातन्त्र व्याकरण का ॐ नमः सिद्धं प्रचुरता से प्रचलित हुआ था। प्राचीन लिपियों के प्रारंभिक मंगल-चिह्न शिलालेखों में, ताड़पत्रीय ग्रन्थों में व पर परा से चलते हुए अर्थ न समझने पर भी रूढ़ हो गए थे। ब्राह्मी लिपि के ॐकार, ऐंकार सहस्रा□दी पर्यन्त चलते रहे और आज भी ग्रन्थ लेखन के प्रारंभ में

उन्हीं विविध रूपों को लिखने की परंपरा चल रही है। भारतीय प्राचीन लिपि माला एवं प्राचीन शिलालेखों व ग्रन्थों से उन मंगल-चिह्नों का विकास चारुतया परिलक्षित होता है। राजस्थान में सर्वत्र कातन्त्र व्याकरण का प्रथम अपभ्रष्ट पाठ बड़े ही मनोरंजक रूप में बच्चों को रटाया जाता था।¹

लेखकों की ग्रन्थ लेखन समाप्ति

ग्रन्थ लेखन समाप्त होने पर ग्रन्थ की परिसमाप्ति सूचना करने के पश्चात् लेखन संवत् पुष्पिका लिख कर 'शुभंभवतु, कल्याणमस्तु, मंगलं महा श्रीः, लेखक पाठकयोः शुभंभवतु, शुभं भवतु संघस्य, आदि वाक्य लिख कर ।।छः।। ब।। आकृतियां लिखा करते थे जो पूर्णकुंभ जैसे संकेत होने का मुनि श्री पुण्यविजयजी ने अनुमान किया है। और भी प्राचीन ग्रन्थों में विभिन्न चिह्न और अक्षरों पर गेरु आदि लाल रंग से रंजित ग्रन्थों के अन्तिम पत्र पाये जाते हैं। ग्रन्थ के अध्ययन, खण्ड, उद्देश्य सर्ग, परिच्छेद, उच्छ्वास, लंभक, काण्ड आदि की परिसमाप्ति पर सहज ध्यान आकृष्ट करने के हेतु भी इन चिह्नों का उपयोग किया जाता था।

संदर्भ ग्रन्थ

1. भँवरलाल नाहटा, लेखन अने कला, नाहटा ब्रदर्स, कलकत्ता, पृ. 27-28

कोटा के भित्ति चित्रों की वर्तमान स्थिति

सृजन व विनाश सृष्टि के दो विपरीत अंग होते हुए भी आवश्यक रूप से चल-अचल जैविक, भौतिक, ईश्वरकृत या मानवकृत प्रत्येक वस्तु से संबंधित है। प्रत्येक वस्तु निर्मिती से लेकर विनाश तक का सफर सहज रूप से तय करती है। जिससे कला पक्ष भी अच्छता नहीं हैं।

राजस्थान के कोटा शहर में प्राचीन परम्परागत भित्तिचित्रण, लघुचित्रण व शैलचित्रों का अनुपम भंडार आज भी दर्शनीय है, परन्तु समय के क्रूर हाथों ने उसे भी नहीं बख्शा। इस कटुसत्य की ओर कोटा वासियों का ध्यान आकर्षित होता रहता है, जब जब नेशनल म्यूजियम, दिल्ली के संरक्षण विभाग व पुरातत्व विभाग तथा जयपुर व अन्य विभागों द्वारा कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं। कोटा में गढ़पैलेस का छत्र-महल, बड़ा महल, अर्जुन महल, झाला हवेली, देवती हवेली, बैजनाथ जी के मंदिर के अतिरिक्त आप पास के इलाकों में अभेड़ा, दुगारी, बूंदी, दरा, अलनिया आदि स्थानों के भित्तिचित्र प्राचीन कलात्मक धरोहर का जीता जागता इतिहास अपनी जुबानी बयां कर रहे हैं। यहाँ के गढ़, हवेलियाँ, छतरियाँ व प्रागैतिहासिक शिलाचित्र सभी इतिहास की दुर्लभ निशानियाँ हैं। जहाँ कार्ल खंडालवाला ई.बी. हैवेल ने अपने अध्ययन के दौरान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इन भित्तिचित्रों का जिक्र किया था, न्यूयार्क व पेरिस में भी कोटा स्कूल के चित्रों को प्रदर्शित किया जा चुका है, वहीं कोटा के स्थानीय निवासियों को इस इस बात की जानकारी तक नहीं है, कि अमुक हवेली में आज भी सदियों पुराने भित्ति चित्र विद्यमान है और प्रागैतिहासिक शिला चित्रों का अध्ययन तो अपने आप में अलग विषय है। वे भी लापरवाही और अज्ञानतावश नष्ट होने की कगार पर खड़े हैं।

गढ़ पैलेस के कई भवनों में शायद ही कोई ऐसा कोना बचा हो जहाँ कोटा स्कूल के चित्रों का समायोजन ना हो। इनके कलात्मक शास्त्रीय गुणों का बखान, भावात्मक व सांस्कृतिक स्तर पर समय-समय पर होता रहा है, लेकिन

मैं ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ उनकी वर्तमान स्थिति पर जो ठीक वैसी ही है जैसे किसी बुजुर्ग व्यक्ति को बीमारी की हालत में दुत्कार कर घर से बाहर निकाल दिया गया हो। लगभग सभी चित्र अपनी अंतिम सांसे गिन रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों तक भी यह काफी ठीक अवस्था में थे। वर्तमान में हालत बहुत गंभीर हो गई है। छत के हिस्से पर काम ज्यादातर काँच व हीरे जवाहरातों का हुआ है जो अब गायब हो चुके हैं कहीं-कहीं से तो चूना पहले ही उखड़ चुका था। लेकिन बहुत जगह से चूने की स्थिति यह है कि कभी भी किसी वक्त भी पूरी छत की कारीगरी को सदैव के लिए मिट्टी में मिलाने को तैयार लटका हुआ है। सभी चित्रित दीवारों पर लापरवाह लेकिन कलाकार कहे जाने वाले लोगों को जानबूझकर या अनजाने में वार्निश या टर्पेन्टाइन जैसी चीज से पुताई कर दी है जो समय के साथ निश्चित ही काली पड़ते हुए पूरे चित्रों को ढक देगी जिसका प्रभाव अब नजर भी जाने लगा है।

पुराने चित्र दक्ष हाथों द्वारा वानस्पतिक व खनिज रंगों से कष्टसाध्य प्रक्रिया द्वारा बने, बाद में उन्हीं चित्रों पर पोस्टर रंगों से पुनरांकन करने का दुस्साहस भी किया गया है। कई चित्र पूरी तरह धूमिल हो चुके हैं और कई जगह से पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं दीवारों पर ऊपरी कोनों में मकड़ी के जाले व चिड़ियाओं के घोंसलें बना लिये हैं। चलते फिरते लोगों के हाथों के घर्षण से, कुछ वातावरणीय, क्षारीय प्रभाव से तो कुछ बारिश के पानी के रिसाव से सीलन आ जाने की वजह से चित्रों में दरारे आ गई हैं। आवारा हाथों ने किसी आकृति के चेहरे नाखुनों से खरोच दिये हैं, किसी की आँखे नोच ली हैं और जगह-जगह अपने नाम लिख रहे हैं जो कुछ देखे जा सकने वाली स्थिति में है वे भी अब कुछ ही दिनों के मेहमान हैं।

फोटोग्राफर चित्रों के लेश सहित फोटो लेते रहते हैं जो कि चित्रों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं बुद्धिजीवी लोग ही ऐसी लापरवाही बरतेंगे तो आम लोगों से क्या उम्मीद की जा सकती है। गढ़ के ही ऊपर के भवन में एक चित्र पेनल पर बिजली का स्विच बोर्ड लगा दिया गया है तथा पुरानी चीजों पर ही नये चित्रों को बनाकर उन्हें फ्रेमनुमा चोखटों में जड़कर सुरक्षित किया गया है लेकिन नीचे के मूल चित्र कहीं-कहीं से कांपते हुए अपनी रक्षा की गुहार लगा रहे हैं।

झाला हवेली पूरी तरह जर्जर हो चुकी है परन्तु उसमें जो कुछ चित्र मिले वे भी इस हवेली में दफन न हो जाये इसलिए दिल्ली संग्रहालय पूरे के पूरे भित्तिचित्र को दीवार सहित निकाल कर दिल्ली संग्रहालय में उसकी यथावत्ता बरकरार रखते हुए वैज्ञानिक व रसायनिक प्रक्रिया से उपचारित कर सुरक्षित कर दिया है वहीं पर

उसकी एक स्थायी कला दीर्घा निर्मित की गयी है जो कि "कोटा म्यूरल्स-बेक टू लाईफ" नाम से संरक्षण विभाग द्वारा इस तरह के काम काबिले-तारीफ है लेकिन ये प्रयास ऊँट के मुंह में जीरा साबित हो रहे हैं। क्योंकि उससे भी गुणाधिक चित्र इसी तरह के प्यार भरे हाथों के स्पर्ष का इंतजार कर रहे हैं।

इन प्राचीन भित्ति चित्रों के विनाश के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण स्वयं हवेलियों के मालिक व रख-रखाव वाले हैं क्योंकि जहाँ भी ये चित्र अवस्थित है वे या तो राजा महाराजाओं की निजी सम्पत्तियाँ है या पुराने भवनों में है उन्हें इन भित्ति चित्रों की महत्ता नहीं मालूम, फलतः अज्ञानतावश इन चित्रों को हानि पहुँच रही है। कोटा के ही भवन के गणेश प्रतिमा के चित्र के वक्षस्थल पर कपड़े टांगने की खूटी ठोक दी गई है जो धार्मिक दृष्टि से आहत कर देने वाली स्थिति है और जब कुछ सजग व जानकार लोग राजा-महाराजाओं के वंशजों से इन चित्रों की जानकारी लेना चाहते हैं तो उन्हें बार-बार परेशान करने की सफाई देते हुए असहयोग करते हैं और कई जगह तो पूरे चित्रों पर सफेद पुताई ही कर दी गई क्योंकि उनमें डर पैदा होता है कि सरकार कहीं उनकी संपत्ति पर कब्जा ना कर ले।

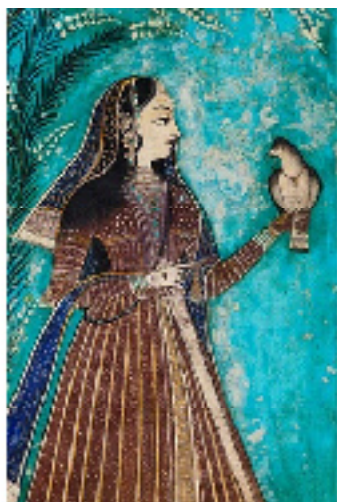
लोगों ने पुराने गढ़ व किलों को गोठ करने व मनोरंजन का स्थान बनाकर, वहाँ खाना पकाकर उठने वाले धुएँ से चित्रों पर काली परत चढ़ाने का अक्षम्य अपराध भी किया है। सरकार से कहीं अधिक प्रयास आम लोगों व स्थानीय निवासियों द्वारा किये जाने चाहिए। उनमें एक अवेयरनेस व जागरूकता पैदा करनी होगी उन्हें उनकी प्राचीनता का बोध हो उन्हें सुरक्षित रखने की जानकारी हो। ऐसे सघन व आदर्श अतीत को यों ही तो नहीं मिटने देना चाहिए जैसे कोई नल खुला है तो कोई भी जाकर बंद कर देता है। उसी तरह की भावना प्राचीन भित्तिचित्रों व स्मारकों को लेकर भी होनी चाहिए। अगर उनकी सुरक्षा नहीं कर सकते तो कम से कम उन्हें नुकसान नहीं पहुंचायें। नहीं तो वो दिन दूर नहीं जब कोटा शैली के चित्र हमें मात्र पुस्तकों में ही देखने को मिलेंगे और भारतीय संस्कृति की अपूर्व धरोहर को हम सदा के लिए खो देंगे।

कोटा शैली के चित्र विश्व प्रसिद्धी लिए हुए है। लोग उनके दर्शनों को आना चाहते हैं परन्तु जब वे देखेंगे तो उन्हें क्या मिलेगा? क्षतविक्षत् पड़ा हुआ रंगीन दीवार का टुकड़ा या शिरविहीन धड़, गायब टांग वाला हाथी, कृष्ण विहीन रासलीला आदि, चलो इतना तो मिलेगा लेकिन समय रहते इन सभी चित्रों का रखरखाव या संरक्षण नहीं किया गया, उन पर ध्यान नहीं दिया गया तो न धड़ मिलेगा, ना हाथी ना ही कोई रंगीन दीवार।

स्थानीय निवासी होते हुए कोटा कलम के चित्रों के हाल में किये दर्शन का अनुभव बहुत अच्छा नहीं था क्योंकि चित्रों की बिगड़ती दशा ने मुझे पूरी तरह झकझोर दिया जो निश्चित ही मेरे जैसे अन्य कला प्रेमी के लिए भी दुखद व विचलित कर देने वाला क्षण हो सकता था। कोटा ही नहीं आसपास के सभी भित्तिचित्रों की यहीं कहानी है अतः जल्द ही इन कलात्मक भित्तिचित्र रूपी अवशेषों को भी नव जीवन प्रदान कर स्थायित्व प्रदान की जाने की कोशिश की जानी चाहिए। साथ ही जहाँ ये भित्तिचित्र बने है उस भवन का भी तथा जिन प्राचीन कलाकारों के हाथों से ये चित्र बने उनका भी संरक्षण आवश्यक है। क्योंकि कोटा स्कूल के चित्रकारों की पीढ़ी के मात्र एक दो कलाकार ही वर्तमान में जीवित हैं व काम कर रहे हैं। संरक्षण के लिए आम लोगों की मानसिकता में राजस्थान की इस अपूर्व धरोहर को मिटाने से बचाने के लिए सरकार व समाज दोनों को ही मिलकर कदम उठाने होंगे। हाल ही में कोटा के दरा घाटी के जंगलों में नये शैल-चित्रों की खोज की गई जो अभी तक लोगों की निगाहों से दूर सुरक्षित है परन्तु वह दिन भी दूर नहीं जब उनका पतन भी होना शुरू हो जायेगा संरक्षित क्षेत्रों की हालत ही इतनी खराब है तो असंरक्षित क्षेत्रों का तो ईश्वर ही मालिक है।

कोटा कलम को चिरस्थायित्व प्रदान करने की कोशिश शीघ्र ही की जानी चाहिए। यह मेरी विनम्र सिफारिश कला रसिक व राजनैतिक पद पर आसीन व्यक्तियों से है तभी हमें ऐसे देश का निवासी होने पर गर्व होगा जहाँ की धरोहर इतने प्राचीन व कलात्मक कर्म उच्चकोटि का है।

वर्तमान में तो प्राचीन चित्रों को उपचारित करने, उनकी उम्र को और कई वर्षों तक बढ़ाने वाले कई रासायनिक तरीके आ चुके हैं। नेशनल म्यूजियम नई दिल्ली में तो कन्ज़रवेशन डिपार्टमेंट द्वारा देश के कोने-कोने में प्राचीन कलाकृतियों का संरक्षण किया जा रहा है तथा रेवोनेशन कर उन्हें पुनःजीवित किया जा रहा है। अतः हम भी एक सकारात्मक उम्मीद के साथ कोटा भित्ति चित्रों के अच्छे दिन आने की राह



किशोर कुमार मीणा
अतिथि व्याख्याता (व्यावहारिक कला),
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट,
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

विपणन में बिक्री अभिवृद्धि की भूमिका

बिक्री अभिवृद्धि तकनीक सबसे पहले 1930 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में उपयोग में लाई गई थी। इस समय भारतीय क्रेताओं के पास खरीददारी के विकल्प नहीं थे। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक संगठनों के आगमन से बाजार धीरे-धीरे विक्रेता बाजारों में बदलने लगे थे। अब भारतीय व्यापारियों को समझ में आने लगा था कि बाजार में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए मजबूत विपणन नीति बनाने का समय आ गया है। आज के युग में कोई भी व्यापारिक संगठन प्रभावी विक्रय नीति के बिना बाजार में सफल नहीं हो सकता है।¹ व्यापार अभिवृद्धि के उपकरणों जैसे-विज्ञापन, व्यक्तिगत बिक्री और लोक व्यवहार, बिक्री अभिवृद्धि में से बिक्री अभिवृद्धि एक महत्वपूर्ण उपकरण है। विज्ञापन खरीद का एक कारण होता है, जबकि बिक्री अभिवृद्धि, तकनीक उत्पाद की तुरन्त खरीद के प्रोत्साहन के लिए बनाई जाती है। जैसे-एक के साथ एक फ्री, कूपन देना, छुट देना, प्रतियोगिता, मुत उपहार इत्यादि। बिक्री अभिवृद्धि एक खर्च नहीं है यह एक निवेश है जो संगठन को एक बेहतर कीमत वापस देता है। इसका उद्देश्य मांग बढ़ाना होता है। बिक्री अभिवृद्धि द्वारा एक उत्पादक को अपने उत्पाद के बारे में बताना चाहिए और उपभोक्ता को उत्पाद खरीदने हेतु प्रेरित करना चाहिए।²

बिक्री अभिवृद्धि की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ .

American Marketing Association³ - "In a specific sence, sales promotion includes those sales activities that supplement both personal selling and advertising and coordinate them and help to make them effective such as displays, shows and expositions demonstration and other non recurrent selling efforts not used in the ordinary routine"





William J. Stanton - "Sales promotion is an excersise in information persuasion and influence".

Phillip Kotler - "Sales promotion consists of a diverse collection of incentive tools, mostly short-term, designed to stimulate quicker and/or greater purchase of particular products/services by consumer or the trade".⁴

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर बिक्री अभिवृद्धि को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं—

बिक्री अभिवृद्धि में बिक्री को प्रोत्साहित करने वाली सभी गतिविधियों को शामिल किया जाता है। बिक्री अभिवृद्धि में नमूना, पैसा वापस देना, कीमत में कमी, उपहार, मुत जांच, वारंटीए पाइंट ऑफ परचेजए उत्पाद प्रदर्शन आदि गतिविधियों को शामिल किया जाता है तथा जिनसे उत्पाद की बिक्री बढ़ाई जाती है।

बिक्री अभिवृद्धि के कार्य
बिक्री अभिवृद्धि के प्रकार

- | | | |
|----|---|----|
| 1- |  | 1- |
| 2- |  | 2- |
| 3- |  | 3- |
| 4- |  | 4- |

5-



5- निम्नलिखित विक्रेता विक्रय के माध्यम से अपने उत्पादों को बेचते हैं, फिर विक्रेता एक दूसरे से उत्पादों को बेचते हैं। प्रत्येक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता एक Cerelac पैक बेचता है, इसलिए एक एकल विक्रेता का विक्रय 5 कि.ग्रा.

6-



6- विक्रेता अपने विक्रय के माध्यम से उत्पादों को बेचते हैं। निम्नलिखित विक्रेता [1 कि.ग्रा. के] में उत्पादों को बेचते हैं।

(1) उपभोक्ता बिक्री अभिवृद्धि के प्रकार

A)



A) एक उत्पाद को बेचने के लिए एक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता एक सफाई उत्पाद बेचता है, इसलिए एक विक्रेता का विक्रय 1 कि.ग्रा.

B)

B) एक उत्पाद को बेचने के लिए एक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता एक सफाई उत्पाद बेचता है, इसलिए एक विक्रेता का विक्रय 1 कि.ग्रा.

C)



C) निम्नलिखित विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता एक सफाई उत्पाद बेचता है, इसलिए एक विक्रेता का विक्रय 1 कि.ग्रा.

D)



D) विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता एक सफाई उत्पाद बेचता है, इसलिए एक विक्रेता का विक्रय 1 कि.ग्रा.

E)



E) विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता एक सफाई उत्पाद बेचता है, इसलिए एक विक्रेता का विक्रय 1 कि.ग्रा.

F)



F) विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता अपने उत्पादों को बेचने के लिए एक विशेष मार्केट में जाता है। प्रत्येक विक्रेता एक सफाई उत्पाद बेचता है, इसलिए एक विक्रेता का विक्रय 1 कि.ग्रा.

G)



G) i b k o k i l n a k & ; g , d , b k d k j z e g s t l e a , d i e k k n i n k n l s l a d y u g l a s i j m i d h d t e r o k i l y k i b z t k h g a ; g ; k u k f i l h n r l o d h t l p d l s e k e k n s h g a T o w f d f p = E a g n e k The mobile store d k f o k k u f i n e s i e k k n i n k n l s l a d y u g l a s i j m i d h d t e r o k i l y k i b z t k h g a

H)



H) d l e r ? W u k & ; g r j e t k n i H E d k d s l I R k e f r r % B l g j l a , c e f o k k v o l j l a i j i z k e e s f y ; k t k k g a b l r d u t e l e a m r k n d h d l e r d e d j n h t k h g s t l l s u ; s n i H E d k l a d k s v k d f i d f i d ; k t k l d s o o r z u n i H E d k l a d k k u k j j l u s g o j z k e e s y h t k h g a f p = E a g n e k Nautica jeans d e u h d s f o k k u } k k 70% n i n d l e r d e d j d s m i H E d k d s v k d f i d d j u k a

I)



I) O k k j d L V E & b l e a n i H E d k d s i B d [k j m i j , d L V E f n ; k t k k g a b u L V E l a d s , d f u f p r e l e k e s , d = d j u s i j n i g j f n ; k t k k g a

J)



J) d i w & f e i h v f h e f d s f y , x b d d l s d i w } k k N a f d k i t o v l u f n ; k t k k g s t l l x b d i H E d r g k k g s , c e f u u d i w d s } k k x b d d l s y H E d r f i d ; k t k k g a n i g j . H E Z & l e l p j i = j i f = d k l a e s d i w f n t k s g a T o w f d f p = E a g n e k K F C d k d i w A

K)



K) H E d v H Y i j p t & ; g n i H E d k d s r i j r [k j m g o i f i r d j u s d s f y , n d k u l a i j i z f l z f d , t k s g s t k f d n i H E d k d s r i p e [k j m f u . z y s e s e n n d j r k g a T o w f d f p = E a g n e k Hanging A

L)

L) e f t l p & b l r d u t e l e a m i H E d k d s e f e s f d l h n r l o d h t l p d j U d k n h t k h g a ; g r d u t e l e f r r % & l e k l b y l d s f y , n i ; k e s y l b z k h g a

(2) थोक व्यापारी, और रिटेलर की बिक्री अभिवृद्धि के प्रकार

अधिकतर उत्पाद बाजार में कई वितरकों जैसे थोक व्यापारी, और रिटेलर से होकर आते हैं। थोक व्यापारी, रिटेलर और उनके व्यापारिक क्षेत्र पर ही, किसी भी फर्म की उन्नति निर्भर होता है। इस कारण कम्पनी अपने थोक और रिटेलर व्यापारियों को प्रोत्साहित करने हेतु कई तरह की तकनीके अपनाती है। जो कि निम्न हैं—

fo'lkNW	&	bl eadE uho@mR ind] Rtd o fjVyrj Qk kj; la dls mudh[lj m ij , d fo'lkNW nsk gSt kmLgavf/ld [ljm dksi h fgr djrkg
fcØhl gkrk	&	bl eanR ind Myj l sfny dk fj'rk cukus gsdqbZ l sk at B& mR kn i gpkus dh l fpaMj mltj nslj Hvj .kl fpaK ansk g
Qk lj hHk	&	bl eafVyrj , oaRtd Qk lj h dls, d ful'pr vfhbf mR kn dh, d ful'pr elek [lj musij vrfjDr NW nsk g
lhb' vRy i jpt l lekb	&	; g ehm& dls i hfor djus dh euloB kud i zfr gSt lsd Myj dls [ljm gqj r i hfor djr h g
eR l leku	&	; g [ljmsgq mR kn dhvrfjDr elek ds: i eaeR eanht k h g eR l leku Myj dls vius Stock ea T; knkl leku j [kus dksi fjr djrkg
dter eVr eanW	&	; g , d , bhi h lgu dhr duhd gSt l eaMyj dls i B sl [ljm ij , d ful'pr NW nht k h g
fokli u Hk	&	; g i z f k l smi HED kn mR kn dsfy, fr; kt k k g bl HUs dhi h g qMyj dls plfg fd og mR kn dk fokli u dja
[kpldju Hk lotting Allowance)	&	; g , d Qh g l h g St lsd mR kn d Myj nsk g mR kn d Myj dls; g Hk fdl hu, mR kn dkl leus ful'pr LAtu ij t xg nss dsfy, nsk g
fcØhcy dhi h lgd r dultalSales ForcePromotion Techniques)		
fcØhLi hZ	&	mR kn d l k l i hZ; v k h r dht k h g v l f l d st; knk y; i jk djus o s Myj dls bule fr; kt k k g
ekuoh fcØhi h k k	&	Myj dsfy, i h k k d k h e T h e k u h n; f k k u j fcØh r dult l h k u a d h f d r k a v l n fcØh c d e s e s e n n d j r s g ; s x f r f o f k l a M y j d s d l e d l s v k l u c u k h g s v l f [ljm d s r j r f u l z e a e n n d j r h g
fcØhl h B; l	&	; sl h B; l k l k l r g d h e , d f t y s d s f o z l e k a o z l e k l s d s f y , v k h r d h t k h g l k l k l r g s l h B; l a m R kn dhvfhbf , o a y k l e d k m R kn d h t k u d l j h n s g c v k h r d h t k h g
i z' h	&	mR kn l e d l e z' k , o a f o z l e k l e d s l e j k i z' h m u d s i z u k a d l s i j k d j r k g l k l k l r g ; g r d u l t h m R kn l e g q d h t k h g

fcØhvfHbØ dkegPo

¼½Øk lj dsfy, egPo &

vld'Ø nR lnk ds fy, u, & fcØhvfHbØ dsdk Øe u, mi HED kvledsvldf'Ø djus
mi HED k dks iØr djus ea enn eaenn djrkg&
djukA

ehVM&Ø dks vfl'd [ljm gæc & fcØhvfHbØ eaehVM&Ø dks dbZrjg ds mi glj o NW
iØr djrkg& fn, t ksgSft l l sog vfl'd [ljm dksiØr gækg&¹⁰

¼½ mi HED kdsfy, egPo &

Tj lnk Qk ns & fcØhvfHbØ mi HED k dks nR ln [ljm usl si gy Ø o dñ
eadbZrjg ds Qk ns nshg& t B& nR ln [ljm usl si gy s
Ýh l Øy] [ljm r sl e; mi glj , oa [ljm us ds dñ vj
fcØh l æk Øv lñ rj l l ksl s mi HED k dley Hki gækg&

u nR ln l si fjp; & mi HED k fcØhvfHbØ l si Ør gækg& vj u, nR ln dh
rj Q vldf'Ø gækg& mi HED k dk; g LoHko mi HED k dks
dbZu, rjg ds nR ln l sv oxr dj k k g&

ct V eal ægu culuseaenn djr k & fo' l k v d l jaij fcØhvfHbØ } lj k nR ln dh dter laea
g& d l Qh f x j loV v k h g& , b seami HED k nR ln l d l [ljm
dj vi usi f j o j ds ct V eal ægu cBk k g&¹¹

¼½ l ek dsfy, egPo &

j k x lj v d j & fcØhvfHbØ d l sc d ek ns s g s q d l Qh y l k l d h v l o'; dr k
gæh g& bl l s d b Z c j k x lj ; qk y M l s v l j y M l ; l d l s
j k x lj ds v o l j fey r s g&

l Hh l k l d s fy, enrxlj & fcØhvfHbØ eami HED k d l si Ør l fgr dj us ds dbZ v d j
fn, t k s g Sft l l sl ek dk gj l n l ; vi uht : jr ds
fg l k l sl l eku [ljm l dr k g& v l j det lj v l R Ø l l R r
o j s y l k Hh, b seavi uh v l o'; dr k l d hi f v Z d j r k g&¹²

fcØhvfhbf) dsy hkk, oagfu

fcØhvfhbf) dsy hkk &

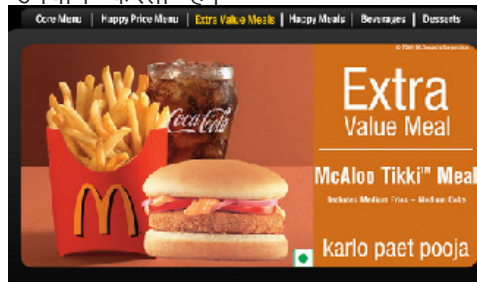
- fcØheaoj) & fcØhvfhbf) de le; eafcØhdsc<ek g&
- Lohko eacny lo & vfhhbf) dh rduhla} ljk mi HED k ds Lohko eacny lo
fd; k t k k g&de dter mi HED k ds Lohko iforØ dk
egfbi v&mi dj. k g&
- ck M cny uk & vfhhbf) rduh , d fhlu ck M dls [ljmus dksi HED lgr
djr k g&xj fhlu ck M dhrj Q mi HED kvldf&Z g&ek g&
v& og m s viuk y&k g& rls og ck M cny uk ¼
Switching ½ dgy k k g&
- de dter & fcØhvfhbf) l snr ln dhe& c&h gsv& nr ln d vius
v&f& Lrj dls Åij nr kus dky hkk de k g& fj v&j o
mi HED k dhvf& [ljm nr ln d dter d&de djrk
g&ft l l s nr ln d dls eqQk g&ek g&v& mi HED k g&c
nr ln d dter de g&h g&
- u nr ln dhe& c<ek & fcØhvfhbf) dh dbZ rduh u, nr ln ds iz& ds
v& lj dsc<ek n&hg&fcØhvfhbf) rduh mi HED k ds
eu eavfhbf) nr ln dls [ljmus dh b&nk dksi HED lgr
djr k g&; g nr ln dhe& dsc<ek n&k g&
- i fr 'Bk & fcØhvfhbf) dhvld'& rduh i& {kv& vi& {k : i
ead& uhdhi fr 'Bk cuk hg& fcØhvfhbf) rduh y&ka
dsf&e& eack M d k u& v& nr ln dls; ln j [k hg& t ls
fd QeZdhi fr 'Bk cuk useal g; & djr hg&¹³
- fcØhvfhbf) dh g&fu; k &
- N&hl e; l h&k & fcØhvfhbf) dki H&o rjr i M&k g& cgq de , b k g&k
g&st c fcØhc<e& g&Zg&h g&rc fcØhvfhbf) dhr duh
yx& k lj ugraj [lht k h g&ft l l sfcØhrj& ?W t k h g&
fcØhvfhbf) dkT; knki z& d& uhdhNfo d&de djrk
g&
- N&hg&Zdter & fcØhvfhbf) ead bZ dter t B&szulu) fcØhdsc<e&sea
yx&sl e; , oai zRu dh dter l h&e gh ugracr lbZt k h g&
t k&fd d&r fod y&h&ad ls ?W k h g&

द्वारा अपने उपभोक्ता को अपने से जोड़े रखता है।

उपभोक्ता को अपने से जोड़े रखता है। डब कवदंसके अपनी के बिक्री अभिवृद्धि तकनीकों को फ्री कूपन छूट आदि तरीकों द्वारा मुख्यतया करता है। डब कवदंसके अपनी अभिवृद्धि तकनीकों में अपने हर आयुवर्ग के उपभोक्ता, और हर आर्थिक स्थिति के उपभोक्ताओं का ध्यान रखता है और जिस हेतु वह 25 Rs. में – Mc Aloo Tikki Burger तथा 99 Rs. में Meal (coke, Burger, fries) जैसी तकनीकों का विशेष उपयोग करता है।¹⁴

Case Studies

1. Mc donalds - Mc donald समय-समय पर अपनी अभिवृद्धि तकनीकों द्वारा अपने उपभोक्ता को अपने से जोड़े रखता है। डब कवदंसके अपनी के बिक्री अभिवृद्धि तकनीकों को फ्री कूपन छूट आदि तरीकों द्वारा मुख्यतया करता है। डब कवदंसके अपनी अभिवृद्धि तकनीकों में अपने हर आयुवर्ग के उपभोक्ता, और हर आर्थिक स्थिति के उपभोक्ताओं का ध्यान रखता है और जिस हेतु वह 25 Rs. में – Mc Aloo Tikki Burger तथा 99 Rs. में Meal (coke, Burger, fries) जैसी तकनीकों का विशेष उपयोग करता है।



2. Vishal Mega Mart - Vishal Mega Mart भी कई अवसरों, त्यौहारों, शादियों, वार्डमेंट में विशेष छुट जैसे- flat 40% off, up to 70%off जैसे ऑफर देता है तथा साथ ही वह कुछ निश्चित कीमत पर विशेष उपहार या कुछ रूपयों में कमी, जैसी अभिवृद्धि तकनीकों द्वारा अपने उपभोक्ताओं को आकर्षित करता है, जिससे उसकी बिक्री पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है।



3. Nike - जब Nike के अधिकतर उत्पाद मैराथन के लिए बनाए जा रहे थे, परन्तु तब भी छपाम की बिक्री में कोई ज्यादा असर नहीं पड़ रहा था। उस समय Nike की जगह Rebook or Puma को ज्यादा पसंद किया जा रहा था तब Nike ने अपनी एक विज्ञापन योजना तैयार की "Just do it" (1998) में, जिसमें Nike ने योजना तैयार की कि जो 5 मील नहीं दौड़ना चाहते हैं और थक जाते हैं तो वे सिर्फ Nike के उत्पाद पहने वे स्वयं जीत जाएंगे, और थकेंगे भी नहीं। इस विज्ञापन योजना से Nike ने 800 Million डालर घाटे में चल रही बिक्री को वसूल किया। Nike की यह विज्ञापन योजना उसकी बिक्री अभिवृद्धि की एक तकनीक ही थी।



4. Nivea- Nivea ने अपने सभी तरह के सौंदर्य प्रसाधन की सामग्री को Nivea Visage के नाम से भी प्रस्तुत किया। Nivea ने अपने उत्पाद Visage की बिक्री को बढ़ाने हेतु अपने उत्पाद को मेले एवं प्रदर्शनियां में आयोजित किया, मुन नमूने बांटे और साथ ही उसने अपने उत्पाद के समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं में कूपन भी बांटे, जिससे की उत्पाद को लोग पहचाने व खरीद को प्रेरित हो।¹⁵



सारांश

व्यापार अभिवृद्धि के उपकरणों जैसे-विज्ञापन, व्यक्तिगत बिक्री और लोक व्यवहार, बिक्री अभिवृद्धि में से बिक्री अभिवृद्धि एक उपकरण है। विज्ञापन खरीद का

एक कारण होता है जबकि बिक्री अभिवृद्धि, तकनीक उत्पाद की तुरन्त खरीद के प्रोत्साहन के लिए बनाई जाती है। बिक्री अभिवृद्धि एक खर्च नहीं है यह एक निवेश है जो संगठन को एक बेहतर कीमत वापस देता है। इसका उद्देश्य मांग बढ़ाना होता है। बिक्री अभिवृद्धि में बिक्री को प्रोत्साहित करने वाली सभी गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है। बिक्री अभिवृद्धि में नमूना, पैसा वापस देना, कीमत में कमी, उपहार, मुफ्त जांच, Warranties, Point of Purchase, उत्पाद प्रदर्शन आदि गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है तथा जिनसे उत्पाद की बिक्री बढ़ाई जाती है। आज के युग में कोई भी व्यापारिक संगठन प्रभावी विक्रय नीति के बिना बाजार में टिक नहीं सकता है। अभिवृद्धि की तकनीकों द्वारा उपभोक्ता के स्वभाव में बदलाव किया जाता है। बिक्री अभिवृद्धि का प्रभाव तुरन्त पड़ता है।

संदर्भ

1. Dr.Anurag Sharma, Dr. Anuradha Sharma : Advertising & Sales Promotion, Page No. 238, Publisher, Tata Mc Graw Hill Education Private Limited, New Delhi
2. Dr.Rakesh Kothari,Dr.Anil Mehta,Ashok Sharma : Marketing Management, Page No.13.1, Publisher Ramesh Book Depor, New Delhi.
3. नरेन्द्र सिंह यादव : विज्ञापन प्रबन्ध, पृ.स. 56, रा.हि.ग्र.अ. जयपुर।
4. जैनस शाज्जा : मल्टीलेवल मार्केटिंग, दुनियां का सर्वोत्तम व्यवसाय, अनुवादक, डॉ सुधिर दीक्षित, पृ.स. 63, मंजुल पब्लिशिंग हाउस।
5. Dr. G.M. Rege : Advertising Art & Ideas, Page No.198-2003, Ashutosh Prakashan,1984.
6. David A. Aaker, John G. Myers : Advertising Management, Page No.157-197, Publisher, PHI, Easten Economy Edition.
7. David W. Nylen : Advertising :Planning Implementation & control, page No. 510, Publisher, United States of America , 1986.
8. Willian A. Robinson : `What Are Promos` Weak, Strong Points, Advertising Age (April 7, 1980) Page No. 54.
9. Dr. C.S. Rayudu : Media And Communication Management, Page No. 625, Publisher, Himalaya Publishing House, New Delhi 1993.
10. Kruti Shah, Alan D'Souza : Advertising And Promotions An Page No. 581, Publisher, Tata Mc Graw Hill Education Private Limited, New Delhi .
11. George A. Field : Creativity in Marketing Management, Page No. 21, Publisher, The United States of America, 1967..
12. Subroto Sengupta : Brand Positioning Strategies For Competitive Advantage, Page No.126-169, Publisher, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi 1999 .
13. B.N. Ahuja & S.S.Chhabra : Advertising And Public Relations, Page No.46, Publisher, Surjeet Publication, 2006.
14. Campightrail, Page No. 20, September 16-30, 2011, afaqs! Reporter.
15. Ankur Gaurav : Top 10, Expeviential Marketing Platforms of 2013, Page No.62-64, January 2014, Pitch.

डॉ. वीणा जैन
एसोसिएट प्रोफेसर
संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

“शास्त्रीय नृत्यों की विवेचना”

नृत्य एक कला है; अन्य ललित कलाओं की भाँति यह भी आत्मानुभव को व्यक्त करने का माध्यम है। वस्तुतः नृत्य आन्तरिक उल्लास का सौन्दर्य-समन्वित प्रकाशन है। मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षी भी नृत्य के द्वारा अपने उल्लास को अभिव्यक्त करते देखे जाते हैं। मानव जीवन के साथ ही नृत्य का जन्म हुआ होगा, क्योंकि आनन्द एवम् उल्लास की अभिव्यक्ति मानव की मूल प्रवृत्ति है। नृत्य का प्रारम्भिक रूप प्राचीनतम वैदिक साहित्य में मिलता है। इस काल में नृत्य सामाजिक जीवन का एक प्रमुख अंग था। धार्मिक यज्ञ-यागादि से लेकर उत्सव पर्वों तक सर्वज्ञ नृत्य की प्रतिष्ठा थी। नर्तकियाँ अपने पैरों में घुंघरू बाँध कर सार्वजनिक रूप से नृत्य करती थीं। नर नारी सामूहिक रूप से सोमरस का पान कर विभन्न प्रकार के नृत्य जैसे-रज्जु नृत्य, सलिल नृत्य, अरूण नृत्य, प्रकृति नृत्य, पुष्प नृत्य और वसन्त नृत्य आदि में भाग लेते थे। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि समाज में कलाओं और कलाकारों की अलग-अलग श्रेणियाँ बन चुकी थी। तत्कालीन समाज नृत्य गीत के अंगों से सुपरिचित हो चुका था। अथर्ववेद 'पृथ्वी सूक्त' में भी गायन और नृत्य का उल्लेख हुआ है। वेद मंत्रों से ज्ञात है कि तत्कालीन जन-जीवन में धार्मिक अवसरों पर बड़े-बड़े समारोह आयोजित करते थे, जिनमें नृत्य संगीत के साथ नाटक का अभिनय हुआ करता था। नृत्य के प्रति सामाजिक आस्था को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उसे धर्म से सम्बद्ध किया गया था। नृत्य से देवता प्रसन्न होकर सब प्रकार का मंगल निष्पन्न करते हैं, इस प्रकार की जनभावना सदृढ़ हो चुकी थी।'

धीरे-धीरे साहित्य, धर्म और कला के सामंजस्य के साथ-साथ ये आंगिक मुद्राएँ नृत्यशास्त्र की मुद्राओं में विकसित हुईं और नृत्य शास्त्रियों ने उन्हें अनेक नियमों एवम् उपनियमों में बांध दिया। इस संदर्भ में भारतमुनि का नाट्यशास्त्र सटीक उदाहरण है जिसमें नाटक एवं नृत्य के विविध अंगों का विशद् विवेचन प्राप्त होता है।

मुगल काल में तो नृत्य की काया ही बदल गई, इसकी बाह्य प्रवृत्तियों पर

मुगल शासन का गहरा प्रभाव पड़ा। नृत्य में रूमानीयत व भावुकता के समावेश के साथ मनोरंजन की प्रवृत्ति पनपी। इस युग में कथ. आत्मक, वर्णनात्मक और गीत प्रधान नृत्यों का जन्म हुआ, इसी दौरान भक्ति के युग का विकास भी हुआ जिसमें कीर्तन नृत्य खूब पनपा। दक्षिण भारत में नृत्य का वातावरण सर्वथा पवित्र एवं भारतीय ही बना रहा।¹² इस युग में अनेक शास्त्रीय नृत्य निर्मित हुए



मध्यकालीन भरतनाट्य

नृत्य के मुख्यतः दो भेद किए गए—पुरुषोचित नृत्य (ताण्डव) और स्त्रियोचित (लास्य) नृत्य, जैसाकि मान्यता है— शिवजी और पार्वतीजी क्रमशः इनके अधिष्ठाता माने जाते हैं। शिव का ताण्डव प्रलयकालीन स्थिति का द्योतक है और पार्वतीजी द्वारा प्रवर्तित लास्य कोमल भाव—भंगिमाओं का नृत्य माना जाता है, यही भाव भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में विकसित होकर अलग-अलग नामों से पहचाने जाने लगे। इसमें से कुछ प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य निम्नलिखित हैं :-

कथक—सामान्यतः कथक का अर्थ “कथा कहे सो कथक कहावे”, नृत्याचार्य पं. बिरजू महाराज के अनुसार “कथयति यः सः कथक” अर्थात् जो कथक करता है वह कथक है। कथक नृत्य—कलात्मकता, विविधता एवम् मौलिकता की दृष्टि से उत्तर भारत का एक मात्र शास्त्रीय नृत्य है जिसकी उत्पत्ति मूलतः कथावाचन से हुई है। “भरत के शास्त्रीय नृत्यों में ताण्डव शैली को प्राचीन एवम् सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इस शैली का स्वरूप वर्तमान में प्रचलित नृत्य शैली कथक में देखने को मिलता है।¹³” प्राचीनकाल में कथावाचक महाभारत, रामायण इत्यादि धार्मिक एवम् पौराणिक ग्रंथों के विभिन्न प्रसंगों को जनसाधारण के समक्ष रोचक ढंग से प्रस्तुत कर उनमें निहित धार्मिक और दार्शनिक तत्वों को अपनी कथा वाचन कला के माध्यम से प्रस्तुत करते थे। प्राचीन कथावाचन की कला में समयानुसार धीरे-धीरे परिवर्तन हुए और उनमें मनोरंजकता के पुट का समावेश होता गया। कथावाचक कथावाचन के साथ-साथ पद संचालन, अंग-प्रत्यंग, भाव इत्यादि का प्रयोग भी करने लगे जिसके फलस्वरूप शास्त्रीय नृत्य शैली ‘कथक’ का आविर्भाव हुआ।¹⁴

कालान्तर में नृत्यकारों ने कथक नृत्य के प्रति बहुमुखी दृष्टीकोण अपनाया, फलस्वरूप कथक के तीन प्रमुख शैलियाँ लखनऊ घराना, जयपुर घराना व बनारस घराने के नाम से विकसित हुई :-

लखनऊ घराने के ठाकुर प्रसाद के पुत्र बिंदादीन और कालका प्रसाद ने

मिलकर आधुनिक कथक नृत्य को जन्म दिया। बिंदादीन की टुमरियाँ, दादरे और भजन आज भी कथक के प्राण माने जाते हैं। इसी परम्परा के निर्वाहक अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभू महाराज रहे। वर्तमान में बिरजू महाराज लखनऊ घराने के प्रतिनिधि या कहें मशालची हैं। कोमलता, साज-सज्जा, संकेतात्मकता, वैषयिकता, मुखड़े द्वारा भाव की अभिव्यक्ति तथा नेत्रों द्वारा भाव का प्रदर्शन इस प्रकार का संचारी भाव लखनऊ घराने के नृत्य की विशेषताएँ हैं।⁶



fjt veqjlk

जयपुर घराने के जन्मदाता के रूप में भानूजी का नाम लिया जा सकता है। जयपुर घराना सामान्य तौर पर राजस्थान के रजवाड़ों का आश्रय पाकर विकसित हुआ। इस घराने की विशेषता यह है कि इसमें नृत्य के साथ-साथ गाने तथा तबला-पखावज के वादन में भी ये नृत्यकार निपुण हैं। साथ ही ताण्डव तथा लास्य दोनों ही शैलियों पर इन्हें समान अधिकार है। इस घराने के कलाकारों में स्व. कुंदन लाल, श्री मोहन राव, राजेन्द्र गंगानी, गिरधारी महाराज, शशि साँखला, राजकुमार जबड़ा, उमा शर्मा, प्रेरणा श्रीमाली आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।⁶

बनारस घराने को जानकी प्रसाद घराने के नाम से भी जाना जाता है। इसका जन्म राजस्थान में हुआ किन्तु विकास बनारस में ही हुआ। इस घराने की विशेषता है कि इसमें केवल नृत्य के बोलों का उपयोग किया जाता है, तबला और पखावज के बोल उपयोग में नहीं लेते हैं।⁷ इस घराने के नर्तक तैयारी से ज्यादा सौंदर्य व कोमलता को प्रधानता देते हैं। केवल राधा-कृष्ण के छेड़छाड़ पर ही केन्द्रित न होकर ये घराना सामा. जिक जीवन दर्शन से संबंधित प्रसंगों को भी अपने भावाभिनय द्वारा कुशलता से प्रस्तुत करता है।⁸ इस घराने के कलाकारों में स्व. गोपीकृष्ण स्व. अलखनंदा, सितारा देवी, तारादेवी आदि हैं।

भरतनाट्यम्-शब्द की उत्पत्ति भाव, राग, ताल व नाट्य शब्द से हुई प्राचीन समय में इसे "देवदासी अट्टम" भी कहा जाता था।⁹ यह नृत्य दक्षिण के तंजौर तथा तुरनेल वेली प्रदेशों में प्रचलित हैं मूलतः यह नृत्य देवदासियों द्वारा मंदिरों में किया जाता रहा। इसमें राधाकृष्ण व अन्य देवी-देविताओं की लीलाओं को नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में अल्लारिपु, कोट्टवम, गणपति



: fLk.khnsbv : 89

वन्दना, जातिस्वरम्, शब्दम्, पदम्, स्तुति, व तिल्लाना आदि अंग होते हैं। ताण्डव की भांति भरतनाट्यम् में भी भंगिमाओं एवम् चेष्टाओं का निजि महत्व रहता है। इस नृत्य में सौंदर्य ग्रीवा संचालन तथा लय के अनुसार पद-संचालन में निहित है।¹⁰ प्राचीन समय में यह नृत्य केवल स्त्रियों द्वारा मंदिर में ही किया जाता था, परंतु अब पुरुष व स्त्री दोनों ही प्रस्तुती देते हैं तथा रंगमंच पर भी यह नृत्य होता है। इस नृत्य में संगति हेतु मंदगम्, बाँसुरी, बेला जैसे वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

इस नृत्य के प्रमुख कलाकारों में —ई. कृष्ण अय्यर, बाल सरस्वती, रूक्मिणी देवी अरुण्डेल, यामिनी कृष्णमूर्ती, सोनलमानसिंह, वैजयन्ती माला, मृणालिनी साराभाई, कुप्पैया, गोविन्दराज पिल्लै, महालिंगम पिल्लै, मल्लिका साराभाई, पदमा सुब्रमण्यम आदि हैं।



कथकली—दक्षिण भारत के केरल प्रदेश का नृत्य नाटक है। शाब्दिक दृष्टि से कथा का अर्थ है ‘कहानी’ और कली का अर्थ है ‘खेल’।¹¹ इस नृत्य में अभिनेता मुखौटा लगाकर पौराणिक कथाओं की संगीतमय अभिव्यक्ति करता है। यह पुरुष प्रधान नृत्य है, मूक अभिनय से युक्त कथकली एक प्रकार का व्याख्यात्मक संगीत नाटक है। इस नृत्य का सबसे प्रभावशाली भाग यह है कि इसके चरित्र कभी बोलते नहीं हैं। उनके चेहरे के हाव-भाव, भौहों की गति, नेत्रों का संचालन, नाक और टोड़ी की अभिव्यक्ति पर बारीकी से काम किया जाता है।¹² नृत्य के जीर्णोद्धार का श्रेय इस सदी के महाकवि ‘वल्लथोल’ को है।¹³ इस नृत्य में प्रमुख गायक ‘पोनानी’ तथा सहायक गायक को ‘सिकंडी’ कहा जाता है। परम्परागत तौर पर यह नृत्य सूर्यास्त के बाद प्रारम्भ होता है तथा देर रात तक समाप्त किया जाता है।¹⁴ नृत्य में चेण्ड, दक्कु, शुद्ध मण्डलम, व मंजीरा वाद्य यंत्रों के साथ संगत की जाती है।

कथकली के कलाकारों में शंकरन् नम्बूद्रीपाद, गोप. िनाथ, कुंजुकुरूप, राघवन नायर, कनक रेले तथा कृष्णन कुट्टी के नाम प्रसिद्ध हैं।

मणिपुरी—“नृत्य पूर्वी बंगाल और आसाम का लोकप्रिय नृत्य है, इसे लाइहरोबा तथा रास नृत्य भी कहते हैं। विशेष रूप से मणिपुर प्रदेश में लोकप्रिय होने के कारण इसे मणिपुरी नृत्य कहते हैं।” इसमें धार्मिक और पौराणिक



मणिपुरी नृत्य का एक दृश्य

एक गाथाओं का प्रदर्शन होता है। मन्द-मन्द कम्पन और गति तथा पदाघातों से नृत्य का प्रारम्भ होता है जो धीरे-धीरे चरम विकास की ओर बढ़ता है। इस नृत्य में कोमलता और सुकुमारता के दर्शन होते हैं। इस नृत्य की वेशभूषा भी आकर्षक होती है।¹⁶ नृत्य में, ढोल, बाँसुरी, खोल, घण्टे, मंजीरे जैसे- वाद्यों के साथ संगति की जाती है।

मणिपुरी नृत्य के कलाकारों में अमुबी सिंह, शातिवद्ध न, सविता बहिन, बिपिन सिंह, तोम्बीदेवी, ज्ञवेरी बहिन, सिंह जीत सिंह, चारु सिया माथुर, प्रीति पटेल तथा श्रुति बनर्जी के नाम प्रसिद्ध हैं।

ओड़िसी-‘ओड़िसी’ या ‘उड़ीसा’ नृत्य की परम्परा भरतनाट्यम् नृत्य की तरह ही प्राचीन है। बुद्धकालीन सहजयान और वज्रयान शाखाओं की सौन्दर्य प्रधान साधना से ‘उड़ीसी’ नृत्य का जन्म हुआ। सातवीं शताब्दी में भगवान को समर्पित महरी परम्परा ने ईश्वर आराधना के लिये योग-तंत्र से संबंधित अंग-मुद्राओं का समावेश करके लास्य प्रधान नृत्य शैली का सूत्रपात किया जो सन् 1950 से विशेष प्रकाश में आई।¹⁷ नाट्यशास्त्र में चार नृत्य-शैलियों का उल्लेख मिलता है - अवन्ति, दक्षिण गत्य, पांचाली और औड़मागधी। ईश्वर को समर्पित भाव-भंगिमायें इस नृत्य शैली का आधार हैं, जिनमें प्रधान भाग लास्य और अल्प भाग ताण्डव का मिश्रित है।¹⁹ ओड़िसी नृत्य में भरतनाट्यम् और कथक का मिला-जुला स्वरूप दिखई देता है, क्योंकि इसमें लास्य व ताण्डव दोनों ही नृत्यों का मिश्रण है। इस नृत्य में कवि जयदेव की ‘अष्टपदी’ का गायन प्रमुखता से किया जाता है। ‘ओड़िसी’ नृत्य में ‘ताण्डव प्रधान’ तत्वों का मिश्रण होने से यह लास्य-ताण्डव के रूप में बहुत आकर्षक बन गया है। 13वीं शताब्दी में निर्मित भुवनेश्वर के कोर्णाक मन्दिर का नट मण्डप और पुरी का जगन्नाथ मन्दिर इस नृत्य की आधार भूमि रहे हैं।

ओड़िसी नृत्य के प्रमुख कलाकारों में - श्री मोहन महापात्र, शर्मिला बिश्वास, केलुचरण महापात्र, संयुक्ता पाणिग्रही, सोनल मानसिंह, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मोहिनीअट्टम्- शब्द “मोहिनी” तथा अट्टम् शब्दों से बना है। “मोहिनी” का अर्थ है ‘महिला जो अत्यधिक आकर्षक है’ तथा “अट्टम्” का अर्थ है ‘लालित्य



'167kic' 01 18



v kulkh.k.l ; kulkh

तथा मनोहर शारीरिक मुद्रायें।²¹ मोहिनीअट्टम् का विषय प्रेम तथा भक्ति होता है जो भगवान को समर्पित होता है। इस नृत्य के चार प्रकार होते हैं – समिसरम्, तगणम्, धगडम् तथा जगणम्। यह भरतनाट्यम् तथा कथकली दोनों के प्रभाव से उत्पन्न हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ट्रावनकोर के महाराजा स्वाति तिरुनाल के द्वारा मोहिनीअट्टम् नृत्य-विधा विशेष प्रकाश में आई। केरल प्रदेश के इस नृत्य में दरबारी गीत-संगीत की प्रधानता रहती है, जिसमें भरतनाट्यम् और कथकली नृत्य शैलियों का सम्मिश्रण है। यदि भरतनाट्यम् और उड़ीसी नृत्य शैलियाँ भक्ति प्रधान हैं तो मोहिनीअट्टम् श्रृंगार प्रधान है। भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप के प्रतीक स्वरूप मोहिनीअट्टम् मलियाली कला को जीवित रखने वाली नृत्य शैली है। कथकली की भांति मोहिनीअट्टम् का उद्धार भी महाकवि कल्लथोल नारायण मेनन के प्रयत्नों से हुआ।²²

मोहिनी अट्टम् के प्रमुख कलाकारों में – श्रीकृष्ण पणिकर, आनन्दा सयाना, गुरु गोपनाथ, कलयाजी, कुट्टी अम्मा, गुरु कुंजन पणिकर, कोचकुंजी अम्मा, शान्ताराव आदि हैं।



jk lk&jkjkj&444

कुचीपुड़ी-आन्ध्र तथा तमिल प्रदेश में प्रचलित नृत्य-नाटकों में सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य है। ये नृत्य नाटक प्रायः श्रीमद्भगवत् पुराण से कथानक लेकर रखे जाते हैं।²³ इस नृत्य में स्त्री पुरुष की भूमिकाओं को अधिकतर पुरुष पात्र ही अंभनीत करते हैं जिनमें गीत, नृत्य संवाद एवं मूक अभिनय भी रहता है, यह नृत्य भरतनाट्यम् और आडिसी नृत्य की विशेषताओं को भी अपने में संजोये हुए है। “इस नृत्य को रंगमंच पर लाने का श्रेय सितेन्द्र योगी को दिया जाता है।”²⁴ इसमें लयबद्ध पद संचालन, सूक्ष्म चेहरे का भाव और शैली मुद्राओं के द्वारा भावाभिव्यक्ति आदि इस नृत्य शैली की प्रमुख विशेषता है।” कुचीपुड़ी में नर्तक सर पर पानी से भरे पात्र को रखकर पैरों को पीतल की थाली पर संतुलित करता है।²⁶ कुचीपुड़ी नृत्य में संगत हेतु मृदंगम, वायलिन, बाँसुरी व तम्बुरा आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है।



nekspj kl".lkz

इस नृत्य के प्रमुख कलाकारों में – वेदान्तम् सत्यनारायण, यामिनी कृष्णमूर्ती, शोभानायडू, वैजयन्ती

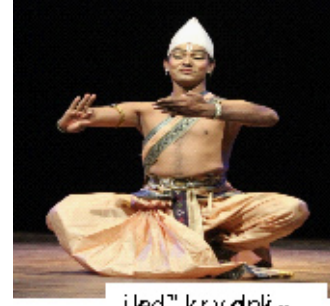
माला, उमा मुरलीकृष्णा, स्वप्न सुंदरी, राजा—राधा रेड्डी तथा मल्लिका साराभाई इसके प्रसिद्ध कलाकारों में गिने जाते हैं।

सत्त्रिया नृत्य – सत्त्रिया नृत्य 15 नवम्बर, 2000 को संगीत नाटक अकादमी द्वारा भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की शृंखला में सत्त्रिया नृत्य आठवें शास्त्रीय नृत्य के रूप में शामिल होने का गौरव प्राप्त हुआ। यह आसाम का शास्त्रीय नृत्य है। इस नृत्य के संस्थापक श्रीमनता शंकर देव है, जिन्होंने नृत्य का अंकिया नाट (नाटक का एक रूप) के लिये बनाया। इस नृत्य में पौराणिक कथाओं को मनोरंजन के साथ कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाता है प्रारम्भ में यह नृत्य मठों के अन्तर्गत परम्परागत रूप से पुरुषों (पुरुष भिक्षुओं) द्वारा किया जाता था परन्तु अब इस नृत्य में पुरुष और महिलाएँ दोनों ही मंच प्रदर्शन करते हैं।

नृत्य में सांगीतिक रचानाएँ शास्त्रीय रागों पर आधारित होती हैं तथा खोल (Drum) थाल (झांझ) और बांसुरी के साथ इसकी संगती की जाती हैं। आजकल वायलिन व हारमोनियम का भी प्रयोग किया जाने लगा है।

अन्य नृत्य – भगवती तिरयट्टम—यह नृत्य देवी भगवती की उपासना के लिये किया जाता है। इसमें ढोल बजाए जाते हैं तथा वेणुवादन होता है और गीतों के द्वारा देवी का आह्वान किया जाता है, जब देवी मंदिर में पधार जाती हैं तब संयत लयबद्ध कदमों से नर्तकी नृत्य करती है। वोलमटुल्लल—यह दक्षिण भारत का एक नृत्य है। यह काली के मंदिरों में धार्मिक उत्सव के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है। यक्षगण—यह भी दक्षिण भारत का एक नृत्य है। यह वस्तुतः एक नृत्य नाटक है। यह रात्रि के समय खुले स्थान में किया जाता है। इसमें सिर की सज्जा को विशेष महत्व दिया जाता है। इस नृत्य को इन्द्र देवता के बचपन का नृत्य कहा जाता है। इस नृत्य की क्रियाएँ ओजपूर्ण होती हैं।²⁹

निष्कर्षत भारतीय शास्त्रीय नृत्य सदियों से चली आ रही एक सशक्त एवम् सम्पन्न विधा है। धार्मिक यज्ञ, अनुष्ठानों से लेकर उत्सव एवम् पर्वों तक यह सर्वज्ञ विद्यमान है। “वर्तमान में विभिन्न नृत्य शैलियों के प्रदर्शनात्मक स्वरूप में पर्याप्त अंतर



jled".kry dnlj z



Dr. Mallika Kandali z

आया है। आज के नर्तक-नर्तकी- वंशभूषा, अलंकार, मुखसज्जा, वाद्य-वृन्द, ध्वनि प्रकाश आदि उपकरणों के साथ ही प्रदर्शन के वस्तुक्रम तथा समय सीमा के प्रति भी जहाँ अधिक सतर्क हैं, वहीं इनके परिश्रम से विभिन्न नृत्य शैलियों के उनके विस्मृत तत्व भी नवीन रूप-सज्जा के साथ प्रकाश में आए हैं। ओडिसी, कुचीपुडी, यक्षगान, कुडियाट्टम, छाऊ, सत्त्रिया, भरतनाट्यम नृत्यादि भूतकाल के अनेक शास्त्रीय नृत्य फिर से सज संवरकर जन मंच पर आ गए हैं।³⁰ इस मूल्यवान निधि के संरक्षण एवम् संवर्द्धन हेतु विद्यालय-विश्वविद्यालय, सरकारी-गैरसरकारी आदि अनेक सांस्कृतिक संस्थाएँ सत्त प्रयासरत हैं। विशेष रूप से नृत्य कलाकार भारतीय शास्त्रीय नृत्य विधा को विश्वपटल पर प्रकाशमान कर इस मूल्यवान सांस्कृतिक निधि को संरक्षित कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. पुराणों में नृत्य के तत्व डॉ. नीता गहरवार पृ. 2, 3,
2. प्रतियोगिता दर्पण अप्रैल 87/851
3. डॉ. जयचन्द्र शर्मा, कथक नृत्तम, (Grammer at Kathak Dance) पृ. 8
4. कथक का लखनऊ घराना और पं. बिरजू महाराज डॉ. मुधकर आनंद-आमुख।
5. संगीत अगस्त, 1989, पृ. 24
6. संगीत अगस्त, 1989, पृ. 25
7. संगीत अगस्त, 1989, पृ. 26
8. मॉडली सिंह कथक परम्परा, पृ.सं. 159-162
9. www.wikipedia.org/wiki/bharatanatyam
10. प्रतियोगिता दर्पण अप्रैल/87/852
11. https://hi.wikipedia.org/wiki/shastra_nritya
12. Dance Drama-Phillip b. Zarrilli
13. संगीत विशारद, पृ. 673
14. www.saigan.com/heritage/dances/dance-forms.html/
15. www.wikipedia.org/
16. संगीत विशारद, पृ. 673
17. संगीत विशारद, पृ. 675
18. www.wikipedia.org/
19. कथक नृत्य परिचय प्रकाश नारायण, पृ. 13
20. www.wikipedia.org/
21. www.wikipedia.org/wiki/mohiniaattm
22. संगीत विशारद, पृ. 675-676
23. प्रतियोगिता दर्पण अप्रैल 87/852

डॉ० भारत भूषण
अध्यक्ष, ललित कला एवं सगीत विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

महादेवी वर्मा का चित्र संसार

रचना मनुष्य का धर्म है। रचनाकार (कलाकार) अपनी विधा में अपने भाव को रचता/गढ़ता रहता है और कालान्तर में अपनी विधा को छोड़कर थोड़े या अधिक समय के लिए दूसरी विधा में कृति रचना करने लगता है। जब कभी कोई कवि चित्र बनाता है, तो उसके चित्रों में कविता की योग्यता दिखती है। कलाकार की आत्मा का आन्तरिक सौन्दर्य रंगों के माध्यम से फलक पर छन्द रचता है, जबकि चित्रकारों की कविता का सौन्दर्य रंगों से भरे शब्दों के रूप में दिखाई देता है। इसीलिए चित्रों से कवि निरन्तर संवाद स्थापित करता चला जाता है। ये चित्र कवि के अन्दर भी हलचल पैदा कर देते हैं। अलग-अलग चित्रों से अलग-अलग तरह का संवाद स्थापित हो जाता है और जब चित्र से कवि का संवाद स्थापित हो जाता है, तब कविता खुद ब खुद कवि की कलम से कागज पर उतरने लगती है। कवि को सफलता तभी मिलती है, जब वह भावों को समर्थ और सार्थक शब्द देते हुए शब्द संयोजन की एक नई दुनिया रच डालता है। ठीक उसी तरह जिस तरह की दुनिया को ये चित्र उसके (कवि/दर्शक) सामने खोलते हैं। इस प्रक्रिया को हम एक कला से दूसरी कला में प्रवेश भी कह सकते हैं। सम्भव है कि ऐसे चित्र दूसरे के मन में अलग तरह के भाव, गंध और स्पर्श पैदा करें। इस छवि को जब कवि ग्रहण करता है तो तरह-तरह से समृद्ध होता चला जाता है। चित्रों के अवलोकन से कवि को आसानी से सुन्दरता, कोमलता, मुस्कान, प्रेम, कठोरता, संघर्ष, सुख, दुःख, पीड़ा, आनन्द, अवसाद, हताशा, घृणा, आँसू, उत्पीड़न, गुलामी, असमानता, क्रोध, आक्रोश व व्यंग्य आदि मानवीय सरोकारों से जुड़े अनेक पक्षों पर विभिन्न रूपाकृतियाँ, प्रतीक, बिम्ब आदि देखने-समझने को मिलते हैं।¹

दीपकमय कर डाला जब
जलकर पतंग ने जीवन
सीखा बालक मेघों ने
नभ के आंगन में रोदन।

“ भारतीय काव्य और कला की आधारशिला आध्यात्मिकता है। उसका चरम उद्देश्य आनन्द का उद्रेक है। आनन्द एक विशिष्ट अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध लौकिक सुख और आत्मिक आनन्द से आत्मा का विकास होता है। आनन्द से ही सौन्दर्यानुभूति की निःसृति होती है। वस्तुतः इसके उत्स (उत्पत्ति) का सम्बन्ध सत्य और शिव (कल्याण) की अनुभूति से जोड़ा जाता है और ये त्रयी जीवन को आनन्दस्वरूप अथवा आनन्दमय बनाती है।² शॉपेन हॉवर के मतानुसार—‘प्रकृति और कला दोनों ही हमें आनन्द प्रदान करती हैं, परन्तु अन्तर मात्र इतना है कि कला और काव्य हमें प्रकृति के रहस्यों को समझाने में सहायता भी करती है।

विनोद भारद्वाज का मानना है कि कलाकार के अनुभव की जो धाराएं हैं, वे एक कला से दूसरी कला में भी बहती रहती हैं³ और जहाँ तक शब्दों की सहचरी प्रकृति का सम्बन्ध है, शब्दों में एक सहज स्वाभाविक चित्रात्मकता अन्तर्निहित रहती है।⁴

गरजता सागर बारम्बार

कौन पहुंचा देगा उसपार?

चित्राभिव्यक्ति—‘तूफान’

काव्य एवं चित्र दोनों में चेतना के सृजनात्मक प्रवृत्ति का प्रकाश मूलरूप से एक ही सा होता है। इसी प्रकाश की अभिव्यक्ति को कला कहते हैं।

काव्य जीवन की विशद व्याख्या है और कवि की अनमोल सृष्टि, जिसमें हमारी सारी संवेदनाएं, सारी अनुभूतियाँ, विकार और मनोवृत्तियाँ आदि सभी कुछ समाहित रहती हैं। ‘छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का मानना है कि ‘शब्द—शब्द में काव्य है’। उनका प्रत्येक शब्द एक विशेष सान्दर्भिक चित्र छिपाये रहता है। महादेवी को शब्दों की आत्मा का अद्भुत ज्ञान है। शब्दों को वे ऐसा स्थान देती हैं कि अपनी कान्ति में वह हीरा बन जाता है। वे कहती हैं कि किसी कार्य को सुन्दरता के साथ करना ही कला है।⁵ अरस्तु ने भी माना है कि कला मानव के अपने जीवन विकास को सुन्दर सुखी बनाने के लिए विविध जीवन स्तरों के सत्त संघर्षपूर्ण वास्तविक जीवन की गत्यात्मक अभिव्यक्ति है। वास्तव में कला का सम्बन्ध उसके जीवन को प्रभावित करने की शक्ति से होती है।

‘आधुनिक चित्रकला में अभिव्यक्ति तथा अभिव्यंजना शब्द को सर्वाधिक महत्व मिला है। इसका सीधा सम्बन्ध गहन अन्तस की भावनाओं के वाह्य प्रकाशन से है, परन्तु इसमें भी मूल तथ्य इस पर निर्भर करता है कि कलाकार/कवि वाह्यजगत को त्यागकर जिस कला (अभिव्यक्ति) को सबके सामने प्रस्तुत करता है, वस्तुतः अपनी ही भावनाओं का आदर करता है और इन्हीं के अनुरूप अपनी अभिव्यक्ति को भी

ढाल लेता है। वास्तविक रूप में देखा जाये तो पता चलता है कि प्रभाववाद और अति यथार्थवाद आदि शब्द उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितना कि अभिव्यंजनावाद। प्रसिद्ध विद्वान वाचस्पति गैरोला का मानना है कि अभिव्यंजनावाद से तात्पर्य उस मौलिक वृत्ति से है जिसके द्वारा हम अपने चारों ओर के संसार को अनुभव करते हैं, देखते-जानते-समझते हैं और उसे अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।⁶

काव्य एवं चित्र दोनों में चेतना के सृजनात्मक प्रवृत्ति का प्रकाश मूलरूप में एक ही सा होता है। इस प्रवृत्ति के प्रकाश की अभिव्यक्ति को कला कहते हैं। काव्य 'कला' का वाङ्मय रूप है अर्थात् काव्य कला का शब्दमय (नाद ब्रह्ममय) रूप है। तभी तो इसमें चेतन/अचेतन जगत की सभी संवेदनाएं समाहित रहती हैं। उदाहरण—

चुभते ही तेरा अरुण बाल,
बहते कण-कण से फूट-फूट
बहते निर्झर से सजल गान

(महादेवी वर्मा की चित्राभिव्यक्ति-‘अरुणा’ पर आधारित काव्य पंक्ति)

कला जगत के अभिव्यंजनावाद की तरह काव्य जगत के छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।

महादेवी वर्मा ने इस भाव को अत्यन्त सहज-सरल ढंग से कहा है कि—“मनुष्य के सुख-दुःख जिस प्रकार चिरन्तन हैं, उनकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही चिरन्तन है, परन्तु यह कहना कठिन है कि उन्हें व्यक्त करने के साधनों में प्रथम कौन था।

सम्भव है जिस प्रकार प्रभात की सुनहरी रश्मि छूकर चिड़िया आनन्द में चहचहा उठती है और मेघ को घुमड़ता-घिरता देख मयूर नाच उठता है, उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले-पहले अपने भावों का प्रकाशन ध्वनि और गति द्वारा ही किया हो। विशेषकर स्वर सामन्तस्य में बंधा हुआ गेय काव्य मनुष्य हृदय के कितना निकट है।⁷

दुखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्तक्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिसमें संयम का नितान्त अभाव है। उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है, जिसमें संयम के अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती है। उसका प्रकाशन एक दीर्घ निःश्वास में भी है, जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्व

रा भी हो सकता है, जो निष्क्रिय बन जाती है। उदाहरण—

जहाँ आशा बनती नैराश्य
 राग बन जाता है उच्छ्वास
 मधुर वीणा है आर्तनाद
 तिमिर में मिलता दिव्य प्रकाश
 हास बन जाता है रोदन
 वहीं मिलता नीरव भाषण।⁸

आज हमारा हृदय ही हमारे लिये संसार है। हम अपनी प्रत्येक सांस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं। अपनी प्रत्येक कम्पन को अंकित करने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं। सम्भव है यह उस युग की प्रतिक्रिया है, जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कहकर संसार भर का इतिहास कहना था, हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आहत करना था।

“इस युग के कुछ गीत मलय समीर के झोंको के समान हमें बाहर से स्पर्श कर अन्तरतम तक सिहरा देते हैं, कुछ अपने दर्शन से बोझिल पंखों द्वारा हमारे जीवन को सब ओर से छू लेना चाहते हैं। कुछ किसी अलक्ष्य डाली पर छिप कर बैठी हुई कोकिल के समान हमारे ही किसी भूले स्वप्न की कथा कहते रहते हैं और मंदिर के धूम, धूप के समान हमारी दृष्टि को धुंधला परन्तु मन को सुरभित किये बिना नहीं रहते। जैसे—

मेरे बिखरे प्राणों में
 सारी करुणा दुलका दो,
 मेरी छोटी सीमा में,
 अपना अस्तित्व मिटा दो!
 पर शेष नहीं होगी यह
 मेरे प्राणों की क्रीड़ा
 तुमकों पीड़ा में ढूँढा है
 तुममें ढूँढूँगी पीड़ा!⁹

या फिर—

वे कहते हैं उनको मैं
 अपनी पुतली में देखूँ
 यह कौन बता जायेगा
 किसमें पुतली को देखूँ ?¹⁰

‘छायावाद की प्रकृति घट, कूप में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों

में प्रकट एक महाप्राण बन गई। अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक ही कारण—एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएं, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत रेखा, मानव की लघुता, विशालता, कोमलता, कठोरता, चंचलता, निश्चंचलता और मोह—ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। महादेवी की कविता के ये अंश बहुत कुछ इन्हीं भावों की व्यंजना करते हैं—

लघु प्राणों के कोनों में
खोई असीम पीड़ा देखो
आओ हे निस्सीम! आज
इस रजकण की महिमा देखो
प्राणों के अन्तिम पाहुन!¹¹

तुम मुझमें प्रिय
फिर परिचय क्या?¹²

इस अनन्त पथ में संसृति की सांसे करती लास
जाती है असीम होने मिटकर असीम के पास

महादेवी ने लिखा है, “जब प्रकृति की अनेक रूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतना और उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक—एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।”

“परन्तु इस सम्बन्ध से मानव हृदय की सारी प्यास बुझ न सकी क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुरागजनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं होती, तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। “अलि कैसे उनको पाऊँ ? “ में असीम की तलाश है, प्यास है, व्याकुलता है तो वहीं आत्मविसर्जन भी है—

मधुर—मधुर मेरे दीपक जल!
युग—युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

‘दीपक’ नामक चित्र में अद्भुत काल विभाजन किया गया है। युग से पल तक की यात्रा में असीम के प्रति ससीम का अद्भुत समर्पण भाव चित्रित है। इस चित्र/

काव्य में आत्म विसर्जन की पराकाष्ठा है, त्याग की ऐसी चाह कि प्रियतम असीम में विलीन होने की कवि/चित्रकार की ऐसी चाहत है जिसमें अपना सर्वस्व दे देने की प्रबल इच्छा दर्शनीय है—

क्या देता मेरा सूनापन
उनके चरणों को उपहार?
बेसुध सी मैं धर आई,
उन पर अपने जीवन की हार!¹³

चिर ध्येय यही जलने का
ठंडी विभूति बन जाना
है पीड़ा की सीमा यह
दुःख का चिर सुख हो जाना¹⁴
किसी शायर ने भी कहा है कि—
“दर्द सिमट कर दिल बन जाये
ये भी तो हो सकता है।”

महादेवी वर्मा के चित्रों और विशेष रूप से कविताओं में प्रियतम की तलाश, भटकाव और विकलता रहस्यवादी धारा के अन्तर्गत चित्रित है। इनके गीतों चित्रों में व्यक्त प्रियतम के लिए वेदना पूर्व के विभिन्न मतों की विशेषताओं से युक्त होने पर भी उस सबसे अलग है। इनकी अभिव्यक्तियों में लौकिक प्रेम की तीव्रता, पराविद्या की अपार्थिवता, वेदान्तों के अद्वैतवाद की छाया और कबीर के पारलौकिक सांकेतिक दाम्पत्य भावना को लेकर एक अद्वितीय नेह सम्बन्ध की रचना हुई है। “तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या? “जैसी अभिव्यक्ति में जिस रहस्य की सृष्टि हुई, जिस अनिर्वचनीय आत्म समर्पण का प्रकटीकरण हुआ, वह कला के अतिरिक्त दुर्लभ है। शब्दभाव का रंगभाव में एक नवीन रूप-गुण के साथ प्रत्यावर्तन वस्तुतः ऊर्जाओं के प्रत्यावर्तन के ही समान है। कविता ‘नाद’ गुण सम्पन्न और चित्र प्रकाश गुण सम्पन्न है। नाद/ध्वनि के रूप का प्रकटीकरण या भाव का आकारगत प्रत्यक्षीकरण है तो ब्रह्माण्ड सृष्टि का स्थूल रूप है। इसी स्थूल रूप में कलाकार/कवि पार्थिव वस्तु के अपार्थिव रूप के साथ हँसता या रोता है। उसे मानवीय सम्बन्धों में बांध कर रखना चाहता है। जिस प्रकार पानी अलग-अलग रंगों के पात्रों में जाकर अपना रूप और रंग बदल लेता है, ठीक उसी प्रकार चिन्तन, सुख-दुःख की अनुभूति की मानव हृदय की सीमा और अनुभूति की तीव्रता के अनुसार रूप बदलकर प्रकट होता है। महादेवी की अभिव्यक्तियाँ (गीत-चित्र आदि) इससे अलग नहीं हैं। वे उनका आत्म

निवेदन ही हैं जो चित्र अथवा गीतों में प्रकट हुआ है—

शून्य मंदिर में बनूंगी

आज मैं प्रतिमा तुम्हारी

इस कविता में ‘स्पेस और ऑब्जेक्ट’ का, अमूर्तन और मूर्तन का अद्भुत प्रयोग दिखायी देता है। मंदिर दिमाग में नहीं आता बल्कि गायब हो जाता है। शून्य का हल्का अस्पष्ट आकार विशालता प्राप्त करने लगता है। महादेवी ने कहा भी है कि ‘मेरी रंगीन कल्पना के जो रंग शब्दों में न समाकर छलक पड़े या जिनकी शब्दों में अभिव्यक्ति मुझे पूर्ण रूप से संतोष न दे सकी, वे ही तूलिका के आश्रित हो सके हैं। इसी से इस रंगों के संघात का स्वतः पूर्ण होना सम्भव नहीं। यह तो मेरे भावातिरेक में उत्पन्न कविता प्रवाह से निकलकर एक भिन्न दिशा में जाने वाली शाखा मात्र है। अतः दोनों गुण—दोष में समान ही रहेंगे। रचनात्मकता की ऐसी विवशता/परिस्थिति से प्रायः सभी कलाकार गुजरते हैं, परन्तु सारे कवि न तो चित्रकार होते हैं और न तो सारे चित्रकार कवि। विधागत परिवर्तन प्रत्येक विधा की सीमित सीमा के कारण और बहुत बार रचना के अभिव्यक्तिगत आस्वादन में परिवर्तन के कारण भी हो सकता है।

सम्भवतः यही कारण है कि काव्य और कला दोनों अपने अभिव्यक्ति माध्यम में एक दूसरे से पूर्णतः अलग होने के बाद भी आन्तरिक/भावनात्मक स्तर पर एक से हैं। जो कोमलता महादेवी के गीतों में है, वही कोमलता उनके चित्रों में भी है। नारी आकृतियों का लालित्य भरा सौन्दर्य जिस प्रकार चित्रों में पूरी गम्भीरता, तल्लीनता के साथ अंकित है, उसी गम्भीर वेदना के साथ नारी उनके काव्य में भी अवतरित हुई है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार ‘महादेवी में परोक्ष—रति का, जो आसत्त्व रति का प्रक्षिप्तरूप है,¹⁵ मुखरित हुआ है। जहाँ तक माध्यमों के भिन्नता का प्रश्न है, जिसके कारण कला के कई नाम हैं, का अस्तित्व तो कलाकार का ही अस्तित्व होता है। महान कलाकार जिस माध्यम को संवेदनशीलता, कला साधना और तल्लीनता से पकड़ते हैं, वही माध्यम महान हो जाता है। तल्लीनता की चरम अवस्था में सभी कलाओं का कैनवास एक हो जाता है और यही स्थिति कलाओं में अन्तःसम्बन्ध स्थापित कर देती है।.....‘उत्तम काव्य तथा चित्र के समझने को एक ही तरह की सूक्ष्म और तीखी समझ चाहिए। कवि और चित्रकार की कल्पनाशक्ति भी बिल्कुल एक सी है।¹⁶

‘कवि और चितरे सहमनः तो होते ही हैं, दोनों की मानसिक संरचना एवं संवेदनशीलता भी समान होती है। रचना प्रक्रिया में माध्यम का ही तो अन्तर होता है। कवि और चितरे दोनों का अपना—अपना समान कैनवास होता है, जिन पर चितरे

रंग और रेखाओं से बिम्बों को साकार करते हैं और कवि शब्द संयोजन से। इस संदर्भ में बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है—‘अब रहा उपादानकरण या समान अर्थात् कवि के लिए वाग-विभव और चित्तरे के लिए रंग का चटकीलापन इत्यादि। सो जिसके पास जैसा होगा, वैसा ही वह काव्य तथा चित्र बना सकेगा।’¹⁷

ऐसा लगता है कि शायद शब्द उन्हें (महादेवी वर्मा को) अपनी बात कहने के लिए पर्याप्त नहीं लगे और चित्र में वे अपने कई रचनात्मक संवेग को पूरी तरह उतार सकीं।

प्रमुख छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा कुशल चित्रकार थीं और अपनी ही कविताओं के भावपूर्ण चित्र उन्होंने बनाया है। महादेवी वर्मा की चित्रशैली बंगाल कला शैली से प्रभावित लगती है।

महादेवी वर्मा के चित्रों में कोई पूर्वाग्रह नहीं है, वरन् उसमें उनकी अपनी अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। इनके चित्र रेखांकन प्रधान हैं। उनका रेखांकन, बल, लय और प्रवाहयुक्त होने के साथ-साथ कोमलता से भरा है, जिसका दर्शन उनके प्रत्येक चित्र में होता है। उनके चित्रों में तूलिकाघात नहीं बल्कि तूलिका का प्रेमपूर्ण स्पर्श दिखायी देता है। सौन्दर्यपूर्ण कोमल आकृतियों एवं विषयों का चित्रण जलरंग माध्यम और तकनीक में हुआ है। इनके चित्रों में अजन्ता का रेखात्मक सौन्दर्य और मुगल एवं पहाड़ी चित्रशैली की सौम्य रंगयोजना का प्रयोग है, जो कि बंगाल स्कूल (बंगाल कला शैली) की एक मुख्य विशेषता है। महादेवी के चित्रों में आत्मपरीक्षण, आत्मानुभूति एवं आत्मसजगता की मुखर अभिव्यक्ति है, जिसके कारण वह आदर्शवादी और स्वप्निल लगती हैं। इन्होंने लेखन के समानान्तर चित्रण भी किया, इसीलिए साहित्य की अन्तरंग साधना ने इनकी कला को न केवल सम्बल दिया, वरन् उसमें भावनात्मक गूढ़ता भी भरा। अद्भुत सौम्य रूपाकार, अभिनव रंगविधान, सूक्ष्मअनुभूतियाँ, संगीत की मादक लय, फारसी व मुगलशैली की नफासत तथा पहाड़ी शैली की गम्भीर कोमलता का मिश्रण इनके चित्रों में दिखाई पड़ता है। ‘दीपक’ नामक चित्र में उनकी काव्य का पंक्ति—

“मधुर—मधुर मेरे दीपक जल,

युग—युग प्रतिदिन, प्रतिपल, प्रतिक्षण

प्रियतम का पथ आलोकित कर”

अद्भुत काल विभाजन पर आधारित है। इस काव्य पंक्ति में दीपक के प्रति हृदय के अन्तरतम से निकली भावना, प्रतीक्षा, सजगता और समर्पण देखा जा सकता है। इस चित्र का वर्ण विन्यास (रंग विन्यास) कविता के भावानुकूल है। अधिकांश

चित्रों में पृष्ठ भूमि में नैराश्य भरे रंगों का प्रयोग हुआ है। नारी आकार प्रमाणयुक्त (प्रपोर्शनेट) है। चेहरो पर लालित्य है, परन्तु पूरे चित्र के माहौल में उसका एकाकीपन खुलकर सामने आता है। 'तूफान' जैसे चित्र में नाव पर एक हाथ उठाए अकेली खड़ी नारी आकृति जिसको उन्होंने अपने गीत—“कौन पहुँचा देगा उस पार” के आधार पर बनाया है, में महादेवी ने सम्भवतः स्वयं को ही चित्रित किया है। ऐसा हो भी क्यों न? क्योंकि प्रायः कलाकार अपने भाव को ही अपनी कृति (रचना) में 'रिपीट' करता है। महादेवी की कविताओं और चित्रों का अन्तर सम्बन्ध पाठक और अवलोकी को असीम में विलीन होती एक अदभुत विश्रान्ति की दुनिया में ले जाता है।

संदर्भ

1. प्रभु चावला—इंडिया टुडे, 2006, फरवरी-8, पृ0-54
2. आचार्य रामसुहाग—कला प्रकाश पृ0-12
3. विनोद भारद्वाज—कलाएं आस पास पृ0-16
4. विनोद भारद्वाज—कलाएं आस पास पृ0-73
5. डॉ० गोविन्द पाल सिंह—महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, पृ0-175
6. वाचस्पति गौरोला—भारतीय चित्रकला, पृ0-9-10
7. महादेवी वर्मा—यामा (अपनी बात) पृ0-चार
8. महादेवी वर्मा—यामा (प्रथम याम—निहार) पृ0-55-56
9. महादेवी वर्मा—यामा (प्रथम याम—निहार) पृ0-32
10. महादेवी वर्मा—यामा (प्रथम याम—निहार) पृ0-43
11. महादेवी वर्मा—यामा (द्वितीय याम—रश्मि) पृ0-108
12. महादेवी वर्मा—यामा (तृतीय याम—नीरजा) पृ0-133

डॉ एन. के. सेठी
प्राचार्य, महिला महाविद्यालय
बॉदीकुई

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

मेघदूतम् में कालिदास के भौगोलिक ज्ञान की अभिव्यक्ति

कविकुलगुरु निखिल कविचक्रचूडामणि महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि है। महाकवि कालिदास ने अपनी लेखनी से पाँच ग्रन्थरत्नों की रचना की। दो महाकाव्य— रघुवंशम् व कुमारसंभव। तीन नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् ए मालविकाग्निमित्रम् व विक्रमोर्वशीयम् तथा दो खण्डकाव्य—मेघदूतम् व ऋतुसंहार। कालिदास की कृतियों में मेघदूतम् को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

मेघदूतम् के एक सौ बीस ललित पद्यों में महाकवि ने कान्ता से विरहित यक्ष की वियोग—व्यथा का मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया है। अलकापुरी के अधीश्वर कुबेर ने अपने सेवक यक्ष को, कर्त्तव्य में प्रमाद के कारण एक वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया। निर्वासन की अवधि यक्ष रामगिरी पर्वत पर व्यतीत करता है। आठ मास व्यतीत हो जाने पर वर्षा ऋतु के आगमन से उसके प्रेम कातर हृदय में अपनी प्रेयसी यक्षणी की स्मृतियों अचानक उद्वेलित हो जाती है और वह मेघ को दूत बनाकर उसके पास अपना प्रणय प्रेषित करता है।

महाकवि कालिदास ने रामगिरी से अलका तक के मार्ग का जो रमणीय व कृतूहलवर्धक वर्णन किया है। इन दृश्यों का व स्थानों का वर्णन पढकर पाठकों को इन शोभादायक प्राकृतिक स्थलो एवं नगरो को देखने की उत्कण्ठा जाग उठती है। कालिदास को भूगोल का उच्च स्तर का ज्ञान था। उन्होंने प्रत्येक स्थान व देश का इतनी सूक्ष्मता से वर्णन किया है। जिससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास ने स्वयं ही उन स्थानों का भ्रमण किया है। इससे कालिदास के भौगोलिक ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है।

रामगिरी से अलका का मार्ग

यक्ष अपने विरह के दिन रामगिरी पर्वत पर व्यतीत करता है। रामगिरी के सम्बन्ध में विद्वानों में प्रयाप्त मतभेद हैं— पाश्चात्य विद्वान्, विल्सन नागपुर के समीप रामटेक नामक पहाड़ी को रामगिरी कहते हैं। डॉ० हजारि प्रसाद द्विवेदी सरगुजा

रियासत की एक छोटी पहाड़ी को रामगिरी मानते हैं। पं० चन्द्रबली पान्डेय तथा कुछ अन्य पुरातत्वविद् मध्यप्रदेश के रामगढ स्थान को रामगिरी सिद्ध करते हैं। दूसरी तरफ कश्मीरी विद्वान् व ख्यातिलब्ध टीकाकार श्री वल्लभदेव, टीकाकार मल्लिनाथ, वंग संस्कृत कवि हरिदास आचार्य, पं० सीताराम चतुर्वेदी आदि विद्वान् चित्रकूट को रामगिरी पर्वत सिद्ध करते हैं। उनका तर्क है कि—

“जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छायातरुषु”¹

वाले आश्रम चित्रकूट पर ही हैं, रामटेक पर नहीं। यही सर्वमान्य मत है। चित्रकूट ही रामगिरी है। क्योंकि रामायण भी यही प्रमाण देती है कि राम चित्रकूट पर ही गये थे रामटेक पर नहीं। अतः यक्ष ने निर्वासित जीवन चित्रकूट पर ही व्यतीत किया था।

यक्ष मेघ को दूत बनाकर अपना सन्देश कहने से पहले मेघ को मार्ग बताता है। ताकि वह गलत मार्ग पर ना चला जाये। इसलिए वह विस्तार से मेघ को उत्तर दिशा का मार्ग निर्देशन करता है। यक्ष सर्वप्रथम मेघ को उत्तर दिशा का मार्ग बताता है। जहाँ पर मालभूमि पर हरी भरी खेती लहलहाती है और जहाँ पर भोलीभाली कृषक बालाएँ कृषि सहायक मेघ का निश्चय ही प्रेम पूर्व नेत्रों से अभिवन्दन करेंगी:—

“ त्वय्यायन्तं कृषिफलमिति भूविलासनभिज्ञैः।

प्रीतिसिन्धैर्जनपदवधूलौचनैः पीयमानः॥

सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं।

किञ्चित्पश्चाद् ब्रज लघुगतिर्भूय ऐवोत्तरेण॥”²

इसके पश्चात् कुछ ही दूरी पर आम्रकूट पर्वत मिलेगा। जिसका आम्र वृक्षों से आच्छादित होने के कारण आम्रकूट नाम सार्थक है। वहाँ पर मेघ विश्राम कर सकेगा।

“छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै —

स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ॥”³

इससे आगे नर्मदा नदी है। जो विन्ध्याचल पर्वत के बीच बहती है। यहाँ पर मेघ जल ग्रहण कर सकेगा। इसके पश्चात् दशार्ण देश आयेगा जहाँ पर केतकी के फूल खिलते हैं तथा जामुन के वन फलों से युक्त होंगे।

“पाण्डुपच्छायोपवनवृत्तयः केतकैः सूचिभिन्नैः

नीडारम्भैगृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः

संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थाधिहंसा दशार्णाः ॥⁴

दशार्ण देश की राजधानी विदिशा के पास वेत्रवती नामक नदी प्रवाहित होती है। विदिशा के समीप ही नीचै नामक पर्वत है। जहाँ पर कदम्ब के वृक्ष हैं। यद्यपि मेघ को उत्तर दिशा में जाना है, लेकिन यक्ष उसे पश्चिम में स्थित उज्जयिनी के ऊँचे-ऊँचे महलों को देखने के लिए कहता है—

“वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां

सौधौत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ॥⁵

इससे कालिदास का उज्जयिनी के प्रति अत्यधिक स्नेह प्रतीत होता है। आगे निर्विन्ध्या नामक नदी मार्ग में आयेगी। जिसकी लहरों के चलने से शब्द करने वाले पक्षी ही जिसकी करधनी के समान हैं।⁶ इसके आगे सिन्धु नामक नदी मिलेगी। जो विरहिणी नायिका के समान पतली धार वाली है।⁷

इसके बाद अवन्ती नगरी आयेगी, जहाँ के गाँव के वृद्ध लोग उदयन की कथा के जानकार हैं।⁸ उस अवन्ती नगरी से उज्जयिनी में पहुँचना होगा। वह नगरी स्वर्ग का टुकड़ा लगती है। उज्जयिनी नगरी में शिप्रा नामक नदी बहती है। उस नदी का वायु रमण की प्रार्थना में खुशामद करने वाले प्रियतम के समान स्त्रियों के रति परिश्रम को हटाता है।

“यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥⁹

वही उज्जयिनी में भगवान महाकाल का पवित्र मन्दिर है। जहाँ पर उनकी सायंकाल की आरती में मेघ अपनी गर्जन करके नगाड़े का काम करेगा।

“अप्यन्यस्मिञ्जलधर ! महाकालमासाद्यकाले—

स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येतिभानुः ॥

कुर्वन्सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया—

मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥¹⁰

कालिदास की उज्जयिनी व महाकाल के प्रति विशेष श्रद्धा है। तभी तो मेघ को कहते हैं कि अन्यसमय यदि उज्जयिनी पहुँचो तो महाकाल की सायंकालीन आरती तक तुम्हें वही रुकना है। उज्जयिनी के आगे गम्भीरा नदी आयेगी। जिसका जल

मन के समान निर्मल है। गम्भीरा से आगे देवगिरी होकर जाना होगा। जहाँ कुमार कार्तिकेय का मन्दिर है। उससे आगे चलकर चर्मण्वती नदी मिलेगी। जिसकी उत्पत्ति राजा रन्तिदेव के गोमेघ यज्ञों में आलम्बन की गई गायो के रुधिर से हुई है। उस नदी का जल लेने के लिए जब तुम झुकोगे तो वह दृश्य देखने योग्य होगा।

“ त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्गचौरे ,

तस्याः स्निग्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्यं दृष्टी—

रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥¹¹

उसके आगे रन्तिदेव राजा की राजधानी दशपुर आयेगी। वहाँ की स्त्रियाँ चंचल कटाक्ष करने वाली है। उससे आगे ब्रह्मावर्त आयेगा। ब्रह्मावर्त से कुरुक्षेत्र जाना है। कुरुक्षेत्र से सरस्वती नदी को जाना है तथा वहाँ से कनखल के लिए जाना है। वहीं पर हिमालय से जन्हुकन्या गंगा अवतीर्ण हुई है।—

“तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णा ,

जन्होः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।

गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येवफेनैः ,

शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥¹²

इसके बाद गंगा के पिता हिमालय पर्वत जाना होगा , जिसके पत्थर कस्तूरी मृगों की सुगन्ध से युक्त है। वहाँ से उत्तर दिशा की ओर क्रौञ्चरन्ध्र से निकलकर कैलास पर्वत आयेगा, जो कि शंकर का निवास स्थान व क्रीडास्थल है। तुम वहाँ के अतिथि बनो।

“गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः ,

कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।

शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं ,

राशीभूतः प्रतिदिनमिव प्यम्बकस्याट्टहासः ॥¹³

उससे आगे चलकर मानसरोवर आयेगा जिसके जल में स्वर्णकमल उत्पन्न होते हैं। कैलाश पर्वत की गोद में गंगाजी के तट पर अलका नगरी है।

“तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव अस्तगंगादुकूलां ,

न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।

या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ।।¹⁴

इस प्रकार यक्ष मेघ को रामगिरी से अलका तक का मार्ग बताता है। यक्ष ने मेघ को पहले मार्ग बताया है और बाद में अपना सन्देश सुनाया है, ताकि मेघ को पहले मार्ग के उन रमणीय स्थानों को देखने की लालसा उत्पन्न हो। कालिदास ने मेघदूतम् में अपने भौगोलिक ज्ञान को अभिव्यक्त किया है। इलाचन्द्र जोशी के अनुसार “ भौगोलिक ज्ञान भी कालिदास का बहुत विकसित था ।” उस युग में जबकि भौगोलिक तथ्यों की सटीक छान-बीन के लिए कोई विशेष सुविधा नहीं थी। हमारे कविकुल चूडामणि को इस बात का सही-सही पता था कि मानसूनी हवाएँ कहाँ से उठती हैं और किस दिशा और किन-किन स्थलों से होकर क्रमशः आगे बहती चली जाती है। मेघ को अपना काल्पनिक दूत बनाकर यक्ष जब उसे अलका का रास्ता बताता है तथा वह बीच में एक स्थान पर उसे उज्जयिनी से होकर नहीं जाना होता। तो वहाँ पहुँचने के लिए उसे अपना सहज मार्ग बदलना होगा। इस तथ्य का परिचय कालिदास को अच्छी तरह था । तभी उन्होंने यक्ष के मुँह से कहलाया है।

“ वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधौत्संगः प्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।।”¹⁵

अर्थात् यद्यपि उज्जयिनी को जाते हुए तुम्हें सीधा रास्ता छोड़कर टेढ़ा मार्ग अपनाना होगा। तथापि तुम वहाँ की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं के प्रति प्रणय विमुख न होगे।

मेघदूतम् के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कालिदास ने स्वयं उन स्थानों पर जाकर उनको बारीकी से देखा है। कालिदास की सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि अद्वितीय है। कालिदास ने अनेक देश, नगर, पर्वत, नदी आदि का अत्यन्त मनोहर वर्णन किया है। कालिदास ने मेघ को सन्देश देने से पहले मार्ग बताया है। जिससे मेघ को उसमें रुचि उत्पन्न हो। कालिदास ने उन-उन स्थानों का या तो स्वयं पर्यटन किया है या विभिन्न पर्यटकों से उनका ज्ञान प्राप्त किया है। कालिदास ने जिस भौगोलिक नामों का मेघदूत में उल्लेख किया है। वे स्थान श्री एम. आर. काले द्वारा रचित ‘मेघदूतम्’ सटीक में निम्न प्रकार हैं।

- | | | |
|------------|-------------|------------|
| 1. अलका | 12. जाह्नवी | 23. रेवा |
| 2. अवन्ति | 13. दशपुर | 24. वननदी |
| 3. आम्रकूट | 14. दशार्ण | 25. विदिशा |

- | | | |
|------------------|------------------|-------------------|
| 4. उज्जयिनी | 15. देवगिरी | 26. विन्ध्य |
| 5. कनखल | 16. निर्विन्ध्या | 27. विशाला |
| 6. कुरुक्षेत्र | 17. नीचैर्गिरि | 28. वेत्रवती |
| 7. कैलाश | 18. ब्रह्मावर्त | 29. शिप्रा |
| 8. क्रौञ्चरन्ध्र | 19. मानस | 30. श्री चरणन्यास |
| 9. गन्धवती | 20. माल | 31. सरस्वती |
| 10. गम्भीरा | 21. यमुना | 32. सिन्धु |
| 11. चर्मण्वती | 22. रामगिरी | 33. हिमालय |

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मेघदूतम् मे कालिदास के भौगोलिक ज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। कालिदास ने प्रत्येक स्थान का इतनी बारीकी से वर्णन किया है। जिससे प्रत्येक पाठक उस ओर खिंचा चला जाता है। कालिदास की सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि से कोई भी स्थान या गतिविधि बच नहीं पायी है। तत्कालीन समय में जब इतने साधन सुलभ नहीं थे। कालिदास ने अलका के मार्ग में पडने वाले देशों व स्थानों का जो मनमोहक दृश्य हमारे नेत्रों के समक्ष उपस्थित किया है। वह कालिदास के भौगोलिक ज्ञान का परिचायक है। निश्चय ही कालिदास ने मेघदूतम् मे अपने भौगोलिक ज्ञान को प्रकट किया है।

सन्दर्भ—

1. मेघदूतम् — पूर्वमेघ / 1
2. मेघदूतम् — पूर्वमेघ / 16
3. मेघदूतम् — पूर्वमेघ / 18
4. मेघदूतम् — पूर्वमेघ / 23
5. मेघदूतम् — पूर्वमेघ / 27
6. वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्या स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभः ॥ — पूर्वमेघ / 28
7. वेणीभूतप्रतनुसलिलातामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहभ्रंशिभिर्जीर्णपणैः ।
सौभाग्यं ते सुभग! विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ — पूर्वमेघ / 29
8. प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वाद्दिष्टामनुसर पुनीं श्री विशालां विशालाम् ॥ — पूर्वमेघ / 30
9. मेघदूतम् — पूर्वमेघ / 31

इंटरनेट युग एवं विज्ञापन कला

वर्तमान युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है।¹ इक्कीसवीं सदी में सूचना प्रौद्योगिकी ने सबसे अधिक विकास किया है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इंटरनेट का सर्वाधिक महत्व है।² इंटरनेट के आविष्कार ने विश्व के विभिन्न स्थानों पर रह रहे लोगों को एक दूसरे के बहुत नजदीक कर दिया है।

इंटरनेट वास्तव में कम्प्यूटर आधारित (एक दूसरे से जुड़े कम्प्यूटरों का) एक विशाल विश्व व्यापी नेटवर्क या जाल है जो दस, सौ अथवा हजारों कम्प्यूटर्स को अत्याधुनिक उपग्रहों द्वारा आपस में जोड़ता है।³ इंटरनेट की सहायता से सूचना का संचार सैकेण्ड के सौंवे हिस्से में ही सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित हो जाता है। रेलवे, बैंकिंग, पर्यटन, अभियंत्रण, स्वास्थ्य व चिकित्सा, पर्यावरण, शिक्षा आदि जीवन के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में इंटरनेट एक आवश्यकता बन गया है। विज्ञापन का क्षेत्र भी इंटरनेट से अछूता नहीं रहा है।⁴

विज्ञापन का सामान्य अर्थ है – सूचना देना, जानकारी देना एवं सार्वजनिक रूप से घोषणा करना। विज्ञापन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द Advertiser से हुई है, जिसका अर्थ है – ‘टू टर्न टू’ अर्थात् किसी ओर मुड़ना यानि किसी विशेष वस्तु की ओर ध्यान आकर्षित करना ही विज्ञापन है।⁵

अंग्रेजी में यह Advertisement है अर्थात् Attention to draw, attention to publish, to announce a public notice, make known to people by printing notice in newspapers or by other methods.⁶

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार – “विज्ञापन विज्ञापक द्वारा चाही गई वह भुगतान की गई घोषणा है, जो किसी वस्तु अथवा सेवा के विक्रय को प्रोत्साहित करने के लिए अथवा कोई अन्य प्रभाव उत्पन्न करने से की गई हो।”⁷

विज्ञापन डिजाइन (आलेख) कई तत्वों से मिलकर बना होता है। मुद्रित विज्ञापन के आलेख में मुख्यशीर्षक (Headline), उपशीर्षक (Sub-Headline) बॉडी कॉपी

(Body Copy), स्लोगन (Slogan), VSxykbu (Tag-Line), व्यापारिक चिन्ह आदि तत्व सीमित रहते हैं। इंटरनेट विज्ञापनों में भी इन्हीं तत्वों का प्रयोग किया जाता है लेकिन उनकी शैली व प्रस्तुतीकरण का ढंग भिन्न हो जाता है।⁸ विज्ञापन डिजाईन में प्रयुक्त सभी तत्वों का प्रयोग विज्ञापन के उद्देश्यों व विज्ञापन रणनीति पर निर्भर करता है।⁹ विज्ञापन निर्माण में विज्ञापन एजेंसी के विभिन्न पदाधिकारी तथा वेब डिजाइनर अपनी विशेष भूमिका अदा करते हैं। एक विज्ञापन की सफलता बहुत अंशों में विज्ञापन माध्यम पर निर्भर करती है।

विज्ञापन माध्यम का तात्पर्य उन तरीकों विधियों से है, जिनके द्वारा विज्ञापनदाता उपभोक्ता को आकर्षित करने और उनके व्यवहारों को अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। विज्ञापन माध्यमों को मुख्यतः तीन मुख्य भागों में बांटा जा सकता है।¹⁰ –

1. दृश्य माध्यम 2. श्रव्य माध्यम 3. दृश्य-श्रव्य माध्यम

वर्तमान समय में विज्ञापन के लिए दृश्य-श्रव्य माध्यम जिसमें टी.वी. के बाद सबसे अधिक इंटरनेट को महत्ता दी जाती है, प्रचलित विज्ञापन माध्यम है। इंटरनेट विज्ञापन को 'ऑन लाइन मीडिया' (On-Line Media), नये मिलेनियम का मीडिया (Media of new millennium)] वेब विज्ञापन (Web advertisement)] डिजिटल विज्ञापन (Digital advertisement), ई-विज्ञापन (E-advertisement) एवं वेबवर्टाइजिंग (Webvertising) आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है।¹¹

विज्ञापन माध्यम के रूप में प्रयोग किए जाने वाले इंटरनेट का इतिहास बहुत अधिक पुराना नहीं है। इंटरनेट का उद्भव 1969 में अमेरिका में रक्षा सम्बंधी एप्रानेट (APRANET) नामक प्रोजेक्ट पर एडवांस रिसर्च प्रोजेक्ट एजेन्सी द्वारा संक्षिप्त उपयोग के लिए हुआ था।¹² भारत में इंटरनेट 80 के दशक में आया लेकिन सामान्य उपयोग के लिए 15 अगस्त, 1995 से उपलब्ध हो पाया¹³ और उसी समय से इंटरनेट पर विज्ञापनों की शुरुआत हो गई थी। आज 160 से अधिक देश इंटरनेट के सदस्य हैं। विश्वभर में इस समय एक अरब 75 करोड़ लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं जो पूरी आबादी का लगभग 25 प्रतिशत है। भारत में इंटरनेट का इस्तेमाल करने वाले लोगों की संख्या लगभग 4.90 करोड़ है। गूगल इंडिया के व्यापार प्रमुख नर. सिन्हा जयकुमार ने बताया कि प्रौद्योगिकी में तेजी से हो रहे बदलाव को देखते हुए निश्चित तौर पर यह चलन डिजिटल मीडिया की ओर बढ़ रहा है। इस प्लेटफार्म का इस्तेमाल करने और अपने लक्षित उपभोक्ता तक पहुंचने से विज्ञापनकर्ताओं के लिए यह एक अलार्म की तरह है।¹⁴ व्यापार, शेयर बाजार, चिकित्सा, शिक्षा, शोध आदि विभिन्न विषयों पर असीमित आंकड़े, ज्ञान व सूचना प्राप्त करने का सबसे त्वरित माध्यम आज इंटरनेट को ही माना जाता है।

आधुनिक युग में सामान्य रूप से प्रत्येक प्रकार (उत्पाद, गैर-उत्पाद) के विज्ञापन देखने को मिलते हैं। विज्ञापक, इंटरनेट की 'वेबसाइट' के माध्यम से संभावित उपभोक्ता तक अपना संदेश विज्ञापित करता है।¹⁵ इंटरनेट पर विज्ञापन विभिन्न तरह से दिए जा सकते हैं :-

1. वेब पेज विज्ञापन (Web Page Advertisement) – इसे सामान्यतः डब्ल्यू-डब्ल्यू-डब्ल्यू (वर्ल्ड वाइड वेब) के नाम से जाना जाता है। इसमें इंटरनेट पर विज्ञापक द्वारा अपनी स्वयं की एक वेबसाइट का निर्माण किया जाता है। वेब पेज पर कंपनी संस्था तथा सरकारी विभाग अपने बारे में, अपने उत्पाद एवं सूचना के बारे में विस्तृत जानकारी, जैसे- इनकी कीमत, उपलब्धता का स्थान, तकनीकी विशेषताएं आदि दर्शकों, श्रोताओं एवं प्रयोगकर्ताओं के लिए वेब साइट पर उपलब्ध करवाते हैं।¹⁶

2. बैनर विज्ञापन (Banner Advertisement) – बैनर विज्ञापन वेबसाइट पर दिखाए गए स्थिर विज्ञापन है। जो आजकल बहुत प्रचलित है। जिस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन के लिए स्थान बेचा जाता है, ठीक उसी प्रकार वेबसाइट का एक निश्चित स्थान, प्रयोजक को वेबवरटाइजिंग के लिए बेचा जाता है।¹⁷ इन विज्ञापनों में लिखित विज्ञापन के साथ-साथ चित्रों को भी दिखाया जाता है। इंटरनेट को मीडिया के रूप में प्रयोग करने वाले लगभग सभी विज्ञापनकर्ता बैनर विज्ञापन जारी करते हैं। (देखिये रंगीन चित्र संख्या-1)

3. पॉप अप (Pop-Ups) – जब इंटरनेट प्रयोगकर्ता कोई साइट खोलता है तो उस साइट से जानकारी मिलने में कुछ समय लगता है। इस इंतजार के समय में कुछ विज्ञापन स्वयं ही कम्प्यूटर स्क्रीन पर आ जाते हैं, ऐसे विज्ञापन पॉप-अप विज्ञापन कहलाते हैं। पॉप-अप विज्ञापन में विज्ञापनकर्ता का संदेश लिखा होता है। (देखिये रंगीन चित्र संख्या-2)

4. स्काई-स्क्रेपर्स/चलती हुई क्लिपिंग (Sky-Scrapers/Moving Clipping) – ये विज्ञापन वेब साइट पर चलती हुई क्लिपिंग के रूप में दिखाई देते हैं।

5. ई-मेल (E-mail) – व्यवसायिक कम्पनियों अपने संभावित ग्राहकों के ई मेल पत्तों को रिकॉर्ड रखती हैं। इन ई-मेल पत्तों पर विज्ञापनकर्ता द्वारा संभावित ग्राहकों को अपने उत्पाद के बारे में जानकारी दी जाती है। ई-मेल विज्ञापन की प्रतिक्रिया दर, स्नेचवदेम.त्जमद्ध बैनर-विज्ञापन व वेब-पेज विज्ञापन से अधिक है।

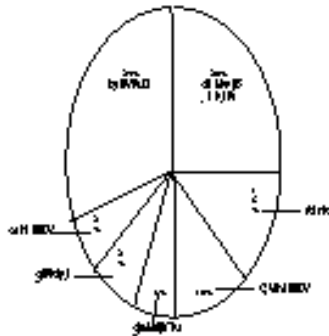
6. व्यवसाय से व्यवसाय नेटवर्क विज्ञापन (Business to Business Network Advertisement) – इन्हें B2B नेटवर्क भी कहा जाता है। यह इंटरनेट विज्ञापन

का एक नया रूप है। B2B नेटवर्क में विभिन्न सम्बंधित वेबसाइटों को जोड़ दिया जाता है। इससे जब विज्ञापनकर्ता किसी एक वेबसाइट पर विज्ञापन संदेश भेजता है तो उस साइट से जुड़ी हुई अन्य वेब साइटों पर विज्ञापन संदेश आप ही चला जाता है।¹⁸

7. पोर्टल¹⁹ (Portals) यह आयताकार विंडो की तरह होता है जिसमें मुख्य समाचार, खेलों के ताजा स्कोर, शेरों के भाव आदि दिखाए जाते हैं। पोर्टल से इंटरनेट पर सूचना ढूढ़ने वाला व्यक्ति एक क्लिक से ही जानकारी प्राप्त कर सकता है। कुछ पोर्टल किसी एक ही विषय की जानकारी देते हैं, जैसे – फिल्मों के बारे में, दवाइयों के बारे में, शिक्षा के बारे में आदि। भारत में rediffmail.com, yahoo.com, google.com तथा Indiaworld.com प्रसिद्ध पोर्टल है।

8. सामाजिक नेटवर्किंग साइट्स (Social Net working sites) – बहुत सी सामाजिक नेटवर्क साइट्स जैसे – Facebook, Twitter, Orkut, Linkedin, Whatsapp आदि हाल के वर्षों में बहुत प्रसिद्ध हुई है। इन सामाजिक नेटवर्क साइट्स से विपणनकर्ताओं तथा विज्ञापनकर्ताओं को अपने उत्पादों व ब्राण्डों के बारे में आवश्यक सूचना देने तथा सम्बंधित विचारों को साझा करने के लिए एक प्लेटफार्म मिल गया है। सामाजिक नेटवर्क साइट्स की सहायता से विज्ञापनकर्ता इन नेटवर्क साइट्स के प्रयोगकर्ताओं के साथ उनके वर्तमान समूहों में या अपने पृथक समूह बनाकर अपने विचार साझे कर सकते हैं। जिससे प्रयोगकर्ताओं के विचार, उनकी प्रतिक्रिया, पसंद, आलोचना आदि को समझा जा सकता है।²⁰

आधुनिक युग में इंटरनेट ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सूचना सम्प्रेषित करने के असीमित द्वारा खोल दिए हैं। इंटरनेट पर विज्ञापन देकर सम्पूर्ण विश्व के कोने-कोने में स्थित संभावित उपभोक्ता तक पहुंचा जा सकता है। 24 घण्टे उपलब्धता के साथ इंटरनेट ही एक अकेला ऐसा मीडिया है जहां पर व्यक्ति विज्ञापन को देख सकता है, पढ़ सकता है, सुन सकता है, उपलब्ध जानकारी को अपने कम्प्यूटर पर सुरक्षित रख सकता है तथा यहां तक कि वह ऑनलाइन आवेदन, बुकिंग एवं खरीददारी भी कर सकता है। आजकल विक्रेताओं ने ई-रिटेलिंग तथा उपभोक्ताओं ने ई-शॉपिंग करनी शुरू कर दी है।



स्रोत – गूगल स्टडी

इंटरनेट पर प्रकाशित 2011 के क्रिकेट वर्ल्ड कप में पेप्सीको इंडिया का डि. जिटल कैम्पेन चेंज दी गेम अत्यधिक सफल रहा जिसे सामाजिक नेटवर्क साइट फेसबुक के माध्यम से प्रकाशित किया गया। इस कैम्पेन के तहत के एक रीच ब्लॉक बनाया गया, इस लक्ष्य के साथ कि यह 24 घण्टे की अवधि में टार्गेट ऑडियंस तक पहुंचे, कैम्पेन तीन हिस्सों में चला। पहले हिस्से में पोल इंगेजमेंट फॉर्मेट था, जिसमें क्रिकेटर से अंपायर बने बिली बोर्डन का टी.वी. कमर्शियल था। इसमें लोगों से अपने पसंदीदा खेल के लिए वोट डालने के लिए कहा गया। दूसरे हिस्से में वीडियो लाइक एड था, जिसने दर्शकों को पेप्सीको इण्डिया के अन्य विज्ञापन देखने और पेप्सी इंडिया पेज से कनेक्ट होने के लिए प्रेरित किया। तीसरा हिस्सा लोगों को पेप्सीको इंडिया की माइक्रोसाइट पर ले जा रहा था। कैम्पेन का परिणाम यह रहा कि रीच ब्लॉक को 190 लाख बार देखा गया और पेप्सीको इंडिया का टार्गेट 145 प्रतिशत बढ़ गया।²¹ (देखिये रंगीन चित्र संख्या-3)

इसी सिलसिले में एडिडास, नाइक, एलजी, एयरटेल, पिज्जा हट, पेप्सी, सैमसंग, मोबाइल, फोर्ड, फिलपकार्ट, महिन्द्रा एंड महिन्द्रा, सोनी एरिकसन, हुंडई मोटर, नेस्ले मैगी, नोकिया, एयरटेल, टाटा डोकोमो, वोडाफोन, बीएमडब्ल्यू इंडिया, षॉपर्स स्टॉप, एचडीएफसी, आईडीबीआई, एशियन पेंट्स, रेमंड, टाटा, एलआईसी समेत अनगिनत ब्राण्ड इंटरनेट मीडिया के जरिए अपने उत्पादों को मजबूती दे रहे हैं तथा इसी तरह विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी विभाग भी डिजिटल स्पेस पर कब्जा कर चुके हैं। कम्पनीयां अपने मार्केटिंग बजट में डिजिटल मीडिया का हिस्सा बढ़ाती जा रही हैं।

गूगल के एक अनुमान के मुताबिक इंटरनेट इस्तेमाल करने वाली की इतनी बड़ी तादाद के मध्यनजर देश का ऑनलाइन विज्ञापन बाजार इस 1,10,000 करोड़ रुपये तक जा सकता है।²²

इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ाने हेतु भी विज्ञापन प्रकाशित किए जा रहे हैं। जैसे थ्सपचबंतजए श्रनेज क्पंसए व्स आदि। हाल ही में नीलेस जैन द्वारा रचित गूगल सर्च विज्ञापन में गूगल से जानकारी एकत्रित कर सीमा पार के दो दोस्तों का मिलन गीत (इक दौर था मन मोर था) के साथ शब्दों को ऐसा संजोया कि विज्ञापन हर किसी के दिल को छू गया। (देखिये रंगीन चित्र संख्या-4)

भारत में इंटरनेट प्रयोग करने वाले अधिकतर व्यक्ति 18 से 45 वर्ष के बीच के हैं। इस वर्ग की क्रय-क्षमता अधिक होती है तथा कोई भी विज्ञापनकर्ता इस

वर्ग की अवहेलना नहीं कर सकता। विज्ञापनकर्ता ऑनलाइन विज्ञापन से इस बाजार खंड को आकर्षित करने में लगे हैं। शायद यह अकेला माध्यम है जिसमें पहल उपभोक्ता की ओर से होती है। (किसी वेबसाइट विशेष पर पहुंचना)। इस प्रकार उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करके विज्ञापक आधी लड़ाई पहले ही जीत लेता है। विज्ञापन संदेश पढ़ने वाले व्यक्तियों को हिट काउंट्स की सहायता से गिना भी जा सकता है।²³ कम्प्यूटर व इंटरनेट सेवा के विकास से, प्रत्येक जानकारी ऑन-लाइन हो जाने से, टी.वी. देखने वालों की संख्या में कमी आने से तथा प्रिंट विज्ञापन की पहुंच एवं अवधि कम होने से तथा प्रिंट मीडिया ऑनलाइन होने से इंटरनेट मीडिया का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है।

पद टिप्पणीयां

1. श्री वास्तव डॉ. जितेन्द्र, ग्रन्थालय विज्ञान, प्रोफेसर कौला ग्रन्थालय तथा सूचना विज्ञान, गुन्टूर, संस्करण - 2006, पृ.सं.-78
2. खान, डॉ. मोहसिन, सम्मेलन पत्रिका, आषाढ़-भाद्रपद : सम्वत् - 2061, पृ.सं. 187
3. श्रीवास्तव डॉ. जितेन्द्र, ग्रन्थालय विज्ञान, प्रोफेसर कौला ग्रन्थालय तथा सूचना विज्ञान, गुन्टूर, संस्करण - 2006, पृ.सं.-79
4. सिंह निशांत, संचार माध्यम, अप्रैल-जून, 1999, पृ.सं. 33
5. www.wikipedia.org
6. Mahamaya Advance Perfect Disctionery, English- Hindi, Page No. 24
7. सिंह डॉ. निशांत, जन सम्पर्क और विज्ञापन, पृ.सं. 146
8. वही पृ.सं. 146
9. Chunawala S.A., Sethia K.C., Foundation of Advertising Himalaya Publishing House, Mumbai, Edition 2010, Page No. 14
10. सुलेमान डॉ. मुहम्मद चौधरी, डॉ. विनय कुमार, आधुनिक औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, संस्करण-1999, पृ.सं. 350
11. सिंह निशांत, संचार माध्यम, अप्रैल-जून 1999, पृ.सं. 33
12. श्रीवास्तव डॉ. जितेन्द्र, ग्रन्थालय विज्ञान, प्रोफेसर कौला ग्रन्थालय तथा सूचना विज्ञान, गुन्टूर, संस्करण - 2006, पृ.सं.-79
13. www.wikipedia.org
14. www.livehindustan.com
15. सिंह, निशांत, संचार माध्यम, अप्रैल-जून 1999, पृ.सं. 33
16. Trehan Mukesh, Trehan Ranju, Advertising and Sales Management Global Publication, New Delhi, Edition-2011-12, Page No.165
17. सिंह निशांत, संचार माध्यम, अप्रैल-जून 1999, पृ.सं. 33
18. Trehan Mukesh, Trehan Ranju, Advertising and Sales Management Global Publication,

16 वीं लोकसभा चुनावों में भारतीय निर्वाचन आयोग की भूमिका

एक स्वच्छ एवं स्वतन्त्र पंथनिरपेक्ष लोकतांत्रिक निर्वाचन में जनता की सहभागिता पर तीन तत्वों के व्यवहार का बहुत प्रभाव पड़ता है जो मिलकर त्रिकोण बनाते हैं, ये हैं— निर्वाचन मशीनरी, राजनीतिक दल एवं अभ्यर्थी तथा निर्वाचनगण। एक निर्वाचन मशीनरी को इतना योग्य होना चाहिए कि वह इन दूसरे तत्वों में विश्वास पैदा कर सके, जैसे — निर्वाचन की व्यवस्था एवं उसका निदेशन बाह्य दबाव और प्रभाव से मुक्त हो, का निर्वाचक गण एवं अभ्यर्थियों तथा राजनीतिक दलों में विश्वास हो।¹

संसदीय शासन की कला का आधार ही वयस्क मताधिकार पर आधारित स्वच्छ, स्वतंत्र, नियतकालिक निर्वाचन है। सरकार द्वारा अपने हितों के लिए निर्वाचन को प्रभावित करने की क्षमता किसी भी दशा में नहीं होनी चाहिए। शायद इसे ही ध्यान में रखकर भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की। इतना ही नहीं उन्होंने 'निर्वाचन' नामक पृथक् अध्याय को ही संविधान में जोड़ दिया। इस प्रकार, भारतीय संविधान एकमात्र ऐसा संविधान है जो स्वच्छ व स्वतंत्र निर्वाचन को बनाने तथा बनाए रखने के लिए निर्वाचन को संविधान पृथक स्था प्रदान करता है ताकि भारत में लोकतंत्र का रक्त संचारण होता रहे।²

आम चुनाव 2014 में भारतीय निर्वाचन आयोग सराहनीय भूमिका रही है 16वीं लोकसभा के चुनाव परिणाम आने के साथ पूरी प्रक्रिया लगभग खत्म होने को है देश के लिए ये गर्व और देशवासियों के लिए प्रशान्ता की बात है कि छुटपूट घटनाओं को छोड़कर मतदान से लेकर परिणाम तक का सारा काम शान्तिपूर्ण तरीके से पूरा हो गया। इसके लिए चुनाव आयोग से लेकर तमाम राज्यों कि चुनावी मशीनरी का जितना धन्यवाद किया जाये कम है आखिर 54 करोड़ मतदाताओं से मतदान कराना , ईवीएम मशीनों की सुरक्षा करना और फिर बिना किसी हिंसा के मतगणना करा लेना आसान काम नहीं है विशेष रूप से भारत जैसे देश में जहाँ मतदाता जाति, धर्म, क्षेत्र और राज्यों सहित न जाने कितने हिस्सों में विभक्त है इसके अलावा फिर राजनीतिक दलों का साधना कोई आसान काम नहीं है। इस प्रकार भारतीय निर्वाचन

आयोग बधाई का पात्र है।³

16 वीं लोकसभा के चुनावों का प्रारम्भ 7 अप्रैल 2014 के प्रथम चरण के साथ हो गया था जो 12 मई 2014 नौवें चरण में सम्पन्न हुआ। 2014 के इस महासमर में नौ चरणों में देश की सभी 543 लोकसभा सीटों के लिए चुनाव सम्पन्न कराये गये। जिसमें कुल रजिस्टर्ड मतदाता 814591184 थे जिसमें 426651513 पुरुष मतदाता तथा 387911330 महिला मतदाता थी इस चुनाव में मतदान का प्रतिशत 66.38 प्रतिशत रहा जो कि भारतीय आम चुनावों के इतिहास में उच्चतम है। इस चुनाव में सर्वाधिक निर्णायक भूमिका युवा वर्ग की रही है इस चुनाव में 18 से 19 वर्ष के युवा मतदाताओं का प्रतिशत 2.7 रहा।⁴

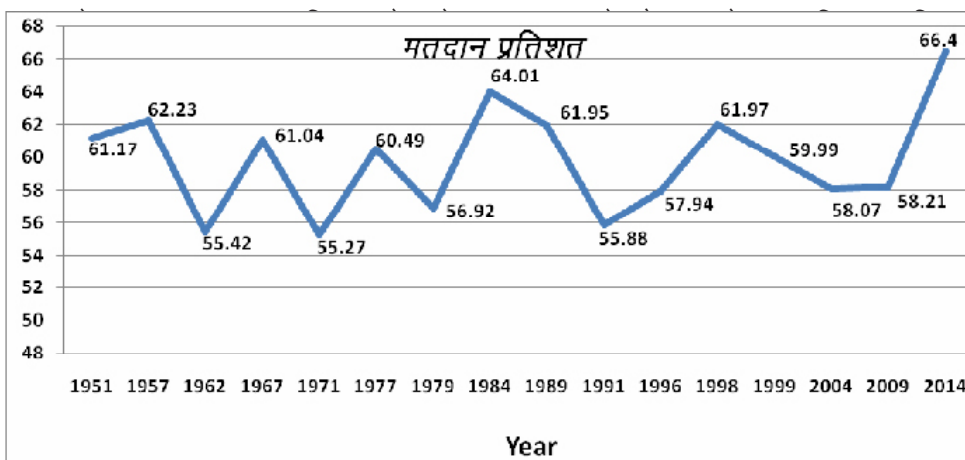
भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा 05 मार्च 2014 के कार्यक्रम के अनुसार नौ चरणों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है।

निम्न राज्यों में एक चरण में मतदान

राज्य	सीटें	वोटिंग
अरुणाचल	02	9 अप्रैल
गोवा	02	17 अप्रैल
गुजरात	26	30 अप्रैल
हरियाणा	10	10 अप्रैल
हिमाचल	04	07 मई
कर्नाटक	28	17 अप्रैल
केरल	20	10 अप्रैल
मेघालय	02	09 अप्रैल
मिजोरम	01	09 अप्रैल
नागालैंड	01	09 अप्रैल
पंजाब	13	30 अप्रैल
सिक्किम	01	12 अप्रैल
तमिलनाडु	39	24 अप्रैल
उत्तराखण्ड	05	07 मई
केन्द्र शासित प्रदेश		
दिल्ली	07	10 अप्रैल

अंडमान निकोबार	01	10 अप्रैल
चंडीगढ़	01	10 अप्रैल
दादर नागर हवेली	01	30 अप्रैल
दमन और दीव	01	30 अप्रैल
लक्षद्वीप	01	10 अप्रैल
पुडुचेरी	01	24 अप्रैल
निम्न राज्यों में दो चरणों में मतदान		
आंध्रप्रदेश	42	30 अप्रैल और 07 मई
मणिपुर	02	09 और 17 अप्रैल
ओडिशा	21	10 और 17 अप्रैल
राजस्थान	25	17 और 24 अप्रैल
त्रिपुरा	02	07 और 12 अप्रैल
निम्न राज्यों में तीन चरणों में मतदान		
असम	14	12,17 और 24 अप्रैल
झारखंड	14	10,17 और 24 अप्रैल
मध्यप्रदेश	29	10,17 और 24 अप्रैल
महाराष्ट्र	48	10,17 और 24 अप्रैल
छत्तीसगढ़	11	10,17 और 24 अप्रैल
निम्न राज्यों में पांच चरणों में मतदान		
पश्चिम बंगाल	42	17,24,30 अप्रैल 07,12 मई
जम्मू कश्मीर	06	10,17,24,30 अप्रैल 07 मई
निम्न राज्यों में छः चरणों में मतदान		
बिहार	40	10,17,24,30अप्रैल 07,12 मई
उत्तर प्रदेश	80	10,17,24,30अप्रैल 07,12 मई

16 वीं लोकसभा चुनाव 2014 में भारतीय निर्वाचन आयोग मतदाताओं को जागरूक करने के लिए मीडिया पत्र पत्रिका तथा रेलियों के माध्यम से अपने मतदान के प्रति जागरूक करने का भरसक प्रयास किया। भारत के प्रथम आम चुनाव से 2014



भारतीय चुनाव आयोग में दृढता की आवश्यकता

2014 के आम चुनाव में 814591184 मतदाताओं ने भाग लिया यह अमेरिका कि आबादी से तीन गुणा ज्यादा है जो दुनिया में आबादी के मामले में दुनिया का तीसरा बड़ा देश है भारत के चुनाव आयोग का सराहनीय रिकॉर्ड रहा है और हर पांच साल में सर्वोच्च कुशलता के साथ चुनाव की विशाल कवायद कराने की ऐसी वैश्विक प्रतिष्ठा है जिससे किसी भी संस्था को ईर्ष्या हो सकती है। पहले चुनाव आयुक्त सुकूमर सैन के समय से ही आयोग ने कार्य कुशलता निष्पक्षता और नवीनता की शानदार परंपरा रही है।

1990 के दशक की शुरुआत में टी.एन.शेषन ने एक आज्ञाकारी, विनीत सरकार के प्रति दोस्ताना रवैया रखने वाली एजेन्सी को एक असरदार संवैधानिक संस्था में बदल दिया। जो चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता की रक्षा करने वाली एक प्रखर निगरानी संस्था बन गयी। निश्चित ही चुनाव में बाहुबल के इस्तेमाल को शेषन ने खत्म कर दिया। इसके बाद से उम्मीदवारों और दलों के लिए जनभावना को अपने पक्ष में मोड़ने के लिए धन बल मुख्य हथियार हो गया चुनाव आयोग से घबरायी सरकार ने शेषन की ताकत में कटौती करने के लिए आयोग का विस्तार कर इसे तीन सदस्य संस्था बना दिया। एक के बाद एक आने वाले निर्वाचन आयुक्तों में टी.एन.कृष्णन मूर्ती, लिंगदोह, कुरैशी जैसे महान प्रशासकों के नेतृत्व में अत्यधिक कार्यकुशलता और निष्पक्षता के साथ ऊंचे दर्जे का प्रदर्शन किया।

हालाकि इस बार लगा कि मौजूदा मुख्य चुनाव आयुक्त वी.एस.सम्पत के नेतृत्व वाला आयोग कसौटी पर खरा नहीं उतरा इसने अपने कामकाज में गरीमा का ध्यान नहीं रखा। आयोग की और खासतौर पर मुख्य चुनाव आयुक्त की पद की प्रकृति ही ऐसी है कि इन्हे सतर्क, दृढ़, आत्मविश्वास से भरा बेशक आक्रामक और पक्षपात से रहित होना चाहिए और इसके लिए यह जरूरी है कि आयोग तेज और असरदार तरीके से किये निर्णायक हस्तक्षेप के जरिये रुतबा कायम करें।

उम्मीदवारों, पार्टियों और उनके समर्थकों को यह डर हो कि आचार सहिता में निर्धारित लक्षण रेखा को पार करते हि उन्हे प्रतिबंधो का सामना करना पडेगा। एक सफल आयोग को धीरे धीरे एक अपनी सूचना प्रणाली विकसित करने कि जरुरत है। यह अनौपचारिक लेकिन विश्वनीय हो ताकि जिला और राज्य प्रशासनिक चैनलो से दि जा रही सूचनाओं की गहरी निगरानी रखी जा सके इसके साथ आयोग को निर्वाचन कि प्रत्येक प्रक्रिया में वास्तविक या संभावित उल्लंघनों के प्रति बहुत पहले हि तिखी प्रतिक्रिया दिखाने कि जरुरत है ताकि चुनावी संघर्ष कि गर्मागर्मी में उम्मीदवारों को अपनी मर्यादा लाघने से हतोत्साहित किया जा सके। जाहिर है आयोग को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने के लिए बहुत ऊंचे दर्जे का प्रशासनिक नेतृत्व दिखाने कि जरुरत है खेद है कि मौजूदा आयोग उन ऊंचे आदर्शों पर खरा नहीं उतरा है जो पहले के चुनावा आयुक्तों में हम मान कर हि चलते थे । यह नहीं भुलना चाहिए कि चुनाव आयोग राज्यों कि प्राशासनिक मशीनरियों हर पांच साल में करीब दो माह के लिए अपने हाथों में लेता है। ऐसे में आयोग को कार्यवाही करने के अपने अधिकारों का प्रदर्शन कर चुनाव सम्बन्धि प्रशासकिय हायरकी में खौफ पैदा करना अनिवार्य है।

मौजूदा आयोग शायद परिस्थितियों कि जरुरतों को समझ नहीं सका। मसलन बनारस के नामांकन अधिकारी को संवेदनशील स्थानीय स्थिती से निपटने के लिए अकेला छोड दिया गया। जंहा राज्य प्रशासन, मुख्य सचिव और पुलिस महानिदेशक परिदृश्य में आश्चर्यजनक रुप से नजर हि नहीं आयें। वंहा चुनाव अयोग धीमा और सुस्त ही दिखाई दिया बल्कि उसकी प्रतिक्रिया में भी जोश नदारद था।

आयोग के चरित्र में गुरांना और कुछ मौका पर कार्यवाही करना भी शामिल है, लेकिन आयोग बहुत लचीला लगा। उसमें कोई दृढता नहीं थी। एकदम शुरुआत से ही आयोग आजम खान और ममता बनर्जी जैसे नेताओं को अनुशासित करने में नाकामायब रहा जिससे आयोग कि छवि बेअसर और नरम लगने लगी। यह स्वभ. विक हि था कि चुनावी लडाई कि तैशी में आयोग खुद निशाने पर आने लगा। मतदान निकट आने के साथ ऐसी घटनाएँ बढने लगी। भारतीय जनता पार्टी के

प्रधानमन्त्री पद के उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी नें भी कई बार आयोग पर पक्षपात का खुला आरोप लगाया।

शेषन के बाद चुनाव प्रक्रिया में जिस प्रमुख मुद्दे कि और ध्यान देने कि जरूरत थी उसका सम्बन्ध धन बल के प्रभाव में कमी लाने से था। संचार और फोटोग्राफी कि आधुनिक सुविधाओं के होते, इसके गभीरता से प्रयास किये जाने थें। खेद है कि मौजूदा आयोग प्रशासन ने इस दिशा में सक्रियता नहीं दिखाई निर्धारित खर्च सीमा से कहीं ज्यादा खर्च करने कि घटना को उजागर करने के नए तरीके खोजकर आजमाने चाहिए थे और आगे कि दिशा में महत्वपूर्ण कदम लेने चाहिए थे पर ये मौका गवां दिया गया।⁶

चुनाव आयोग को अधिकरो के सदुपयोग कि आवश्यकता

ताकत कितनी भी क्यों न मिल जायें लेकिन अगर उसका इस्तेमाल हि नहीं किया जाये तो ऐसी ताकत किस काम कि। चुनाव आयुक्त हरि शंकर ब्रह्मा का मानना है कि आयोग के हाथ बंधे है। लिहाजा उसे और ताकत कि जरूरत है। प्रेस परिषद के अध्यक्ष और सी.बी.आई. के मुखिया भी ताकत बढ़ाने कि बात करते है मतलब साफ है कि अधिकांश सैवधानिक सस्थाएँ अधिकारों कि बात तो करती है लेकिन जितने अधिकार मिलें है उनके इस्तेमाल कि बात कोई नहीं करता। भारतीय चुनाव आयोग अपने गठन के 64 वर्षों में बेहतर काम किया है आजतक 16 आम चुनाव कराना भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में कोई मामूली कार्य नहीं है। लेकिन आम धारणा अब भी यही है कि आयोग अपने कर्तव्यों के निर्वहन में पूरी तरह कामयाब नहीं हो पाया। चुनाव आयुक्त अधिक अधिकारो कि बात करते है लेकिन सच्चाई यह भी है कि चुनाव आयोग कि असली पहचान टी.एन. शेषन के मुख्य आयुक्त बनने के बाद हि कायम हो पाई शेषन से पहले भी तमाम मुख्य चुनाव आयुक्त आयें ओर गयें लेकिन कोई अपनी छाप नहीं छोड पाया। आयोग को मिले उन्ही अधिकारों का इस्तेमाल करके शेषन ने बता दिया कि काम करने कि ललक हो तो अधिकार कहीं आडें नहीं आतें। शेषन के बाद भी कितने हि मुख्य चुनाव आयुक्त बनें लेकिन क्या किसी के नाम आम आदमी को याद है लेकिन लोग शेषन को अब तक नहीं भुल पायें।

लोकसभा 2014 के इन चुनाव का उदाहरण हि सामने रखे तो उत्तर प्रदेश के मंत्री आजम खान कि रैलियों पर रोक लगाने के अलावा आयोग नें शायद हि कोई शख्त कदम उठाया हो। इस चुनाव में आयोग नें नोटिस देने के अलावा कोई कार्यवाही नहीं कर पाया। कोई प्रत्याशी सार्वजनिक रुप से किसी के टुकडे

टुकड़े करने की बात कहने के बावजूद चुनाव लड़लें और आयोग बेबसी जताने के अलावा कुछ नहीं कर पाये तो आयोग पर विश्वास कैसे जमें। चुनाव प्रचार के दौरान करोड़ों रुपये पकड़े गये, शराब का जखीरा जब्त हुआ लेकिन क्या किसी भी प्रत्याशी का नामांकन अवैध घोषित किया गया ? भाजपा नेता गोपीनाथ मुंडे ने टीवी कैमरे पर लोकसभा चुनाव में आठ करोड़ रुपये खर्च करने की बात स्वीकारी थी। लेकिन आयोग ने उनके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की। आवश्यकता अधिक ताकत या अधिकार देने की नहीं बल्कि जितनी ताकत आयोग को मिली है उसका सदुपयोग की है। जिस दिन ऐसा होने लगेगा उस दिन अधिकारों की बात अपने आप बेमानी हो जायेगी।'

चुनाव आयोग को स्वतन्त्र और निष्पक्ष होने की जरूरत

निष्पक्षता एवं निष्पक्ष चुनाव भी प्रजातन्त्र के उन तीन मूल कारकों में से एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में है। हमारा देश प्रजातन्त्र कहलाने वाला देश है जो अनेक बड़े-बड़े राज्यों में बंटा हुआ है। इन राज्यों में जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन करती है, उसके प्रतिनिधि वास्तव में उसी के प्रतिनिधि हों, इसके लिए " स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव" आवश्यक है। प्रजातन्त्र की पहचान स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव से ही होती है। अतः जिन राज्यों में स्वतन्त्र और निष्पक्ष निर्वाचन नहीं होते, वंहा प्रजातन्त्र हो ही नहीं सकता। वैसे निर्वाचन का ढोंग तो रूस, चीन, आदि देशों में भी होता है, किंतु यह निर्वाचन एक पक्षीय है और केवल सरकारी तमाशे करार दिये जा सकते हैं इसलिए इन राज्यों में केवल काल्पनिक प्रजातन्त्र है वर्तमान में भारत में भी चुनाव कि संदिग्धता, निष्पक्षता के बारे में काफी कुछ सुनने और समाचार पत्रों में पढ़ने को मिल रहे हैं।

नौवीं लोकसभा चुनाव के समय निर्वाचन आयोग की निष्पक्षता के बारे में कई प्रश्न चिह्न खड़े हुए जैसे प्रधानमंत्री राजीव गांधी के चुनाव क्षेत्र अमेठी में धांधली, हिंसा, एवं मतदान कब्जे कि शिकायतों को सही पाने पर भी मात्र 97 मतदान केंद्रों पर ही पुनः मतदान कराने का फैसला किया गया। अन्य क्षेत्रों से आयी शिकायतों पर भी बिना पुख्ता जांच कराये ही आयोग ने पुनः मतदान कराने के आदेश दिये जबकि अमेठी में जांच के लिए विशेष दल भेजा गया। अमेठी के मामले चुनाव आयोग ने अलग मानदंड क्यों अपनाया ? अमेठी को विशिष्ट क्षेत्र मानना किसी भी आधार पर न्यायोचित नहीं माना जा सकता। जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत जैसे प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के चुनावों की निष्पक्षता अब खटाई में पड़ चुकी है। किंतु यह परिस्थिती किसी भी दशा में उचित नहीं है क्योंकि प्रजातन्त्र में चुनाव

की निष्पक्षता एक अनिवार्य तत्व है वस्तुतः चुनाव आयोग द्वारा निर्वाचन स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष कराये जाने चाहियें।⁸

निर्वाचन आयोग में सुधार की आवश्यकता

ऐसा प्रतीत होता है कि आयोग अपनी वर्तमान स्थिती में स्वयं को कहीं ना कहीं बंधनो से युक्त मानता है। यह अति आवश्यक है कि निर्वाचन आयोग के लिए कोई भी सैवधानिक अथवा वैधानिक संशोधन हो जब तक आयोग अपने कार्य करने में क्षमता में सक्षम नहीं होगा, सुधारों कोई महत्वो नहीं रहेगा। ऐसी स्थिती में सम्पूर्ण निर्वाचन की इस धूरी को विभिन्न कानूनों द्वारा अधिक स्पष्ट बनाना आवश्यक है ताकि संविधान के भाग 15 के वास्तविक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकें। इसी संदर्भ में निर्वाचन आयोग ने निम्न सुधारों की आवश्यकता महसूस होती है –

1. पृथक निर्वाचन मशीनरी एवं स्वतंत्र सचिवालय की आवश्यकता : कार्यपालिका के प्रभावी नियंत्रण से ऊपर से नीचे तक मुक्त निर्वाचन मशीनरी ही स्वतंत्र एवं स्वच्छ निर्वाचनों का आयोजन करा सकती है। समय समय पर स्वयं निर्वाचन आयोग नें इसके सम्पूर्ण तंत्र को स्वतंत्र बनाने का आग्रह भी किया है। वर्तमान में आयोग अपनी वित्तीय आवश्यकताओं एवं मानव शक्ति हेतु पूर्णरूपेण संघ सरकार, विधि मंत्रालय एवं संसद पर निर्भर है। आयोग को केंद्र एवं राज्य स्तर पर एकदम स्वतंत्र निकाय बनाने के लिए यह अति आवश्यक है कि उसके स्वयं के अधिकारी हों। आयोग के पास संघ लोक सेवा आयोग, उच्चतम न्यायालय या संसदीय सचिवालय की भांति अपना कोई पृथक कर्मचारीवृंद नहीं है।

वित्तीय क्षेत्र में भी निर्वाचन आयोग की स्थिती को सशक्त बनाने के लिए आवश्यक है कि इसका बजट संचित निधि पर उसी तरह भारत होना चाहिए जैसे इसी तरह कि अन्य स्वतन्त्र सैवधानिक संस्थाओं का होता है।

2. क्षेत्रीय आयुक्तों की नियुक्ति – संविधान के अनुच्छेद 324(4) का यह प्रावधान है कि राष्ट्रपति प्रत्येक लोकसभा व विधान सभा निर्वाचनों से पूर्व, निर्वाचन आयोग को, उसके अनुच्छेद 324(1)के अन्तर्गत भारत कार्या के सम्पादन में सहायता देने के लिए क्षेत्रीय आयुक्तों की नियुक्ति करेगा। लेकिन अब तक यह क्रियान्वित नहीं किया गया है।
3. पुनः मतदान का अधिकार – मतदान मशीनो को नष्ट किये जानें, दबाव, बल प्रयोग, फर्जी मतदान एवं गभीर शिकायतो के आरम्भिक तौर पर सही पाये जाने पर आयोग को अधिकार होना चाहिए कि वह संपूर्ण मतदान को रद्द कर, नये

सिरे से मतदान कराने का आदेश दे सके ऐसा अधिकार दिये जाने से आयोग की स्वतंत्रता और निष्पक्षता जनसाधारण में अधिक प्रतिष्ठीत हो सकेगी।

4. दोषी कर्मचारियों के विरुद्ध कार्यवाही व दंड का अधिकार – निर्वाचन आयोग के समक्ष कई बार ऐसे मामलों भी आते रहते हैं जिनमें निर्वाचन कर्तव्यारूढ कार्मिकों पर गंभीर अनियमितियों के आक्षेप लगाये गये हैं। ऐसा कहा जाता रहा है कि इस प्रकार के मामलों में कुछ राज्य सरकारें बड़ा सरल दृष्टिकोण अपनाती हैं। और किंचित दंड देकर मामले को समाप्त कर देते हैं।
5. आयोग की स्वच्छदंता पर नियंत्रण – आयोग की स्वतंत्रता के साथ साथ उस पर औचित्यपूर्ण नियंत्रण भी आवश्यक है क्योंकि पिछले कुछ समय से मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने अपने पद का हठधर्मिता से प्रयोग किया वह काफी चिंतनीय था। निर्वाचन आयोग एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निकाय है यदि इसमें किसी व्यक्ति विशेष के दुराग्रहपूर्ण आदेश स्वीकार किये जायेंगे तो इससे लोकतंत्र पर गंभीर खतरा बन सकता है अतः यह आवश्यक है कि आयोग पर उच्चतम न्यायालय अथवा उसके समान्तर किसी संस्था को आयोग के अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने का विधिक प्रावधान प्रदान किया जायें।
6. निर्वाचन पद्धति में बदलाव की आवश्यकता – वर्तमान में लोकसभा एवं विधानसभा निर्वाचनों में साधारण बहुमत पद्धति को अपनाया गया (द फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम) को अपनाया गया है इस पद्धति की कमियां बहुदलीय राजव्यवस्था में सर्वविदित हैं अतः इन निर्वाचनों में अन्य वैकल्पिक पद्धतियों के बारे में सोचा जाना चाहिये। विशेषतः उन पद्धतियों के बारे में जिनके माध्यम से जन प्रतिनिधी अपने निर्वाचकों के कम से कम पचास प्रतिशत से ज्यादा मत प्राप्त करते हुए प्रतिनिधीत्व करें।⁹

निष्कर्ष

अभी तक भारत में लोकसभा के 16 आम चुनाव सम्पन्न हुए हैं और आयोग के चुनौती पूर्ण कार्य को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि निर्वाचन क्षेत्रों में परिसीमन से लेकर निर्वाचन अधिनिर्णय तक के कार्य को चुनाव आयोग ने समान्यतया कार्यकुशलता निष्पक्षता और ईमानदारी के साथ सम्पन्न किया है।

7 अप्रैल से 12 मई 2014 तक नौ चरणों में शान्तिपूर्ण मतदान करवाना आयोग के समक्ष चुनौती भरा कार्य था लेकिन आयोग ने इस कार्य को भलि भांति सम्पन्न करवाया। 16 मई 2014 को 989 केंद्रों पर 17200000 ईवीएम के केंद्रों पर वोटों की गिनती करवाई गयी जिसमें 10 लाख अधिकारी शामिल हुए यह चुनाव प्रक्रिया 36 दिन चली इस महासमर में पचपन करोड़ वोटों की गिनती की गई जिसमें 8251

प्रत्याशी मैदान में थे इनमें 668 महिला प्रत्याशी तथा 5 किन्नर उम्मीदवार भी चुनावी मैदान में थे वोटो कि गिनती के प्रत्येक राउंड कि जानकारी भारतीय निर्वाचन आयोग अपने वेबसाइट पर दे रहा था। यह सम्पूर्ण कार्य चूनौती भरा था लेकिन भारतीय निर्वाचन आयोग ने इसे स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से पूर्ण करवाया तथा भारतियो के लिए 30 साल बाद एक दल ने बहुमत प्राप्त कर भारतीयो को स्थिर सरकार प्रदान की जिसके लिए भारतीय निर्वाचन आयोग प्रशंसा एव बधाई का पात्र है।¹⁰

संदर्भ ग्रंथं सूची :

1. शकधर,एस.एल. " लॉ एण्ड प्रेक्टिस ऑफ इलेक्शन्स इन इण्डिया "(नई दिल्ली: नेशनल 1992) पृ 9
2. शर्मा, अशोक "भारत में लोकतंत्र और निर्वाचन" (अ.वि.अ.व.स.:जयपुर 1984) पृ 33
3. राजस्थान पत्रिका 17 मई 2014
4. Indian general election 2014,wikipedia
5. www.eci.in

Ritika Kumari Meena
Research Scholar
Mohan Lal Sukhdia University,
Udaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

JAIPUR :- TOWN PLANNING AND ITS ARCHITECTURE

The name of Sawai Jai Singh has been perpetuated by the new capital which he founded. It was originally called Jai-nagar and afterwards Sawai Jaipur, which has been shortened into Jaipur in the popular mouth. After his return from the capture of Thun (1723), Jai Singh lived for four years at Delhi and Mathura, making pilgrimages to the Ganges and the religious ambulation of the holy land of Mathura (Braja Mandal Parikrama). In 1725 he was busy erecting his astronomical observatory in the Jaisinghpura suburb west of ShahJahan's city. He now issued orders to his officers in Amber to build palace (Jai Niwas) on the site of his future capital, on the plain below, according to the plans sent.

It is thus apparent that as in many other things Jai Singh was a pioneer also in the matter of town planning in northern India .

How did Jai Singh go about planning the town then? It appears that he first selected the site and tried to fit in his idea with it, keeping in view the topographical constraints of the site. There were hills to the East, North and to the north-west of the site. The new city had to be built in such a manner that not only were the hills avoided, but also the rain water flowing down the hills did not damage the town wall. Another important physical constraint was a low ridge running approximately West to East through the proposed site. The main road which practically was the axis of the town had to be built along this ridge. This is the Chandpole - Surajaple Road, and it is because of the directions of the ridge not due west - east, but turned 15 degree in the clock wise directions.

One of the constraints was artificial, Jai Singh had already constructed a garden called the Jai Nivas on the site, and he wanted the new city to be

built round about this garden, the foundations of which were laid in 1725. The building of the city and its surrounding walls and gates was started with due propitiatory rites (Sankalpa) on 18th November, 1727.¹

So far as the planning of the town was concerned we have practically no written documents (except the one “Doha” of Girdhari mentioned earlier) to show how Jai Singh proceeded.

What Jai Singh probably did was to get some of sketch maps prepared showing the various possibilities, so that he could choose among them some of these maps are still available in the Maharaja Sawai Man Singh II museum city palace, Jaipur. Unfortunately the maps are too few number to make out how Jai Singh’s idea gradually developed and took palace.

Jaipur was built with perfect symmetry; its artery road are wide, absolutely straight avenues cross broad straight streets at right angles and the house facades along the roads are so designed to produce a uniform artistic effect. The plans were drawn up by a Bengali Brahman named “Vidyadhar Bhattacharya”, who was deeply read in the ancient Sanskrit book on architecture and town building (Silpa -Sutra).²

The city of Jaipur stands in crescent shaped valley embosomed among hills on three sides of it, which are strongly fortified both by nature and art, while the fourth or southern side has no defense except the city wall. This wall rising 20 to 25 feet in height, is of stone, with a brick facing unprotected by either ditch or rampart. It is crenellated with towers at intervals and bastions and lofty screen walls before the gateways. These gates are double with a space between .

The town planning of Jaipur is very scientific and ideal. It was scientifically planned and built in the year 1727 by the astronomer prince Sawai Jai Singh. In that year there were few such planned cities even in western countries. Rectangular in plan, this city is divided into blocks. The principal roads run along the entire length of the old city. The streets and lanes are at right angles to each other. Three main roads running North - South intersect the principal streets and the main road running East to West and go to form open squares, commonly known as “chaupars”.

The lanes are 27 ft. and the streets are double of it and the roads are double in width of the streets. Thus, 108 ft is the width of a road, 54 ft is the width of a street and 27ft the width of a lane. A crenellated masonry wall about 20 ft high and 9 ft thick encloses the city. This wall is pierced by eight ways called "Pols". Two kiosks above the gateways from the special features of entrance architecture.

All the main streets are bordered with stone edifices. The houses are generally two storyes high, but some rise to three or even four, with ornamented windows and balconies, most of which are finely carved . They are interspersed with handsome temples in the same style as those of Benares.³ The city, originally had all buildings coloured in light pale, since this colour was the pet colour of Sawai Jai Singh who was assisted by Vidyadhara Bhattacharya in all his architectural projects. It was in the time of Maharaja Sawai Ram Singh, that the city becomes pink coloured and its facades were worked with white designs.

The architectural features of the buildings of the Jaipur City include usually slender tapering columns, jutting balconies, surmounted by kiosks, curvilinear cornices, engrailed arches and latticed windows. The rows of houses and temple towers, flanking both sides of the wide streets in the city, present a pleasing view to on lookers. The Gateway were also constructed in the traditional style, each being well protected with battlements, parapets, screen walls, surmounted by two kiosks and machicolations over the entrances. The doors were thick, of durable wood re-inforced with metal mountings, bosses and even iron spiked knobs. Each was provided with a wicket window. The gates are all located at the end of the main road. These wide roads of town are crisscrossing at right angles and big squares gave it the looks of a chopar Board.⁴

Another unique features about the main roads of the city is that all the old and previously existing temples were allowed to remain in sites even if they came in the middle of the road. These temples exists even to this day in their original locations.

The balconies are very beautiful as well as a prominent features in architecture of Jaipur. Like a bartizan or bastion, they enable the occupier to

see the road from end to end, a very necessary arrangement in days of the purdah. The inner galleries (Rosar) with ornamental railing (Kataras) in the private houses ran round the central square on the upper stories and from these entrance was obtained to the different rooms all around, the staircase usually being at one corner.⁵ The chambers facing the sides of the square were open in front and formed common rooms, the private apartments were at the corners and in the rear and could be reached through these common rooms only.

The decoration on the walls and ceilings of these rooms were simple. The wall would be either plastered terracotta or pale yellow, blue etc. straight stripes in white or black would be pointed to give the semblance of inlay in red sandstone. Quite often the floor as well as the dodas (that is upto 3 feet of side walls) would be decorated with Araish, or plaster usually made of powdered crystalline stones like marble and fine lime.

Another decoration was the painting of Subjects like the Raga-Ragani, Baramasa and animals, birds etc. on the walls or ceiling in between floral or scroll motifs. The main entrance doorway was often pointed with dwarpal flanked with elephants Ganesh was usually perched on the niche on the toran of the Dorhi (Main Gate).

A word now about the temple architecture, Not considering the very old temples that existed from before the foundation of the city and which were allowed to remain in site without any disturbance, the first temple to be built in the new city was that of Shri Govind Deoji.⁶ There is a legend that goes that at first Sawai Jai Singh built his residential quarters at the site of the present temple and the deity was housed elsewhere in the complex.

The temples are in the Rajput or Chalukya Style, and generally of a mixed form, unlike those met in Amber and Saganer which were chaste. Most of Jaipur's temple also lack the usual profuse carvings. The spine is like the Bengali truncated paraboloid construction, crowned with a lotus, and gilt or stone Kaishs as pinnacle with a flag staff and trisul - damru in case of shiv temples. These last type made their appearance in the 19th century under Maharaja Ram Singh II.

Most of the temples have a series of courts surrounded by arcades and

calls for promenade, residence of officials, pathshalas, libraries, rasooras, kothiyars etc. as in the secular buildings of the city.

Thus Jai Singh ensured in all possible manners that his newly built capital would have a planned, prosperous and uniform look.

Reference

1. Jaipur Records, Hindi, sitamau collection. Vol. III. P. 53, Ed.
2. A History of Jaipur - Jadunath Sarkar, P. 206.
3. A History of Jaipur - Jadunath Sarkar, P. 207.
4. Newell, 1915, page no. 10, Nath 1993, page no. 131.
5. Building Jaipur - The making of an Indian City, V. Sachdev and G. Tillaston, page no. 63-64.
6. Building Jaipur - The making of an Indian City, V. Sachdev and G. Tillaston, page no. 66-67.

Dr. Rita Pratap
Retd. Professor,
Deptt. Of Drawing & Painting
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

SPLENDOUR OF NATURE IN KISHANGARH PAINTINGS

Nature is an unavoidable factor of every one's life. Nature has been the main theme in most of the art forms in India. According to traditional pantheistic belief, human nature and nature as whole are intrinsic to each other, therefore nature has always been essential to Indian imagination.

For many, the tranquil depictions of Nature gives respite and relaxation, calming of the soul and spirit in one's own home. The mountains, hills, rivers and lakes, plants and trees, birds and animals are still regarded as the natural abodes of deities and auspicious places for meditation. The serene Himalayan retreats or the sacred river banks, shelter sages and yogis of India. Especially consecrated are the sources and confluences of rivers. Evidence of tree worship has been found in Mohenjodaro (C-2500 B.C.) and is still popularly believed that every tree has a tree deity, a spirit who is worshipped with prayers and offerings.

In an effort to represent the beauty that meets the eye, the artist tries to capture that fleeting moment in time and space for all time, thus becoming a co-creator with the original creator.

In these visions may be any element that may be natural or man made. Flora and fauna, the weather, light and darkness all can play a part. These may or may not be, form and colour, for even the lack of it shows the painter's perception in the quest for artistry.

In the middle of 18th century in the tiny state of Kishangarh, there developed a regional style of painting of romantic loveliness which stands unique and unrivalled in Rajasthani Painting.

On the north-western part of India and adjacent to the border of Pakistan is situated the princely state of Rajasthan.

Rajasthan with the unification of various areas viz Dhundhar, Mewar, Marwar and Hadoti comprises the states of Jaipur, Udaipur, Bikaner, Jodhpur, Kota , Bundi and Kishangarh.

Kishangarh town is well connected both by road and train. The territory of Kishangarh consists of two narrow strips of land and covers an area of 858 square miles. Three small hills with low height cover the northern part and the southern part being flat and fertile.

When one starts from Madanganj one comes across the lake known as 'Gundolav'. On its shore is 'Phool Mahal' and in the midst of the hills is 'Kishangarh Fort' which was built by Kishan Singh in V. S. 1668 (1611 A.D.).

From Phool Mahal one can access through boat to the beautiful water palace popularly known as 'Mokham Vilas' situated at the midst of the lake. From the eastern side it can be accessed by road but during rainy season when the lake is full it is covered by water.

The Jagir estate was inherited by Kishan Singh¹, the eighth son of Raja Udai Singh of Jodhpur² in 1609 AD. Today is known as Kishangarh. At this time the most absorbing theme for the artist was the cult of Krishna as enunciated by the Pushtimarga. Kishan Singh, Sahasmal, (1615-1618 AD) and Jagmal (1618-1629 AD) could not do any favour to the development of art. Hari Singh (1629-1643 AD), Roop Singh (1643-1658 AD) (established Roop Nagar after his own name. It was earlier in the hands of Sisodia Rupasimha's family).³ though were interested in art and one can find few paintings painted in their period. Man Singh (1658-1706 AD) was assigned duties in the Mughal court, which enabled Man Singh to promote the activity of Art. Raj Singh (1706-1748 AD) the seventh chief was a devotee of Pushtimarga and had got series of painting painted in Radha Krishna theme. It was Man Singh and Raj Singh who invited Amar Chand, Nihal Chand, Bhawanidas, Girdhardas⁴ Soorat Ram artists from Delhi. Noora Dhadhi was the only local painter.⁵ Up till now Kishangarh painting was moreover influenced by Mughal school of painting, inspite that while producing painting the artists worked according to the wishes of the Maharaja.

The art of painting reached new height and excellence under the patronage of Sawant Singh (1748-1775 AD) alias Nagari Das who was a

devotee of Vallabhacharya sect. Nihal Chand artist worked according to the instructions of Sawant Singh (who himself was also an artist)⁶ and created beautiful scenes of Krishna Legend in which Radha was painted in the form of Bani-Thani.⁷ In the caption of paintings as well is in the papers of Kishangarh state other names also appear as Mussavir Nihal Chand, Khoja Nihal Chand and Soordhaj Nihal Chand. With Sardar Singh and Bahadur Singh's division of state no art work was done from 1755-1764 AD and the artists remained at Roopnagar.⁸

In the year 1764 AD all the artists migrated to Kishangarh and art activity was again restored. Nihal Chand's two sons Sitaram and Soorajmal assisted him in painting. In 1762 A.D. Amar Chand artist also joined them. During Pratap Singh's period too Amar Chand,⁹ Soorajmal and Sitaram continued to paint.

Birad Singh (1781-1788 AD) got Krishna and Radha theme painted. Kalyan Singh (1797-1838 AD) got some of his portraits painted and a set of Gita Govinda was also produced by the artists. Swai Ram, Soordhaj Nana-gram¹⁰ artists, worked at his court and in course of time there was further deterioration in the style of Painting.

During the period of Mokham Singh (1838-1840 AD), Prithvi Singh (1740-1880 AD). Shardul Singh (1880-1901 AD) and Madan Singh (1701-1926 AD) the art of painting was not encouraging. Amar Chand a local painter worked with them.

Thus the credit of taking the Kishangarh School to climax goes to Raja Sawant Singh whose Chief artist Nihal Chand's fame rests on the invention of highly stylized figures with beautiful foregrounds and backgrounds. He stuck to indigenous idioms and did not imitate the mughal style completely. Moreover Physical Environment also had great influence in the development of style of painting. Roopnagar, one of the centers of Art of painting was surrounded by woodland, lakes and water pools. Innumerable smiling field, meandering streams and dense forest dotted the land all around with attractive groves and dense foliage. These were full of flowering trees like Champa Chameli, Malsri, Taunala and Kadamba.

Birds of varied hues like cuckoo, orioles, parrots perched on the branches of the trees chirping and fluttering added beauty to the forests.

Kishangarh painters too have skillfully painted the lush green trees, distant landscape spotted with gardens in an architectural setting with palaces, bridges, canopies, temples, (having banners afloat on their pinnacles) and cenotaphs in pink and white colour are unique there by breaking the monotony of the green background. Edges of lakes and rivers are beautified by decorative treatment of circular lotus leaves with pink and white buds and flowers. Besides this, fishes, swans, cranes and chakras etc, all show diverse mood in nature. The trees have frolicking monkeys, the forests have antelopes, ravine deers. Depicting of fountains was also in fashion and water herons and ducks delighted themselves in it.

Few Paintings of Kishangarh School are to be examined so as to judge the Splendour of Nature in it.

Leisure Journey in Boat and Meeting at Woodland Grove : (1760 AD, Coll. N.M.D., Acc. No. 63. 793, Artist Nihal Chand).

Nihal Chand's fondness is depicted in painting romantic episodes of Radha and Krishna. The artist has succeeded in portraying the grandeur of nature in this painting. The top panel of painting shows the setting of sun with a spread of red and golden yellow glow in the sky. Just below is thick forest with massed trees, then is a row of temples, palaces, cenotaphs in pink and white colour. Further is huge lake with ducks and lotus flowers. In the center of the lake is sleek long red boat in which are seated Radha and Krishna with female musicians in front and two maids at the back. The foreground too has a lush green trees whose dense foliage is patterned by haloes of diffused light and the rows of plantains acting as foil to the serrated brown tree trunks. In between are visible two marble pavilions. Krishna and Radha are standing under a tree facing each other. Krishna is holding a flower garland high in his hand as if offering it to Radha. (Plate - I)

Radha offering garland to Krishna : (1735-50, Coll. N.M.D. Acc. No. 63. 1767, Artist Nihal Chand)

In a scarlet colour long boat is seated Radha with her maids. Three maids facing her are playing music, and the other four are seated at the back rowing the boat. Three maids are at her back among which two of them

are holding Morchal and Sayaban. Sawant Singh in the form of Krishna rides his white horse into the lake and accepts the garland which is offered by Radha,

In the foreground two palaces are shown on both sides where ladies have come out to see the episode and hear the music. Groves of trees, cluster of plantain trees are designed beautifully in the corner space. The top foreground that is the shore of lake has temples, palaces made in white marble and red sand stone. In between the latticed architecture are groves of trees. Stairs are made from the shore of the lake to reach the buildings. The lake has lotus flowers which are shining in dim light. Here the artist composed the painting in a setting called royal grandiose. (Plate - II)

Radha offering flowers to yogi Krishna : (1750 AD, Coll. N.M.D. Acc. No. 63. 1769)

Yogi Krishna and Radha are standing under two full bloomed tree. At the back are two maids holding trays of flowers. The frolicking monkeys are prancing from one branch to another. Parrots and other birds are chirping and fluttering. Deers, rabbits, dancing peacock, cranes etc are all depicted in different playful moods. The background has huge lake. People are trying to cross the lake in two white long boats. The shore of the lake has white palaces, forts, temples etc. Atop the green hill is also depicted a temple. The foreground ends in a pond where swans, ducks and full bloom lotuses are depicted.

Radha offering beetle leaves to Krishna in a pleasure Garden : (1800 A.D. Coll. N.M.D., Acc. No. 49-19/214)

Radha and Krishna are found seated on a square erected terrace inside a grove with marble latticed wall all around. Five maids are standing two on one side and three on the other. As a token of love Radha is offering beetle leave to Krishna. On one side is a temple with a deity of goddess. Above it is a mosque whose minarets and dome are visible from the dense forest. The mass of rocks and the vast Gundolav lake. On the other end is painted the palace and the distant city with hillocks at the back. The variety of green colour carries the eye movement from foreground to background there by achieving a symmetrical balance.

The Golden Deer chased by Rama: (1775 AD, Coll. N.M.D., Acc. No. 59 584/9)

In the vast Greenland Rama is shown with bow and arrow chasing the golden deer which is running at a great speed. The bottom foreground has a small rivulet full of lotus flowers. Above it is a hut where Sita is seated. In front of her is Ravana standing with a kamandal. The background has a green belt of hills with big boulders of stone lying in rows. The top panel has glowing sunset.

Krishna offering a garland to Radha : (1765 AD. Coll. N.M.D. Acc. No. 63-801, Artist Sitaram)

In the painting, Krishna in female attire offers garland to Radha who is seated on a high chair. Two maids stand behind her holding morchals while another stands in front of Radha.

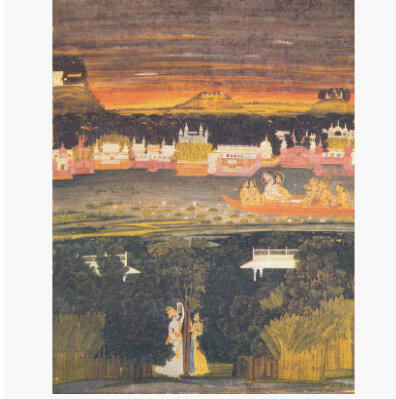
The foreground has a pond with pair of ducks and cranes. Plantain trees are on both sides of the pond. The background has dense forest with circular groups of leaves. Minarets of mosques appear on both sides of the groves trees with palaces in between whose four corners are adorned with cenotaphs. The swirling dark clouds are shown on the top panel. Here the style of Sitaram artist showed the quality of line and delicacy of colour.

To conclude one can say that Kishangarh painters were found adept in showing Radha Krishna theme with tender and delicate treatment of landscape, skillfully dealing with garden decoration, maintaining three dimensional effect by both colour and line the colours being fresh, rich and harmonized. Architectural setting of beautiful pavilions and palaces with Gundolav lake are replicas of what existed in the real scene in and around Kishangarh. Such was the splendour of nature visualized by artists of Kishangarh. Moreover the contribution of poet and painter Sawant Singh whose inspiration played an important role in creating Kishangarh Style Painting so splendid.

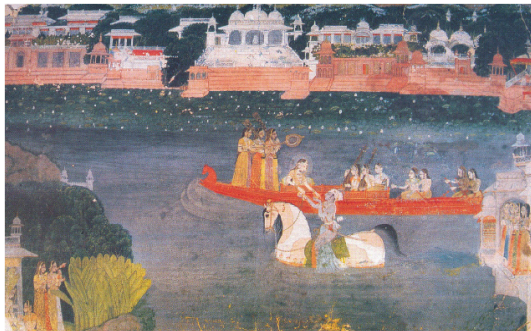
Reference:-

1. James Tod; Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol 2, Calcutta, 1879, p. 32
2. Ibid; p. 32

3. Rajasthan District Gazetteer, p. 742
4. Faiyaz Ali Khan; The Painters of Kishangarh, Rooplekha, Vol L1, No. 1 & 2. p. 64
5. Noora Dhadhi was a contemporary of Bhawanidas and Nihal Chand.
6. Sumahendra, Splendid Style of Kishangarh Painting, Jaipur 1995, p. 20. It is mentioned that in the collection of Kishangarh Darbar, there are four drawings prepared by Sawant Singh.
7. For more paintings of artist Nihal Chand see E. Dickinson and K.J. Khandalavala, Kishangarh Painting, New Delhi, 1959, Plate I, II, IV and VII
8. Vijay Kumar Mathur; Marvels of Kishangarh Painting, Delhi, 2000, p. 26
9. Amar Chand got his first employment under Sardar Singh at Roopnagar.
10. Soordhaj Nanagram was the only artist who worked in Kishangarh only and there after died.



(Plate-I) Leisure Journey in Boat and Meeting at Woodland Grove :
(1760 AD, Coll. N.M.D., Acc. No. 63, 793, Artist Nihal Chand)



(Plate-II) Radha offering garland to Krishna :
(1735-50, Coll. N.M.D., Acc. No. 63, 1767, Artist Nihal Chand)

Dr. Shashi Goel
Post Doctoral Research Scholar
Department of Political Science
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

THE INDIAN PARTY SYSTEM AND POLITICAL PARTIES

A modern democratic system cannot operate without the role of political parties. A pluralistic social order has a number of organized interest groups that play a part of their own in the political process of the country in alliance, open or secret, with political parties. A two-way traffic can be noted in that while the political parties need followers and resources which groups provide, parties. The groups articulate their interests and the parties aggregate them. Thus, interaction takes place that has its visible form in the role of political parties and its invisible form in the role of organized (catalyst) groups. Since India has a pluralistic society and a democratic welfare state, the role of political parties and pressure groups deserves a particular study.

Party System

In the Indian political system comment that India has parties but no party system. The crux of their argument is that while there are several political parties, big and small, in the country, there is nothing like emotional or psychological attachment of the people with a particular party or some parties on the basis of which some concrete rules of political behaviour may be formulated. Moreover, frequent fragmentation of political parties and, at the same time, a movement for the polarization of like-minded parties creates another baffling problem. Facts indicate that many political parties come into being as a result of either splits in their ranks or an alliance of various contending factions. The 'charismatic' personality of a particular leader has its own place. A leader of national or regional importance may carry with him a large number of followers and float his private political party that loses its identity with the eclipse of the leader or its merger with another party. The panorama of Indian party system is also vitiated by rampant factionalism operating in every political party.¹

Evolution of the Indian party system

Drawing its lineage from the pre-Independence times, the Indian party system attained a definite shape with the inauguration of the parliamentary democracy in the country within the framework of the Constitution of India. Ideologically, even before India gained independence, the party system of the country was marked by the presence of the Congress and umbrella organization representing, though predominantly the upper and middle classes yet of Indira Gandhi came to the center stage of the politics in the country, reminiscing the days of Jawaharlal Nehru when he used to hold sway over both the party and the government without any significant opposition to the government and the party. However, as pointed by Rajni Kothari, there existed a great deal of difference between dominance of the Congress under Nehru and the dominance of the party under Indira Gandhi. As he argues:

“In course of time, however, (while Nehru was still alive) the Congress party ceased to be a movement and became a party and government, under Indira Gandhi gradually its role as a broad based party disappeared and all that it remained was the government. Still later, under the emergency, even the government disappeared and what remained was a caucus.²

The nature of the party system after the fifth general elections underwent a dramatic transformation with shifting of the goal posts very swiftly. The emergence of the congress led by Indira Gandhi as victorious settled the question, once and for all, which Congress is the real Congress in the minds of the people. Against the personality of Indira Gandhi, all other stalwarts of the Nehruvian times were forced to go into oblivion in the aftermath of the dismal performance of their party in the election. Many opposition leaders were so mesmerized with the personality of Mrs Gandhi that they somewhat forgot to play the role of a formidable opposition to personality could not raise their voice loud and clear in the face of the fresh mammoth electoral victories of Indira Gandhi.

Ominous portents in the party system of the country started emerging from 1973 onwards with the public perception of the Congress party turning negative affording numerous issues to the opposition leaders to start mass movements against the party and government of Indira Gandhi. While the

mass movements in Gujarat and Bihar prepared the background for the total disenchantment of the people from the Congress party, the decision of the Allahabad High Court came as a personal loss of Indira Gandhi who was driven to the brink of getting removed from office unceremoniously. In sheer desperation, the only effective remedial course of action conceptualized by her was the declaration of a state of Emergency in the country on 26 June in order to shut down the business of politics and suspend all sorts of political activities. All over the country. The repression that followed the imposition of Emergency led to the total recall of the public goodwill in the Congress party making sure the realignment of political forces in the country as and when the political activities and allowed to take place. Now all other difference and cleavages amongst the various shades of opposition parties gave way the necessity of fighting a joint battle against the atrocities committed by the Congress government with the ultimate objective of overthrowing the government at the first available opportunity.³

The Indian party system, we may enumerate its characteristics as under:

1. India has neither a single party system as prevailing in a communist or a fascist country, nor does it have a bi-party system as prevailing in Britain and the United States. Here operated a multi-party system as prevailing in many countries of the world. If a complete catalogue of Indian political parties is prepared, the number many exceed the astonishing figure of 50. at the national level, we may mention the names of Indian National Congress. Janata Dal, Bharatiya Janta Party, Communist Part of India and Communist Part of India-Marxist. At the regional level we may refer to national Conference in Jammu-Kashmir, Shiromani Akali Dal in Punjab, Telugu Desam in Andhra Pradesh, Dravida Munnetra Kazhagam and Anna-DMK in Tamilnadu, Forward Bloc and Forward Bloc-Marxist in West Bengal, Mizo National Front in Mizoram, Sikkim Sangram Parishad, Assom Gana Parishad in Assam, Samajvadi Parti in U.P. and Bahujan Samaj Party in U.P. and M.P. etc. Besides there are may parties like ad hoc and fringe organization.

2. A Multi-party system is one in which different parties have the chance to be a power. Power alternates from one party to another. We may take note of the multi-party system at the regional level. But the situation

is somewhat different when the examine the case of political parties at the national level. In other words, India's multi-party system is different from the multi-party system of countries like France or Italy. Leading writers on the Indian party system like Myron Weiner, Rajni Kothari and Giovanni Sartori have preferred to call it 'single-dominant-party system.' It means that one party is so powerful that all other parties put together may make no match and may be thus, in no position to pose a serious or meaningful challenge to its sway. This position was enjoyed by the Indian National Congress that had been in power at the Centre and in most of the States since independence. Now this system looks like broken down.

3. recently a new development has taken place that may be visualized in the formation of some loose organizations within or outside a political party which may, and also may not, be identified with a political party. Since the anti-defection law of 1985, prohibits leaving a political party voluntarily on whose ticket a person is elected to any House of Parliament of State Legislature, the way out has been penalty of the said law. In 1988, some members of the Parliament (V.P. Singh, Arun Nehru, Arif Muhammed Khan, V.C. Shukla, Ram Dhan etc.) left the Congress party and formed Jan Morcha (People's Front) for this purpose. It is also possible that a shrewd dissident leader may float a Manch (Forum) inside the party to work as a ginger group. A Vikas Manch (Development Forum) floated by Dr. Jagannath Mishra in Bihar and another by Bansilal in Haryana or a Forum for Action Floated in the Congress by V. Patil are its instances.

4. Ideology plays an important part in the organisation and working of political parties. But the element of ideology cannot be traced in many political parties of India. Leaving aside the BJP on the right and the two Communist Parties on the left, all parties are like ideologically neutral organizations. Their commitments to the principles of social, economic and political significance are so flexible that they may be termed non-ideological organizations. It is a different matter that someone may characterize it as a typical case of ideology and therefore coin a term like 'Congress ideology.' Moreover,, with the making of a amendment in the Representation of a People Act in 1988, every political party is required to have its faith in

a allegiance to the Constitution of India and endorse its commitment to democracy, secularism and socialism. As such, rightism, leftism and centrism have lost their sanctity, expediency and pragmatism have taken the place of commitment to certain principles.

5. The factor of 'personality' has a place of its own in the operation of Indian party system. The Indian National Congress lived like an organisation of Mahatma Gandhi, then of Nehru, then of Indira Gandhi and then it was identified with the name of Rajiv Gandhi. An influential leader of U.P. like Chaudhry Charan Singh left the Congress in 1967, and then floated his own political parties like Bharatiya Kranti Dal, Janata (S) and Lok Dal. In Tamil Nadu M.G. Ramachandran left the DMK and floated his Anna-DMK, in Sikkim Nar Bahadur Bhandari floated his Sikkim Sangram Parishad in Andhra Pradesh Telugu Desam is the party of N.T. Rama Rao for many years the National Conference of Jammu and Kashmir worked like an organisation of Sheikh Abhullah. Some thing can be said about Laldenga's Mizo National Front and Sudhash Gheishing's Borkha League. Such organizations generally eclipse after the death or fall of their 'charismatic' leader.

6. Above all, we may take note of the perplexing fact of frequent disintegration and polarization of political parties. There are two Congresses, two Communist parties, two Janata Dals, two DMKs, three Akali Dals, three Muslim Leagues, about half a dozen socialist parties etc. most of these parties are sustained by the factor of anti-Congressism. Politics means struggle for power and struggle for power requires combination of strange partners. Thus, ad hoc alliances are formed. Such experiments were made during the period of politics of fragmentation and individuation (1967-71) which eclipsed with the re-emergence of Congress under the leadership of Indira Gandhi. The Janata experiment (1977-79) was a model of the same when five parties (Congress (O), Bharatiya Jana Sangh, Bharatiya Lak Dal, Socialists and lately the Congress Defectors) joined hands. Its latest example is the formation of the Janata Dal of V.P. Singh being the biggest constituent of the National Front formed on the even of Lak Sabha polls in 1989, under the Chairmanship of N.T. Rama Tao. The success of such pragmatic alliances

may be attributed to the downfall of the Indian National Congress.⁴

Contemporary Trends in Indian Party System

Concluding a monograph on Indian politics, an expert so aptly described the contemporary trends in the Indian party system: 'Indian politics in both coalitional and regionalized.' Beginning seems to have changed beyond recognition for an observer who stood witness to the nature of the party system in the country during the times of Jawaharlal Nehru and Indira Gandhi. The churning in the party system of the country which may be said to have begun in 1977 appears to have reached its culmination which not only the Congress party losing much of its political space and preeminence in the Indian politics but also with the emergence of the BJP as the formidable rival of the erstwhile dominant party at both the levels of forming government at the Centre as well as upsetting the Congress game plan in most of the states of the north and western India. With the exception of a few states like Tamil Nadu, West Bengal, and Kerala, and so on, the party system in India looks like a two-coalitional party system whereby the power at Centre as well as in different states is being shared by the Congress-led coalition of UPA and the BJP-led coalition of NDA. The other exceptional parties, based mainly in a particular state, seem to be in competition with either of the two coalitions to corner the seat of power in the state without any overt aspirations to play a decisive role in the national politics.⁵

The current phase of the Indian party system is probably the product of the inability of the pan Indian parties like the Congress and the BJP to expand their electoral base to all nook and corner of the country in such a manner that either of the two are able to secure at least a workable majority in the Lok Sabha to form the been poised to perform the functions of a formidable opposition in the Parliament in the wake of the fast-changing economic situations in the country. But faced with the two plausible opponents in the form of the BJP and Congress, the Left parties were compelled to shed the broader outlook of their scheme of things and supported Congress just to confine their attention to ward off the BJP-led NDA from forming the government at the Centre. As a result, the Left parties, for the last three years, have found themselves in a love-hate relationship with the government of a person who they allege to be the harbinger of the economic reforms

in the country. Not only have they to support the UPA government from outside even by swallowing bitterly recently-concluded Indo-US Civil Nuclear Deal, also called the 123 like the SP of Mulayam Singh who could not digest the stance of the Left parties in going with the Congress party on all substantive matters of governance. How for the Left parties and the Congress are able to adjust their relationship in the next general elections as well as the elections to the assemblies of the states like West Bengal, Tripura, and Kerala would be interesting to see.⁶

The Indian party system shows that it suffers from certain weaknesses. First, the fact of ideological orientation is missing in most of the parties operating of the national and regional levels. Leaving aside the BJP on the rightist and the two communist parties on the leftist spectrums, all other parties are ideologically neutral organizations more concerned with their attitude towards 'personalities' than with a clear-cut commitment to some particular type of social and economic philosophy. The requirement of the amended Representation of the People Act (that every political party seeking its registration with the Election Commission must have a constitution of its own expressing its commitment to Democracy, Secularism and Socialism) has made the line of distinction between parties further blurred. Second, frequent events of fragmentation of parties and then moves for polarization of life-minded parties disturb the stasiological map of the country from time to time. One faces difficulty in preparing a list of all kinds of 'socialist' parties in the country, for instance.

Above all, each party is ridden with rampant factionalism and even the Indian National Congress has failed to manage its internal dissensions. Consequently, the opportunists and careerists have been able to establish their hold over the organization. In recent years a more pernicious trend may be noted in the growing nexus between the politicians and the criminals. The sanctity of elections has been vitiated by the criminalisation of politics to a great extent. These developments stand as powerful barriers in the growth of a healthy party system in the country. This view of an American writer may be appreciated with some reservation that the general outlines of the party system in India "are relatively clear, although they present some very

contradictory tendencies. A healthy party system has not emerged, and there seems little likelihood that it will emerge in the foreseeable future.”⁷

Concluding Observations

The Indian party system is passing through a phase of transition which looks to be full of contradictions and paradoxes. Old enemies are becoming friends as in the case of Congress and SP, and old friends are turning hostile to their ex-allies as in the case of Congress and the Left on the issue of Indo-US nuclear deal in July 2008, while at the state levels, two parties are worn enemies, at the Centre, they supplement the efforts of each other to form and sustain the government even at the cost of compromising on the issues that had remained very dear till quite some time. For public consumption, the decisions and policies of the government may be criticized stridently but when it comes to vote in the Parliament, the escape route is found to hold the discussion under such a section that does not provide for voting on the issue. The ruling coalition appears to be a marriage of convenience when finding no other way out, the parties joined hands to form the government even with those people who were criticized and ditched on account of their being ‘persons of foreign origin’. Despite the regional allies having the controlling power of the government in their hands, the dominant partner in the coalition appears to be willing to walk to any length and compromise on the constitutional propriety and norms of political conduct in order to save the government. And the height of the matter reaches when one finds that how the government is being run by people sitting outside the formal hierarchy of the system and still holding the remote control in their hands to enjoy the benefits of governance without any accountability to the Parliament and to the people.

If the ruling combine seems to be an abject opportunist formation to enjoy the fruits of power, the opposition also does not present a rosy picture of the prospects of the party system in India. Remaining a divided lot as ever, the opposition parties are not able to even expose the hypocrisies of the government, what to think of their offering themselves as a viable alternative to the ruling combine in the coming general elections. While the main opposition coalition finds itself incompetent to bring the government to book, the splinter groups are seemingly groping in the dark to find a

respectable political space for them both at the national as well for the level of their states. In such a scenario, the party system in India appears to be poised for some degree of stagnations for the time being, for the realignment of political forces in the country would take place only at the time of the declaration of the general elections in 2009. in the mad rush for securing the seat of power at any cost, the party system in the country is arguably losing much of its ideological sharpness and commitment to certain programmes and policies.

Reference:

1. Sharma, Manoj; Indian Government and politics, Anmol Publications, Delhi 2004, p. 431-32
2. Kothari, Rajni; 1977, p. 15
3. Chakrabarty, Bidyut; and Kumar, Rajendra Pandey; Indian Government and politics, Sage Publications, Delhi, 2008, p. 214-15
4. Sharma, Manoj; Indian Government and politics, Anmol Publications, Delhi 2004, p. 432-35
5. Chakrabarty, Bidyut; and Kumar, Rajendra Pandey; Indian Government and politics, Sage Publications, Delhi, 2008, p. 229-31
6. Rudolph and Rudolph, 1987, p. 138
7. Sharma, Manoj; Indian Government and politics, Anmol Publications, Delhi 2004, p. 451-452

Dr. Ritu Johri
Assistant Professor
Department of Fine Art and Painting
Jai Narayan University, Jodhpur

ATISHAY KALIT
Vol. 3, Pt. A
Sr. 5, 2014
ISSN : 2277-419X

INTERRELEATION SHIP BETWEEN IDEA AND
IMAGE IN INDIAN ART
(FROM ANCIENT TO CONTEMPORARY)

India's culture which blossomed more than 3,000 years ago, has given successive generations of Indians a mind-set, a value system, and a way of life, and a way of life, which has been retained with remarkable continuity despite of passage of time.

India can claim to have the oldest continuous cultural traditions in the world. Rabindranath Tagore believed passionately that India's culture owes its continuity to the support that it has always received from the masses and also because there is something eternal in this land.

The Indian Arts are like the branches of a vast tree of culture, thought, science, ritual and spirituality, and they cannot be understood in isolation. They are based on fundamental Indian conceptions of the cosmos and of man, of space and time, of the body, mind and self. The aspect of the arts, changes, not because of fashion, as is often thought, but because the new conditions that affect society and the artist bring with them new demands and damnations, which does not at all imply that ancient masterpieces are out of date for certain demands within us happen to the permanent. The spirit of Indian Art and culture never been out of date. Some images and ideas have been alive and breathe with us since a very long time. The best artists in return a new. An art, which merits or merited the appellation of 'modern', is an art that is procurrsive. 'Advanced Art' adds a living cell to the muscle of tradition. The Indian Art is not only art forms they are lively tissues. Art is not merely to minister to needs recently from or ready to be born, but above all to satisfy those which are deep and unchanging in us.

The arts form an integral part of the total culture. The concepts have crystallized in the Sanskrit tradition as specific concepts which pervade

virtually all disciplines. The wide range of Indian art forms are interrelated through shared aesthetic theory.

In the context of a seminar on "Shastric Traditions in Indian Arts, Stuttgart : Steiner 1989, T.S. Maxwell has thrown light on the interrelationship of sastra and prayoga, of the critical literature and practical application. The Texts present various kinds of sources for the artist, and to interpret art without them means to reduce our understanding of the total context in which art has its meaning.

The national pencil or the pencil of Indian culture has been extensively used during the last 2000 years with sensitivity and care, and its manifestations are examples on continuity and renewal, and yet no major innovation seems to be a departure from the past.

1.1 The Life Resources of Art

Name and aspect

Idea and Image

Bimb and Pratibimb

1.1.1 Name and aspect

"Name and aspect" (nama-rupa) are the fundamental conventions (respectively intelligible and sensible) by which phenomena are knowable (discriminated). This in the Satapatha Brahman, XI, 2, 3, name and aspect are treated as the two manifestations of the Brahman, whereby He is known in the contingent universe, "aspect being intellect, in as much as it is by intellect that one seizes aspect," and name being speech, inasmuch as it is by speech that one seizes name," and there two are not distinguishable in nature for "whatever is name is indeed aspect." As described in Devimahatmaya , XI , Narayanistuti , " Nameless and formless Thou art, O Thou art unknowable . All forms of the universe are thine ; thus art known . Known and unknowable , Goddess Narayani , Obeisance." ¹

1.1.2 Idea and Image

"No human impression is only a signal from the outer world, it always is also an image..... Human mentality begins with images."

It should be noticed once for all that, just as in English, so in Sanskrit

very many words, for example vac, rupa, are necessarily used in two senses, empirical and ideal, or even in three senses, literal, ideal and transcendental. Rupa, however, when correlated with nama, has always to be rendered by "aspect" rather than by "form", it is really nama, "name" or "idea", that is the determining principle or "form" of the species. Thus with respect to man, nama-rupa is "soul and body" the soul being the "form" of the body. To render nama-rupa by "name and form" is tautological.²

For the distinction of speech from sound cf. Chuang Tzu : "Speech is not mere breath. It is differentiated by meaning."

(Giles, Chuang Tzu, 1889, p. 16)

The heart (hrdaya) is said to be the support of all things, the highest Brahman. The heart is thus a synonym for the centre and entirety of being. This has to be born in mind in connection also with the term sahrdaya, "having heart," equivalent to rasika and pramati.

"It is for the advantage (artha) of the worshippers (upasaka) (and not by any intrinsic necessity) that the Brahman - whose nature is intelligence (cin-maya), beside whom there is no other, who is imperative and incorporeal - is aspectual conceived (rupa-kalpna),"³

That is to say that image, as in the case of any other "arrangement of God" has a merely logical, not an absolute validity. Worship (Upasana) has been defined as an intellectual operation (mansa-vyapara) with respect to the Brahman with attributed -qualities

(saguna).(Ramopanisad text cited. Bhattacharya Indian Image, p. xvii.)

"Nothing beyond what is self-developed in the brain of a race is permanently gained, or will survive the changes of time."

—Flinders Petrie, in Social life in ancient Egypt

As described in Vishnudharmottara ,III . Ch. XLVI . 2-3

"The Supreme Spirit has two states of Form : the [one, the] Nature of the (prakriti) and its transformation as appearance (vikriti) Prikriti is his invisible form. Vikriti is the aspect (akara)in which He pervades the

Universe Worship and meditation can be performed in relation to His aspect (sakar) only. (1.1)

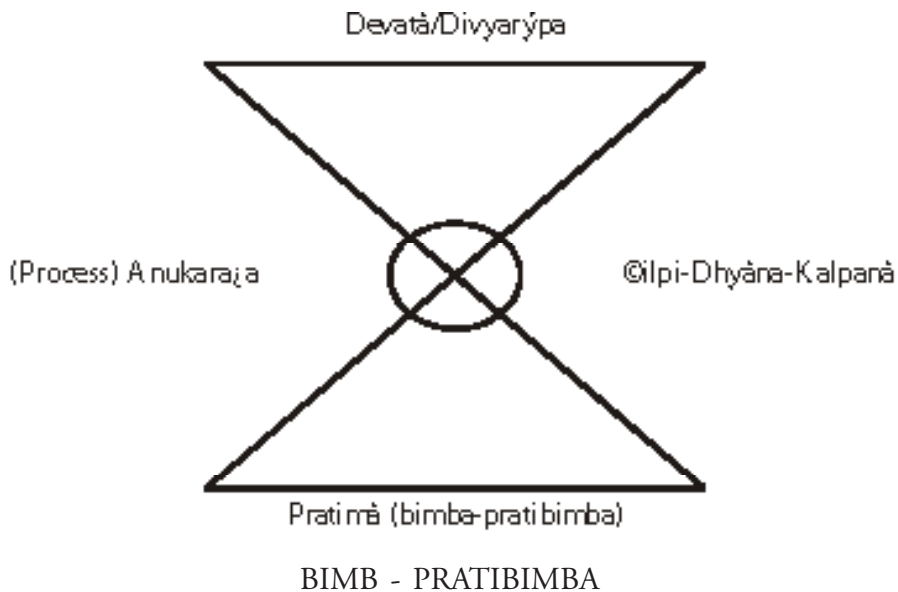
1.1.3 BIMB-PRATIBIMBA :-

The term bimba has been used in sculpture and painting in the sense of an image or icon.

The Amara Kosa (IL. 10. 35-36) defines the term partibimba as the synonym of pratima and arca (ion). The Unadi Dhatu Vrtti (IV-5t35) uses the term bimba to mean a ^apratirupa^a that is explained as an image.

The Medini Kosa (XXIII. 7a) makes it clear that bimba in the masculine gender means pratibimba, i.e. reflection. Canonical literature on Silpa mentions the term bimba in the sense of an image or icon suggesting the care meaning of the term to shine or to reflect and thus equating the installed or carved or painted image being the reflection or pratinidhi or praticchaya of the ista devata.

The term bimba pratibimba in the context of Indian art follows the course of its developed in Indian philosophy. Like a yogi, Indian sculptor or painter is also supposed to meditate upon the rupa or form conceived in



Only that is supposed to be beautiful which is made in the likeness of an archetype or divine form visible only to the intellect.

True anukarana of the divine form or model is not a matter of illusory resemblance, but of proportion true analogy or adequacy by which we are reminded by the intended referent.

It is interesting to note that Silpa-texts use those terms for images and icons which are described as the synonyms of bimba-pratibimba such as : pratima, pratirupa, akrti, murti, vighraha, etc., thus conveying images (creations of art) to be reflect icons of divya shilp. God - prakrti - avidya or maya = lilasakti - visva or creation = bimba or rupa being reflection of God.

जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च ।

अजाचलमवस्तुत्व विज्ञानं शान्तमद्वयम् ॥

Mandukya Karika IV.45

Consciousness which appears to be born or to move or to take the form of matter, is really ever unborn, immovable and free from the character of materiality, it is all peace and non-dual.

1.2 - Suggested words for IDEA and IMAGE

I have collected some other names of Idea and Image to understand the difference between the mental Idea and visualize Image. Suggested words :

IDEA	IMAGE
Name	Aspect
Concept	Rupa
Vision	Body
Facts	Form, Bimb
Soul	body Plastic Quality
objects of interest	fixing in imagination
Potentialities	Figuration, vikriti
Values	Perceptual
germ of mind	Articulation
(manaso retah)	Yantra
Mantra	

Various process of Transformation of Idea into Image

1.3 THE SECRET OF ARTICULATION

mansa – vyapara	Proportions
(intellectual operation)	Embodiment
fixing the thing in imagination	feeling/emotions
Meditation	Articulate
Selection	Transformation and Projection
Manipulation	Clarity
impressed or impregnated	represent the thing in discourse
Alteration	Pulsating
Modification	Vibrating
Selection	Tapas or creative energy
Emphasis	bahu bhavitum iccha
Tantra	(The creative will or urge to be many)
Emerge	Flux, rhythmic breath

At this time we Indian's should know about these treasure of Art. The pran-pratistha and the secret of a good art should explore among the Indian Artists.

I have much surprised during my studies that why I have not got this knowledge previously. Why we think liberty, boundlessness, but a systematic way is found, discovered, enlightened by our thinkers which is the secret of art.

A plastic quality results that is as though carried by the living breath with which the image is filled; conducted by the smooth channels of body and limbs. These smooth channels have a pristine glow and a continuity of outline as though what they hold were an equivalent of the breath of God.

“The use of such shapes and notions is perennial in Indian Art,

even though different phases which have stemmed from different cycles of consciousness and artistic maturity have been gone through.”

Indian art has gone through various cycles of development, just as does every art and all organic life. It has produced, again and again, the contained - form of the primitive the full manifestation of the classical.

The symbols and shapes used are based on the appearance of move, now as a puppet like Silhouette, again as a most subtle and colossal super-human figure.

Shapes other than the human body are, of course, also used. Together with their verbal or conceptual meaning they determine the mature of the forms that result.

In Indian art a common denominator is never lost sight of.

Such is the case with the lotus. When continuity, as of a wave, is suggested in lotus form, its rhizome carries it. When origin is to be expressed, its bulbous root shape is used from which other shapes stem in turn. When ‘total manifestations’ is to be shown the open lotus flower conveys it in the fullness of its circular perimeter.

Various formal concepts are synonymous with bulbous or root shapes : the vase, for example, or the seed pod with the over blown drooping leaves of the lotus itself; or pot-bellied figures or the shape of the tortoise. With respect to the principles of composition, vertical symmetry ascending, or radiation from the container, vase or root shapes follow logically.

There are, further, the animal components of form, the active vigour of the lion - shape, the assured power of the elephant - also the combination of these and other similarly expressive forms like horse, cow , hanse , crocodile , sun ,moon conch .

Particular quality of form in an “Indian Work” of art is supported by the tension of the pairs of opposites represented. The seeming immobility of a seated Buddha image, or of a Vishnu image standing as straight as is the world pillar, carries compelling power in its calmness because of the balanced tension of line, mass and weight.

Symbols could also be understood as a rescued and simplified signs or

motifs of animals, human beings, vegetation, abstract forms and concepts, divine, semi divine, inanimate objects, attributes and auspicious powers.

After analyzing and studying the whole key terms reached on one point, The Five Elements. The result of my research is that the truly Indian Tradition of Art and Life always has been directed or being with Five Elements which never been separated by our life. The key concepts of art could divide or connected with each element, as described in ancient texts. This study is related with sciences and also being studied on global level. (see table)

In India the discovery of primitive, Harappan, Folk, Tribal, Tantra and other local and provincial arts and their symbols and patterns are the 20th century phenomenon in the wake of the national consciousness which was generated against the imposition of British concepts of art on Indian Artists. Now days these images are also shown and created in Indian Contemporary art.

IMAGE'S QUALITY :-

Positively, art is the language or expression of feeling.⁵

For the sake of the worshipers, material forms are attributed to Brahman, whose essence is knowledge, who is without a second, without body. Gods make their appearance closely - when the images are beautiful and the devotion is intense and the worshipper is absorbed in deep contemplation. This is described according to Sri-Hayasirsa Paricaratram. Buddha, praksa Introd. p. 2.

Images are useful for helping forward contemplation and yoga. The human maker of images should there for be meditative. Besides meditation, there is no other way of knowing the character of an image, even direct observation is useless.⁶

Images are to be constructed with appropriate bodily proportions, ornaments, dress and decorations in accordance with their respective places of origin, as such those which have prescribed auspicious characteristics are conducive to prosperity of the devotee.

An Ancient Indian Treatise says that art conduces to fulfilling the aims

of life, whose ultimate aim is release (Moksha). Thousands of years before they were given verbal expression in Veda (the Scripture), and in Vastu sastra and silpa sastra (the text books on the arts) the traditions of India were embodied in the form of Indian art.⁷

In this art, the shape of man and all subsidiary figures are ordered in accordance with a living myth. They serve as its symbols and carry out its rhythms.⁸

In this transformed shape the self is represented in art. Moreover it is also the scene of transformation of the self, that is to say of the as yet unregenerate psycho physiological ego.⁹

The transformation results from an inner process of realization. where sculptural and pictorial shapes are embossed from within modeled, as it were, by the action of breath on the resilient walls of the appropriate vessel - the body, the ultimate unit of measurement for the organizing lines in the plan of a building is also called 'breath (pran)'. The rhythmic breathing quality of form is the test of a work of art, for it contains the life movement (cetana) of the subject.¹⁰

Although the form of Indian art is instinct with the movement of life, its limits are prescribed by concepts.¹¹

God is the name and work of art is the body and house in which the formless, the Beyond form, the Goal of Release and source of all Form, reveals itself.¹²

All the arts were known to be interconnected by movement, of which the dance was the specific expression.¹³

Visual art in India is movement translated into measured lines and masses. Breath was known as the principle of all living moving form. It was therefore a test of a good painter that his figures should appear to breathe. In Indian art the figures are, as it were, modeled by breath, which dilates the chest and is felt to carry the pulse of life through the body to the tips of the fingers. This inner awareness was given permanent shape in art, for it was daily and repeatedly practiced and tested in the discipline of yoga.¹⁴

It was found that by the concentrated practice of controlled breathing, an

inner lightness and warmth absorbed the heaviness of the physical body and dissolved it in the weightless 'subtle body', which was given concrete shape by art, in planes and line of balanced stresses and continuous movement. This shape, inwardly realized by yoga, was made concrete in art. Works of art in India are known as existent (vastu) approached, (murti); they can be comprehended, seen and touched.¹⁵

“PRAN PRATISHTA”

The humblest, simplest object has the value of a priceless work of art if it partakes at the divine. The sculptor with his timeless art, reaches into the very nature of the material seeking to interpret and release its hidden power. Reality is conferred upon the image when it leaves the hands of the sculptor.

A priest performs the rite of 'PRANA PRATISHTA' "opening the eyes" and during the ceremony names the image and passes breath into the new, lifeless image. The gods alone, have the power to express form and give life to the sculptor's art, so it is that the gods are born from initial matter. The original PRAKRITI, existing in nature and the universe, before their own existence. It is for them alone to pass from the uncreated to the created, from being in essence to manifestation. Man must wait for this manifestation.

Nidhikumbha -

Images which are established after the performance of due ceremonies beginning with the dedication of the jewel vase, nidhikumbha - pratishtha are known as immovable, acala.

1.3.1 Process of articulation or embodiment of Idea

Idea and Image Of Matter in Indian Art

Mahidas was presumably the author of the Aithareya Brhmana and of the major portion of the Aithareya Aranyaka. He had his school, collectively known as the Aitareyas, used to hold that pure matter was entirely devoid of life, and hence of form since form or rupa was the manifestation of life; in other words, life and form were synonymous. According to them matter embodied the principle of passivity, it was neither being nor non-being. Their argument seems to have been that the principle was the Deity who stired

up matter into motion or energy, that is life, since the diety was as much prana, the vital living principle of the universe, as he was the prajhana, the eternally active self-conscious reason. But when in the Chandogya upnishad uddalaka Aruni argued that something could not come out of nothing and that it could do so only out of something he was also arguing at the same time that form could not come out of matter unless it was already there in the letter in some form or other. Indeed, uddalaka seems to have argued that all elements in matter were inspirited, inhibited, animated and motivated by and impregnated with, in varying degrees, by one and the same spirit : bahu bhavitum iccha, the creative will or urge to be many; this will or urge was inherent in all things. The Taittiriya and the prana Upanishads too, seem to have taken the same line of argument, namely, that matter was something which was impressed or impregnated with or capable of form, and hence of life.¹⁶

Decades ago Barua traced this view to the Nasadiya sukta of the Rgveda, which he interpreted as follows :

“In the background of the whole process of creation is the primeval matter pulsating with its own life, vibrating with its own force, impregnated with its own potentialities and fraught with possibilities. Tapas or creative energy setting a new vibration in the primeval matter, gives rise to creative desire, the will-to-be, which acts or acts or operates as the germ of mind (manaso retah), the imaginative factor from which the entire series of creations or forms follows in visible or tangible shape.”¹⁷

The passage of creation in visible or tangible shape, in other words, the passage of Form from mere potentiality or possibility inherent in matter to actual figuration, has been explained briefly in a much later text the Gay amahatmya. This text refers to three broad stages :

(1) ‘avyakta’ inarticulated, that is the stage when life or form lies potentially inside of matter;

(2) Vyaktavyakta that is, actualized but in part, just suggested, outline as in a preliminary sketch;

(3) Vyakta, fully expressed or articulated. Any creative artist knows that in the passage between what lies embedded in matter as potential form and

finally articulated form itself there are more stages than these three, and many other factors too, are involved in the process, but what the Gayamahatmya says has significance in as much as it explains the live link that connects matter with form.

Any piece of material has its own grain, texture, feel, temperature, colour, etc., similarly a theme, a vision, or an idea which is waiting to be articulated, has its own texture and feels colour and temperature, aroma and atmosphere, in other words, its own nature and character.

An artist has, therefore, to choose his material keeping in view which material would be most suitable for the communication of the idea, the vision, or the theme, that he has in mind. He chooses a particular piece of stone, a particular piece of any other material as a matter of that, because he considers that the chosen piece has in it the potentiality of the form he has in his creative imagination. More often than not in the process of articulation, that is, in the passage from *ayakta* to *vyakta*, the original conception which is very often somewhat amorphous or just a seed, a suggestion, undergoes change of varying kinds and degrees. The gain in growth, clarity and precision which is the least of all changes, is also again in the process of articulation. All this amounts to mean that the material plays not an inconsiderable part in any creative activity, by helping the process, at times by resistance even. The material is indeed the *prakṛti* which is the field of activity of the artist, the latter happens to be the *puruṣa* in this case, if one may use a metaphorical language.¹⁸

Tantra is both an experience of life and a scientific method by which man can bring out his inherent spiritual power. Tantra the discovery and location of the centres of energy - *chakras* in the human body....Indian Artists, or more precisely, tantric *shilpi-yogins*, have conceived the realization (through all form the formless) in terms of dimension - *sabda* - the primordial sound substratum as a form of monosyllabic mantra, the *om* and *Brahmanda* as the vital key-form of a supersensuous world, the Egg. The formless gets a time element, a dimension, a permanent shape, the abstraction of which is aimed at incorporating spacial values conditioned by sound and light.

Mantra gives formula and equation, *yantra*, diagram and pattern, and

whatcorrelates both systems of relations is Tantra.

All the objects that we see and feel in this universe from thought or idea to matter, are sounds of particular concentration. Every object consists of a certain density of sound more or less complex and varying from case to case. The sound before-sound, the anahata dhvani which is not struck because there is no "form against form" and which as sabda reverberates upon itself, thereby produces sound-energy that evolves as a rupa (or form), enveloped in pulsation. Sound is the reflex of form, and form is the product of sound.¹⁹

Every form has its norm of sound as an accompaniment of its energy.

According to Tantra, sabda-tanmatra, "potential sound" in combination with molecules produces "atom space". Bhartrahari holds space to be a power or a force (sakti) along with time.

At the vibratory level, sound creates light, for light is sound at a particular frequency. Every vibrating sound has a certain colour.

Every phenomenal object is seen as the concentration and reflection of light in a certain pattern. All forms (rupa) emerge in light and hence all names (name) of forms, tangible matter and energy alike are depends upon the existence of light, and light itself on sound.

Every colour has its life-sound and in turn every sound has its form-colour. All mantras have their corresponding colours and forms. The Tantras, on the yoga side, indicate the colours of the various vital forces observable by trance-vision.²⁰

Such integrated sound identifies the ensuring relation of mantra with yantra and explains.

SYMBOLS : FIXING IDEAS IN IMAGINATION

I would like to discuss about new theories and philosophy regarding concepts of art creation .

Susanne K. Langer wrote that

A work of art is an expressive form created for our perception through sense or imagination, and what is expresses is human feeling.

Symbol, Image, Experience

Symbols on which all reference and communication depends are words. They are, of course, also used in only naming things. "a sign which stands for something else and is used to represent that thing in discourse."

Langer emphasizes this basic function of symbols : articulation of experience, or investment of the contents of experience with a measure of definiteness and clarity by "fixing" them in imagination. The process is at work even in the simple act of assigning a symbol to a thing as its name, "for whatever is named becomes (fixed as) an entity in thought. "that is, it is envisaged."²¹

"Thought arises only where ideas have taken (some) shape, and actual or possible conditions imagined."²²

Besides abstraction, however, two more major processes are involved in artistic creation : these are symbolic transformation and projection. As for the first of these, it is naturally different from literal alterations of form. Changes such as those of milk into yoghurt, and of water into ice, are clear cases of literal transformation.²³

Of course, every kind of projection makes the content more easily perceivable.

Langer would insist that a vital meaning of the truth that "art springs from life experience" is that the artist is specially sensitive to feel of life; and that if the specific feeling of an art work is identifiable or intelligible it is only because though surely by means of manipulating his materials - the artist has been able to high light the felt character of whatever the work in question signifies, embodies, or projects.

SUBSEQUENT STEPS IN PROCESS OF CREATION

Reid when he seeks of art as creation.... The artist has to proceed step by step. When he is able to complete a part of the work, he pauses for a while to consider whether it satisfies him; modifies it, if necessary; and, what is more, reflects on what is next demanded by, and would go well with, what has just been accomplished. In the other words, the subsequent steps in the process of creation are taken by the artist not wholly on his own but after a careful look at the growing work itself.

The work, with its distinctive significance, is an “emergent” in the sense that it strikes its own creator as something rather unforeseen.

Let us now turn to Reid’s favorite word : embodiment. He prefers it to “expression” as the key concept of aesthetics. But, we may also note, he uses this word (embodiment) too in a somewhat special sense. So, when we speak of art as “embodiment” the meaning obviously is that words of art give definite, or more or less material, shape to the artist’s idea or vision; and that the physical or perceptual elements of an art-work, called “perceptua” by Reid, are the necessary bases of and inseparable from, its over all meaning.²⁴

What does a work of art embody ? Bare ideas or concepts, matters of fact, emotions, or values ?

“The proper media for the expression of concepts and their relations” are philosophy or science, not art.

Concepts are necessary general in meaning. An artwork, on the other hand, “means” only what is itself is, as an individual form. Science and philosophy aim at “clearer conception, and...communication of ideas.” So, their language has to be faithful to literal fact, and is therefore somewhat “cold and impersonal.” But the artist’s first loyalty “is” not to ideas as such”. Even where he uses language.” it is his excitement-in-ideas which moves him to proceed. Further, the literary artist, say a poet, has a freedom in the selection and manipulation of his subject matter in exactly the same way as a painter freely selects from the features of a landscapes to which the philosopher [or the scientist] has no right. It is ideas-as-he-feels-them (ideas as “values”) that “get in to” the poem. As with the painter, his emphasis, his style, is affected by the rhythms and pulsing of his feeling. In the writing of philosophy and science (on the other hand) the quality of style is primarily subordinate to the clarity of ideas.²⁵

He believes that it is not feelings or emotions as such that ‘try’ to get expressed’, but feelings about things, or things (facts, ideas, anything) as felt...., (that) the life resources of art are events or facts or concepts or images as experienced and as experienced with feeling... and that another way... of saying the same thing is to affirm that what tries to get expressed.

(in art) are values.” 5 in case are agree to understand value as Perry requires us to, that is, as object of interest.

An idea articulated in language as in poetry, or in sound as in music is also in plastic art as murti or rupa. In Indian art a word or art is great in so far as it expresses its own theme in a form at once rhythmic and impassioned; through a definite pattern it must express a motif deeply felt. I have called them key concepts or terms.

The criteria for relating the key terms of Indian art derived from textual traditions. They are covering a span of rarely 3500 years starting from Vedas. Main ideas has been organized thematically by concepts and collected manifestation in visual plastic art have tried to investigate the roots or fundamentals of Indian Art. I deeply felt that Indian Art could articulate a very highly abstruse, complex and abstract idea even. A good idea allows , invites, surprises, simplifies, and shares itself without ever becoming smaller as generous, mysterious and bountiful as nature itself.²⁶

References:

1. Stella Kramrisch, THE HINDU TEMPLE, vol. ii, pp forward pub. MLBD. New Delhi. 1.1 also same .F AND F , PP 376
2. A. K. Coomaraswamy, TRANSFORMATION OF NATURE IN ART, PP 200
3. A. K. Coomaraswamy, TRANSFORMATION OF NATURE IN ART, PP 114
4. Sukuma Chattopadhyay and Narasingha Charan Panda,Ed., Pushpa Tiwari writer , KALATATTVA KOSA VOL. VI PP. 183, pub. IGNC
5. Ducass, Art and philosophy, pp 60
6. Shri Hayasirsa Paricaratram , Buddha , Pra – Laksha, pp 2
7. Indian Art & Aesthetics ,pp. 2
8. Stella Kramrisch, Art of India : London pp. 10
9. Stella Kramrisch , Art of India : London pp. 14
10. Stella Kramrisch, Art of India : London pp. 10
11. 12. 13 . 14. 15. Same, pp33,15, 26,27,31, 33
16. Niharranjan Ray, IDEA & IMAGE IN INDIAN ART, PP. 56
17. Beni Madhav Barua , ANCIENT INDIAN THEORIES OF ART, The Journalof the Indian Society of Oriental Art, Calcutta , 1933, Vol. 1 , pp. 81 -84
18. Niharranjan Ray, IDEA & IMAGE IN INDIAN ART, PP. 58
18.1 Ajit Mukharji, Tantra Art - Its philosophy and physics Rupa & Co. Paris
19. Ajit Mukherjee, TANTRA ART,ITS PHILOSOPHY AND PHYSICS , Rupa & Co. PARIS, PP. 15-17

पुस्तक समीक्षा

भारतीय कला समीक्षा (विचार व रूप)

भारतीय कला अपने परम्परागत उत्तराधिकार की शक्ति पर निर्भर कर अपने कला तत्वों के साथ विकसित होने का प्रयास है। तथा कथित धार्मिक कला भी अंततः सदियों मानवीय अपील व विशिष्टता को बनाए रखने में सक्षम रही है।

इस मूल तथ्य को मस्तिष्क में रखते हुए डॉ. ऋतु जौहरी द्वारा यह पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक का भाग-1 कला चिंतन व लेखन- इस सुदीर्घ परम्परा के साथ ही कला रूपों के उद्भव, परम्परा पर अन्वेषण कार्य प्रस्तुत किया है। उद्देश्य भारतीय कला समीक्षा के विवेचन से भारतीय कला का स्वरूप स्पष्ट करना।

प्रायः विद्यार्थी भारतीय कला का कोई ऐसा मॉडल या स्वरूप नहीं बना पाते कि भारतीय कला का सुनिश्चित स्वरूप यह है। कभी प्रतिमा विज्ञान तो कभी साहित्यिक आधार तो कभी धर्म व दर्शन की रहस्यात्मकता कोई निश्चित स्वरूप न बनाकर हमारी सोच को और उलझा देती है। प्रश्न यह है कि भारतीय कला को कैसे समझा जाए? इतने लयात्मक, जीवंत व सौन्दर्यमयी आकृतियाँ कैसे रूपान्तरित हुईं। प्राचीन भारतीय कला के कलासृजन से संबंधित वैचारिक व कलात्मक पक्ष रहे हैं, जिसके कारण भारतीय कला का स्वरूप स्थिर हुआ है। ऐसे तथ्यों को संकलित कर एक नूतन दृष्टि प्रस्तुत करने की चेष्टा डॉ. ऋतु ने की है जिन्हें पूर्ववर्ती विचारकों व लेखकों ने निर्देशित किया है।

पुस्तक का भाग-2 'विचार व रूप' आयाडिया व इमेज में तीन बिन्दुओं का विश्लेषण है। यह सत्य है कि अनेक कुंजी-तत्व या की-कॉन्सेप्ट्स हैं जो भारतीय कला के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मुख्य कला रूपों के अमूर्त व सूक्ष्मतर तत्वों को भारतीय कला में विकसित व पल्लवित होते देखने को परिभाषित करने की चेष्टा की है।

पहला, 'बोधि' का विचार व रूप जिसमें 'बोधि' या 'बुद्ध' मूर्ति के उद्भव, निरन्तर विकसित 'बोधि' व बुद्धत्व के लक्षण मुक्त कृतियों का अध्ययन है। यून भी करुणा, प्रेम व बोधि की घुलनशील प्रवृत्ति आकारों में रूपान्तरित हो कला की यात्रा कला तीर्थ में परिवर्तित हो गई यह सूक्ष्म अध्ययन कला का विषय रही है।

दूसरा, पदार्थ का विचार व रूप में माध्यम की ऊर्जा व रचनाशीलता पर

व्याख्या है। पदार्थ का रूप से संबंध की दृष्टि से भारतीय कला की श्रेष्ठ कृतियों का उदाहरण सहित वर्णन है। किस प्रकार पदार्थ विशिष्ट रूप संयोजनों के उद्भव में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। विषयरूपी सामग्री भी सक्रिय सर्जनात्मक सहकर्म की तरह काम करती रहती है। वह सामग्री बहुधा नए भाव व स्वप्न इंगित करती है व रूपगत साधनों व प्रक्रियाओं को भी निरूपित करती है।

तीसरा, 'प्रवाह के विचार व रूप' में यह स्वीकार किया गया है कि भारतीय कला में रूप व शैली संबंधी कुछ धारणाएं हैं जिनके कारण कला का स्वरूप स्थिर हुआ, जिसमें सर्वप्रमुख तत्व रेखीय लय हैं। गति या प्रवाह के बहुत धीमें परिवर्तन की सरल शुरुआत अभंग मुद्रा में ही मोहनजोदड़ो व हडप्पा की मूर्तियों में भी देख सकते हैं और शिव भैरव के नादन्त नृत्य में देख सकते हैं। मोहनजोदड़ो से चि. दम्बरम तक समय व अन्तरिक्ष या अन्तराल की लंबी यात्रा में दृश्य कला में प्रवाह की इस सूक्ष्म, अमूर्त व जटिल अवधारणा को रूपबद्ध होते देख सकते हैं। भारतीय कला में, शरीर की उपरी सतह के सूक्ष्म, सरल व अमूर्त उपयोग, अंगों के चिकने व लचीले सुडौल पन से रूपायित विषयों की इन्द्रिय ग्राह्यता रेखाओं की लय से अभिव्यंजित होती है।

संसार की सभी शैलियों की समीक्षा कर और इंगित कर सार या मूल तत्व को प्रकट करने की दिशा में महत्वपूर्ण निर्देश प्रदान कर,। इसमें किंचित वैचारिक मतभेद ही सकते हैं पर यह अनुभूति के अधिक निकट लाने की चेष्टा है। नान्दतिक मूल्यांकन या स्थापित प्रतिमानों में रेखीय लय या प्रवाह, माध्यम करुणा/प्रेम या बोधि जैसे तत्वों की घुलनशील प्रवृत्तियों को प्रमुखता दी जाए ऐसी सहमति विद्वानों में बन सके यह प्रयास है।

भारतीय कला समीक्षा विचार व रूप भारतीय कला के मूलाधारों की खोज के साथ ही स्वरूप विवेचन कर यह प्रयास किया है कि उन सृजन के क्षणों को पुनः जिया जाए, जिन क्षणों में भारतीय कला अपनी अद्भुत अभिव्यंजना के साथ अवतरित हुई है, ये संवेदना बीज रूप में आज भी विद्यमान हैं।

प्रस्तुत पुस्तक, स्नातक, स्नातकोत्तर व शोधार्थियों के लिए पाठकों, दार्शनिकों व कलाकारों के लिए महत्वपूर्ण सामग्री प्रेषित करने का प्रयास है। भारतीय कला के उदात्त की अनुभूति पाठकों की आन्तरिक चेतना शक्ति में आत्मसात हो और यह पुस्तक एक सेतू बन सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पुस्तक में विद्वानों के विचार व लेखों को संग्रहित व संकलित कर मूल रूप में भी पठन व मनन के लिए चयनित किया है।

पुस्तक 'भारतीय कला समीक्षा' सरल, सहज दृष्टि से अनुभूति व संवेदनाओं को स्पांदित करने का प्रयास है। कलाकार के अंतरंग का बोध रखने की समझ